खजुराहो का जैन पुरातत्व

मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-परिचय

खजुराहो में १० वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य चन्देल काल में प्रभूत संख्या में मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। खजुराहो के मन्दिर अपनी स्थापत्यगत योजना एवं विशालता के लिए तथा मूर्तियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य, अलंकरण और आकर्षक तीखी भावभंगिमाओं के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों पर मानो समकालीन जीवन ही साकार हो उठा है। खजुराहो के ब्राह्मण मन्दिरों एवं मूर्तियों पर पर्याप्त कार्य हुआ है, किन्तु जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों का अभी तक समुचित विस्तार से कोई सांगोपांग अध्ययन नहीं हुआ है। इस दिशा में यह पहला गम्भीर प्रयास है। लेखक ने अत्यन्त सूक्ष्मता एवं विस्तार के साथ वहाँ की पुरातात्त्विक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

इस ग्रन्थ में खजुराहो की जैन कला की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा जैन देवकुल के सामान्य निरूपण के साथ ही वहाँ की तीर्थंकर, यक्ष-यक्षी एवं महाविद्या मूर्तियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। बाहुबली, सरस्वती, नवग्रह आदि से सम्बन्धित अध्ययन भी उल्लेखनीय है। खजुराहो के नवनिर्मित साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय की मूर्तियों का अध्ययन पहली बार प्रस्तुत हुआ है। परिशिष्ट में मांगलिक स्वप्नों, जैन लेखों एवं प्रतिमा-लक्षण सम्बन्धी तालिकाओं और पारिभाषिक शब्दावली के उल्लेख ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करते हैं। विस्तृत सन्दर्भ-सूची और चित्रावली ग्रन्थ के महत्त्व में और भी वृद्धि करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ जैन कला एवं प्रतिमाविज्ञान पर शोध करने वालों के साथ ही सामान्य जिज्ञासु पाठकों के लिए भी उपयोगी होगा और भविष्य में अन्य प्रमुख जैन कला केन्द्रों की पुरातात्त्विक सामग्री के विस्तृत एवं स्वतंत्र अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो का जैन पुरातत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो का जैन पुरातत्त्व

लेखक

डा० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी

रीडर, कला-इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–२२१००५

साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय
खजुराहो (म० प्र०)
१९८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© प्रकाशक

प्रकाशक :

साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय

खजुराहो

प्रथम आवृत्ति, १९८७

मूल्य : ५०.००

मुद्रक :

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदरणीया माताजी

तथा

श्रद्धेय पितृव्य

के

श्री चरणों में

समर्पित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

साहू शान्तिप्रसाद जैन कला संग्रहालय तथा उसको निर्माता श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष की हैसियत से डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी द्वारा प्रणीत "खजुराहो का जैन पुरातत्व" प्रकाशित कर उसे पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे विशेष हर्ष व उल्लास का अनुभव हो रहा है।

भारत वर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष प्रसिद्ध समाज-सेवी स्व० साहू शान्ति प्रसाद जी दिसंबर १९७० व फरवरी १९७७ को खजुराहो पधारे थे। उनकी खजुराहो की प्रथम यात्रा के दौरान ही उनसे यह अनुरोध किया गया था कि एक तो खजुराहो के जैन पुरावशेषों की रक्षा एवं व्यवस्था हेतु वे एक उपयुक्त संग्रहालय का निर्माण श्री दिगम्बर जैन अतिशय-क्षेत्र खजुराहो (जैन मंदिर-समूह खजुराहो) के निकट करा देवें तथा दूसरे, किसी अधिकारी विद्वान द्वारा यहाँ के जैन पुरातत्व का विशद अध्ययन कराकर उसके प्रकाशन की व्यवस्था करें। उनके न रहने के बावजूद उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रद्धेय साहू श्रेयांश प्रसाद जी (अध्यक्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई) व उनके पुत्र साहू अशोक कुमार जी तथा समस्त साहू परिवार एवं उदारमना जैन समाज के सहयोग एवं प्रेरणा से "साहू शान्ति-प्रसाद जैन कला संग्रहालय" के निर्माण के साथ-साथ "खजुराहो का जैन पुरातत्व" प्रकाशित कर उक्त दोनों विचारों को मूर्त्त रूप देते समय हमें व हमारे सहयोगियों को अपार प्रसन्नता का अनुभव होना सहज स्वाभाविक है।

भारतीय इतिहास के उत्थान-पतन, उसके उतार-चढ़ावों को जानने के लिये, खजुराहो एक उपयुक्त स्थान है। खजुराहो ने यदि काफी सुदिन देखे हैं, तो दुर्दिन भी कम नहीं देखे। वह जुझौतियों, प्रतिहारों एवं चन्देलों के उत्थान-पतन का साक्षी रहा है। सर्वप्रमथ, इसका उल्लेख प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा किया गया है, जो ६४१ ई० के लगभग यहाँ आया था। इस प्रदेश का नाम उसने "चिः चि तो" (जझोति) बतलाया है। उसके अनुसार इस प्रदेश की राजधानी महेश्वरपुर (ग्वालियर) के दक्षिण में ९०० लि. से अधिक दूर व उज्जैन के उत्तर-पूर्व में, उज्जैन से १००० लि. (या १६७ मील) दूर थी (जो वास्तविक दूरी का लगभग आधा है)। यह राजधानी (जिसका नामोल्लेख उसने नहीं किया १५-१६ लि. (या २॥ मील से अधिक) वृत्ताकार थी तथा इसके अधिकांश निवासी मूर्ति पूजक थे। उसके अनुसार, उस काल में, यहाँ कई दर्जन मठ थे, परन्तु उनमें रहने वाले साधु संख्या में बहुत कम थे। उस समय खजुराहो में एक हजार ब्राह्मण थे जो बारह मन्दिरों से सम्बद्ध थे। राजा स्वयं ब्राह्मण था, परन्तु बौद्धधर्म में उसकी दृढ़ आस्था थी। सारा प्रदेश अपनी भूमि की उर्वरा-शक्ति के लिये विख्यात था तथा भारत के सभी भागों से अनेक विद्वान यहाँ बहुधा आया-जाया करते थे। खजुराहो का दूसरा महत्वपूर्ण उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महमूद गज़नवी के साथ आये इतिहासकार अबूरेहन (जो महमूद द्वारा कालिन्जर पर किये गये आक्रमण के समय (१०२२ ई०) उसके साथ भारत आया था) द्वारा किया गया है। उसने उसका उल्लेख जाजाहुति (जैजाकभुक्ति) की राजधानी के रूप में किया है।[1] जैजाकभुक्ति के जिझौति, जझौति, जझोति, जजाहुति, जजाहोति, जेजाहुति, जेजाभुक्ति, जेजाकभुक्ति, जेजाभुक्तिक, चिः चि तो या चि-कि-तो आदि अनेक नाम मिलते हैं।[2] अबूरेहन के उपरान्त उसका उल्लेख प्रसिद्ध यात्री इब्न-बतूता द्वारा किया गया है। इब्न-बतूता १३३५ ई० में खजुराहो आया था। उसने खजुराहो का नाम "कजुरा" लिखा है। साथ ही उसने खजुराहो के उस विशाल जलाशय का भी वर्णन किया है जो एक मील लम्बा था और जिसके चारों ओर सुन्दर देवालयों की लम्बी शृंखला विद्यमान थी।

खजुराहो का पतन १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में (१२०२ ई०) उस समय से होने लगता है, जब कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा कालपी और कालिन्जर तथा महोबा पर कब्जा कर लिया जाता है और चन्देल शासक सुरक्षा की दृष्टि से स्थाई तौर पर अजयगढ़ के किले—जयदुर्ग में जाकर रहने लगते हैं। खजुराहो का महत्त्व उस समय से क्रमशः घटने तो लगता है, पर फिर भी कुछ समय तक बना रहता है, जैसा कि इब्न-बतूता (१३३५ ई०) के यात्रा वृत्तान्त से ज्ञात होता है। उसने अपने यात्रा वृत्तान्त में लम्बे तथा चिकटे जटाओं वाले पीतवर्ण के उन योगियों का उल्लेख किया है जो अनेक व सतत उपवासों के कारण पीले पड़ गये थे और जिनके पास अनेक मुसलमान भी जन्तर-मन्तर, जादू-टोना सीखने आया करते थे। परन्तु अकबर के समय तक खजुराहो का उतना महत्व भी शेष नहीं रहा और वह विस्मृति के कराल गाल में जाकर विलुप्त-प्राय सा हो गया। इस तथ्य का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आईने-अकबरी में खजुराहो का कहीं किंचित्मात्र उल्लेख नहीं है। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तो यह भाग वनाच्छादित हो गया था। १८१८ ई० में जब श्री फ्रैंकलिन ने इस भूभाग का सर्वेक्षण किया तो उसने अपने स्मृति पत्र (Memoirs) में इसका उल्लेख तक नहीं किया और नक्शे में "कजराओ" (Kajrow) के बाद "Ruins" शब्द लिखकर चर्चा समाप्त कर दी। उसका "Ruins" शब्द भली प्रकार न पढ़ा जाने के कारण—उसके आधार पर तैयार इण्डियन एटलस की सीट नम्बर ७० में भूलावशात् "Mines" शब्द लिख दिया गया।[3]

कई शताब्दियों के सुदीर्घ विस्मरण के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य उस समय से खजुराहो का पुनः स्मरण किया जाने लगा, जब श्री ए० कनिंघम ने सर्वेक्षण कर वहाँ के पुरातत्त्वीय वैभव पर प्रकाश डाला। भारतवासियों को इसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहिये।

---

1. Archaeological Survey of India Report by Cunningham, Vol. II.
2. The Early Rulers of Khajurāho by Sisir Kumar Mitra, P. 4.
3. Archaeological Survey of India Report by Cunningham, Vol II. pp. 412-27.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन पुरातत्त्व की दृष्टि से श्री कनिंघम के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण का विशेष महत्त्व है। कारण कि प्रथम तो उन्होंने घण्टई मन्दिर को बौद्ध मन्दिर का अवशेष निरूपित किया, परन्तु जब बाद में फर्गुसन ने स्थल का निरीक्षण कर अपेक्षाकृत अधिक गहराई से अध्ययन किया तो उन्हें श्री कनिंघम का उक्त अभिमत दोषपूर्ण प्रतीत हुआ, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने प्रतिवेदन में किया। उनका निष्कर्ष था कि घण्टई मन्दिर बौद्ध मन्दिर का अवशिष्ट भाग न होकर जैन मन्दिर का अवशिष्ट भाग है। घण्टई मन्दिर के विषय में श्री कनिंघम ने अपना अभिमत निम्नांकित तीन प्रमुख कारणों से व्यक्त किया था। पहला यह कि इस पुरावशेष के कुछ स्तम्भ बलुआ पत्थर के तथा कुछ ग्रेनाईट के थे। ग्रेनाईट के स्तम्भों का उपयोग बहुधा बौद्ध मन्दिरों में ही होता रहा है। दूसरे, इस पुरावशेष के निकट उन्हें भूमिस्पर्श-मुद्रा में बुद्ध की एक मनोज्ञ प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जिसमें सारनाथ शैली की छठी तथा सातवीं शताब्दी की प्रतिमाओं की पुरालिपि में "ये धर्म हेतु प्रभव तेसाम हेतुभ तथागत" इत्यादि बौद्ध वाक्य अभिलिखित थे तथा उक्त प्रतिमा यथोचित रूप से सवस्त्र अंकित की गयी थी। तीसरे, ह्वेनसांग का यात्रा वृत्तान्त भी उनके ध्यान में था, जिसमें खजुराहो में अनेक बौद्ध-मठों के पाये जाने का उल्लेख किया गया था। इन कारणों से तथा उस स्थल पर मन्दिर के मलबे के ढेर के ढेर पड़े होने के कारण वे विस्तारपूर्वक पुरातत्त्वीय अध्ययन नहीं कर पाये थे, इसलिए भी उनसे यह भूल हो गयी थी। १८७६–७७ में श्री कनिंघम तथा श्री फर्गुसन दोनों विद्वानों ने इस स्थल का संयुक्त निरीक्षण किया। उन्होंने इस मन्दिर के चारों ओर बिखरी तेरह प्रतिमाओं का विस्तृत अध्ययन किया। उनमें से ग्यारह प्रतिमाएँ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की पायी गयीं, जिनमें से एक में विक्रम सम्वत् ११४२ (१०८५ ई०) का एक अभिलेख भी उत्कीर्ण था। उस अभिलेख में उक्त प्रतिमा को आदिनाथ की प्रतिमा बतलाकर यह भी वर्णित था कि उसकी प्रतिष्ठा श्री बीबटशाह व उनकी भार्या सेठानी पद्मावती द्वारा करायी गयी थी। इन प्रतिमाओं का तथा अन्य उपलब्ध साक्ष्यों का बारीकी से अध्ययन करने पर श्री कनिंघम को अपनी भूल ज्ञात हुई और ईमानदारी से इसे स्वीकार करते हुए उन्होंने श्री फर्गुसन से अपनी सहमति व्यक्त कर बौद्धिक ईमानदारी का परिचय दिया।[1] तीर्थङ्कर की माता के सोलह स्वप्नों का अंकन देखकर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि घण्टई मन्दिर केवल जैन मन्दिर ही नहीं, प्रत्युत दिगम्बर जैन मन्दिर का अवशिष्ट भाग है। कारण कि यदि उक्त मन्दिर श्वेताम्बर मन्दिर रहा होता तो उसमें तीर्थङ्कर की माता के सोलह स्वप्नों के स्थान पर केवल चौदह स्वप्नों का अंकन किया जाता। १८७९ में श्री विन्सेण्ट स्मिथ ने पुनः घण्टई मन्दिर का अपेक्षाकृत और अधिक बारीकी से अध्ययन किया। उन्होंने भी उसके दिगम्बर जैन मन्दिर होने की पुष्टि की। मैंने यहाँ इस प्रसंग का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक समझा है, क्योंकि उससे पुरातत्त्वीय अध्ययन की उपयोगिता तथा उसके महत्त्व का बोध होता है।

---

१. Archaeological Survey of India Report by Cunningham, Vol II, pp. 412–27.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री कनिंघम, श्री फर्गुसन व श्री विन्सेन्ट स्मिथ आदि के बार-बार खजुराहो आने तथा उनके द्वारा वहाँ महीनों रहकर विस्तृत सर्वेक्षण करने के कारण राज्य-शासन तथा तत्कालीन जैन समाज को इन पुरातत्वीय-स्मारकों के संरक्षण की चिन्ता हुई। फलस्वरूप इन मन्दिरों में से अनेक का जीर्णोद्धार उस काल में कराया गया। राज्य शासन ने पश्चिमी व दक्षिणी मन्दिर-समूह के मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया तो जैन समाज ने पूर्वी-मन्दिर-समूह (जैन-मन्दिर समूह) का जीर्णोद्धार कराया। इस बात का सबसे विश्वसनीय प्रमाण श्री कनिंघम की वह रिपोर्ट है, जिसमें उन्होंने बतलाया है कि जनवरी १८५२ ई० में जब वे पहली बार खजुराहो आए थे तब पार्श्वनाथ मन्दिर सौभाग्यवश परित्यक्त अवस्था में था तथा वे अन्दर जाकर निश्चिन्तता से उसका परीक्षण कर सके थे। तदनन्तर किसी जैन-साहूकार द्वारा उसका जीर्णोद्धार करा दिया गया तथा उसमें भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी गयी। फरवरी १८६५ में जब वे पुनः इस मन्दिर का अध्ययन करने पहुँचे तो उन्हें मन्दिर के अन्दर प्रवेश करने से रोक दिया गया और बाहर से ही जाँच-पड़ताल कर उन्हें सन्तोष करना पड़ा। बाहर से उन्होंने यह भी नोट किया कि मंदिर के गर्भ-गृह के प्रवेश द्वार की छोटी-बड़ी जितनी भी मूर्तियाँ हैं, उन्हें नीले, हरे, लाल व पीले रंगों से रंग दिया गया है, तथा उनके रंगों की चमक से यह स्पष्ट आभास होता है कि उन्हें वार्निस से हाल ही में रंगा गया है।

पुरातत्त्वीय तथा साहित्यिक साक्ष्य से यह भलीभाँति प्रमाणित है कि चन्देलों के राज्य में जैन अल्पसंख्यक होने पर भी अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावशाली थे। चन्देलों की धार्मिक सहिष्णुता, उनकी समदर्शिता तथा प्रजावत्सलता के कारण ही उनके राज्य में विभिन्न स्थानों में, विशेषतः खजुराहो व देवगढ़ में, अन्य धर्मों के सुविशाल और भव्य मन्दिरों की भाँति जैनों के भी अतिभव्य एवं कला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट मन्दिरों का निर्माण कराया जा सका। यह राज्य की सर्व-धर्म-समभाव की नीति का एवं राज्य द्वारा प्रदत्त धार्मिक-स्वतन्त्रता का सहज स्वाभाविक परिणाम था। विजयपाल के यशस्वी पुत्र कीर्तिवर्मन् के राज्यकाल में शान्तिनाथ की मूर्ति उनके 'कुलाभात्य वृन्द' पाहिल तथा जोजू (जो जैनाचार्य वासवेन्दु (या वासवचन्द्र) के शिष्य थे) द्वारा स्थापित कराई गई थी। पार्श्वनाथ-मन्दिर के शिलालेख में यद्यपि पाहिल को 'कुल अमात्य' के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया; तथापि उसे 'धांग राजेन मान्यः' (धंग नरेश द्वारा समादृत) बतला कर राज्य में उसकी प्रतिष्ठा की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है एवं वासवचन्द्र को 'महाराजगुरु' निरूपित किया गया है। मदनवर्मा के राज्यकाल (वि० स० १२१५) में स्थापित सम्भवनाथ की मूर्ति के मूर्तिलेख में तो पाहिल का पूरा वंशवृक्ष ही दिया गया है। इस मूर्तिलेख के अनुसार पाहिल श्रेष्ठि देदू के पुत्र थे। उनके पुत्र का नाम साल्हे और पौत्र का नाम महागण, महीचन्द्र, सिरीचन्द्र, जिनचन्द्र, उदयचन्द्र इत्यादि था। खजुराहो का दूसरा प्रतिष्ठित जैन परिवार श्रेष्ठि श्री पाणिधर का था, जिनके पुत्र त्रि-विक्रम, आल्हण व लक्ष्मीधर थे।[1] खजुराहो की

१. 'द अर्ली रुलर्स ऑव खजुराहो, शिशिरकुमार मित्र, पृ० २०५-०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन मूर्तियों के मूर्ति-लेखों से उस काल के धनी-मानी जैन समाज का अच्छा परिचय प्राप्त होता है तथा उनसे चन्देल राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता के साथ-साथ जैनों की राज्य-भक्ति एवं उनकी समन्वयात्मक-दृष्टि का भी अच्छा बोध होता है।

वर्तमान खजुराहो के विकास की कहानी का अध्याय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ होता है तथा उसमें ब्रिटिश-शासकों, छतरपुर राज्य के नरेश, तत्कालीन समाज-प्रमुखों तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारत-शासन व राज्य शासनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस कार्य को अधिक गति उस समय मिली जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद सन् १९५०-५१ में श्री वियोगी हरि की प्रेरणा पर खजुराहो पधारे और उनका कुछ सामाजिक कार्यकर्त्ताओं (सर्वश्री महेन्द्रकुमार 'मानव', कामताप्रसाद सक्सेना, दशरथ जैन, गोकुलप्रसाद महाशय प्रभृति) ने अभिनन्दन किया व खजुराहो के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए एक लिखित ज्ञापन भेंट किया एवं स्वतन्त्र भारत की सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उसके उपरान्त विगत पैंतीस वर्षों में खजुराहो में जो कुछ हुआ है और हो रहा है, वह सर्वविदित है। उसके लिए भारत-शासन तथा राज्य शासन के पुरातत्त्व तथा पर्यटन-विभाग बधाई के पात्र हैं। परन्तु जो नहीं हुआ है उस ओर यथाशीघ्र ध्यान दिया जाना उचित ही नहीं वरन अति आवश्यक भी है। इस पुनीत कार्य में केन्द्रीय व राज्य शासन के साथ-साथ जनता जनार्दन को भी यथोचित योगदान करना होगा। क्षेत्रीय जैन प्रबन्ध समिति उसके लिए कृत-संकल्प है।

मध्यप्रदेश भारत का हृदय-स्थल है और खजुराहो मध्यप्रदेश का। इस नाते तथा खजुराहो स्थित विपुल स्थापत्य एवं शिल्प-सम्पदा के नाते खजुराहो भारत का हृदय है। यहाँ स्थित कलाकृतियाँ एवं शिल्पखण्ड समूचे भारत के सांस्कृतिक-मूल्यों, प्रतिमानों एवं आदर्शों की, उसके बल-पौरुष एवं शौर्य के साथ-साथ उसके भौतिक वैभव, सौन्दर्य-बोध व कला-प्रेम की, उसके उच्च जीवन लक्ष्यों के साथ-साथ उसके समर्पित जन-जीवन की गाथायें निरन्तर गाती रहती हैं। जीवन का कोई कोना ऐसा नहीं है, जिस पर खजुराहो के कलाकार ने अपनी छेनी-हथौड़ी का उपयोग न किया हो। खजुराहो के कलाकार ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों पर आधारित भारतीय संस्कृति का समग्रता में अंकन किया है। केवल काम को सबसे प्रथम कर, उस पर अनावश्यक तौर पर अधिक बल देना (जैसा कि कुछ लोगों द्वारा वर्तमान में किया जा रहा है) उसके साथ घोर अन्याय करना है। इन कलाकृतियों में मध्य-युगीन भारत का जन-जीवन तो प्रतिबिम्बित हुआ ही है, उसका लोक मानस भी अपनी पूरी धड़कनों के साथ अभिलिखित हुआ। खजुराहो का कलाकार स्वर्ग में बैठा होने पर भी अपनी कलाकृतियों के माध्यम से विभिन्न देशों में स्थापित हमारे सहस्रों दूतावासों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावी ढंग से भारत की संस्कृति का सन्देश विश्व के कोने-कोने तक निरन्तर पहुँचाता रहता है। भारत की वास्तुकला तथा शिल्पकला दोनों का सर्वोत्कृष्ट रूप खजुराहो में विकसित होने से, विश्व के कला-जगत में खजुराहो ने अपनी अलग व विशेष पहचान बना ली है। यहाँ का एक-एक शिल्प-खण्ड बेजोड़ है और प्रत्येक शिल्पखण्ड का संरक्षण एवं उसका पुरातात्त्विक अध्ययन किया जाना परमावश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा की ओर बढ़ाया गया एक छोटा-सा कदम है। यह हमारा एक विनम्र प्रयास मात्र है। प्रतिमा-विज्ञान के आधार पर खजुराहो-स्थित जैन-मन्दिरों, शासकीय व अशासकीय संग्रहालयों तथा खजुराहो के अतिरिक्त अन्यत्र खजुराहो के जैन पुरातत्त्व की जो सामग्री उपलब्ध है, उसका पुरातात्त्विक विश्लेषण करते समय विद्वान लेखक ने अथक परिश्रम करते हुए जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण व निष्पक्ष भाव का परिचय दिया है, वह श्लाघनीय है। इस कृति में उन्होंने विगत अनेक वर्षों से उनके द्वारा इस विषय पर किये व कराये जा रहे शोध-कार्य का सार-संक्षेप तो प्रस्तुत किया ही है; साथ ही अन्य विद्वानों द्वारा सम्बन्धित प्रश्नों पर जो सामग्री एकत्रित की गई है व जो विचार-मंथन किया गया है, उसका भी सम्यक्रूपेण उल्लेख करने का यथोचित प्रयास किया है। पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गये, उनका परीक्षण तो उन्होंने किया ही है, साथ ही अनेक स्थलों पर नई जमीन भी उन्होंने नए सिरे से तोड़ी है। उन्होंने सदैव संयम से काम लिया है और बिना पर्याप्त साक्ष्य के जल्दबाजी में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की भूल नहीं की है। खजुराहो के जैन मन्दिर जिस सांस्कृतिक समन्वय तथा सामन्जस्य के प्रतीक हैं, लेखक ने भी उसी समन्वयात्मक दृष्टि को अपनाते हुये अपना लेखन कार्य किया है। खजुराहो के कलाकार ने यदि छैनी-हथौड़ी से कठोर पाषाण पर भारत की इन्द्रधनुषी संस्कृति को साकारता एवं सजीवता प्रदान की है, तो प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने भी उस कलाकार के हृदय में अपना हृदय उड़ेलकर उससे तादात्म्य स्थापित कर उसके मन्तव्यों तथा भावनाओं को बड़ी ही ईमानदारी से अपने शब्दों द्वारा छायाचित्रित करने का प्रयास किया है। उनकी भाषा परिष्कृत व प्राञ्जल होने के साथ-साथ सहज, सरल व सुबोध है, जिसके कारण साधारण पाठक भी कठिन विषय को भलीभाँति समझ लेता है। डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी ने हमारे आग्रह को सहज ढंग से स्वीकार कर इस ग्रन्थ का सृजन करने की जो कृपा की है, उसके लिये क्षेत्रीय-प्रबन्ध-समिति उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

इस ग्रन्थ में जो भी निष्कर्ष या अभिमत प्रस्तुत किये गये हैं, वे विद्वान लेखक के अध्ययन-मनन-चिन्तन का परिणाम हैं और उनका उत्तरदायित्व भी उन पर ही है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रकाशक का मत लेखक के मत से मिलता ही हो।

पुस्तक के प्रकाशन में क्षेत्रीय प्रबन्ध समिति के उपाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार जैन एवं मंत्री श्री कमल कुमार जैन ने बहुत परिश्रम किया है, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में, हम पुस्तक के शुद्ध व आकर्षक मुद्रण के लिये तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी के संचालक श्री रमाशंकर पण्ड्या के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

१ जनवरी १९८७

दशरथ जैन
अध्यक्ष
श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन कला-संग्रहालय-
समिति तथा श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र
खजुराहो प्रबन्ध समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

जैन कला और स्थापत्य के विकास को समग्र और व्यवस्थित रूप से समझने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सर्वप्रथम विभिन्न प्रमुख जैन कला केन्द्रों की प्रतिमाओं एवं मन्दिरों का सविस्तर स्वतंत्र अध्ययन किया जाय। तदुपरान्त उन स्थलों की पुरातात्त्विक सामग्री का ऐतिहासिक दृष्टि से एकैकशः विवेचन हो। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना इसी दृष्टि से की गयी है। इस ग्रन्थ में खजुराहो की जैन पुरा-सम्पदा के सांगोपांग विवेचन का प्रयास किया गया है।

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो राष्ट्रीय महत्त्व का कला-केन्द्र है। १० वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य चन्देल शासकों के काल में यहाँ अपार संख्या में मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। खजुराहो के मन्दिर अपनी स्थापत्यगत योजना और विशालता के लिए तथा मूर्तियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य, आकर्षण, अलंकरण और तीखी भाव-भंगिमाओं के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। देव मूर्तियों के निरूपण में शास्त्रीय विवरणों के प्रति प्रतिबद्धता पूरी तरह स्पष्ट है। तत्कालीन धार्मिक इतिहास की जानकारी की दृष्टि से इन देव मूर्तियों का विशेष महत्त्व है। मन्दिरों पर जीवन के विविध पक्षों का भी अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ जीवन्त अंकन हुआ है। तरंगमय भाव-भंगिमाओं वाली मनभावन अप्सरा मूर्तियाँ और काम-शिल्प खजुराहो कला के विशेष आकर्षण हैं।

खजुराहो की कला में धार्मिक सामंजस्य का भाव अद्‌भुत रूप में व्यक्त हुआ है। कुछ ब्राह्मण मन्दिरों पर तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन और इसी प्रकार जैन मन्दिरों पर ब्राह्मण धर्म के देवी-देवताओं का निरूपण धार्मिक सौमनस्यता का सूचक है। खजुराहो के ब्राह्मण मन्दिरों एवं मूर्तियों पर विद्वानों ने पर्याप्त विस्तार से कार्य किया है, किन्तु जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों पर अभी तक समुचित विस्तार से कोई कार्य नहीं हुआ है। पार्श्वनाथ, घण्टई, आदिनाथ एवं शान्तिनाथ जैसे महत्त्वपूर्ण जैन मन्दिरों के अतिरिक्त खजुराहो में कम से कम २० अन्य जैन मन्दिर भी थे जिनके पुरावशेष वहां के नवीन जैन मन्दिरों एवं स्थानीय संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। जैन मन्दिरों की स्थापत्य योजना भारतीय परम्परा की नागर शैली के मन्दिरों के अनुरूप है। यही कारण है कि खजुराहो के ब्राह्मण एवं जैन मन्दिरों की स्थापत्य योजना में समरूपता मिलती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में खजुराहो की जैन पुरातात्त्विक सामग्री के विशद् और तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है। ग्रन्थ लेखन की अवधि में मैंने स्वयं कई बार खजुराहो जाकर वहां की सामग्री का संकलन और परीक्षण किया है।

यह ग्रन्थ कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय प्रस्तावना से सम्बन्धित है जिसमें चन्देल शासकों के इतिहास एवं खजुराहो के मन्दिरों तथा मूर्तियों की सामान्य विवेचना की गयी है। दूसरे अध्याय में खजुराहो के जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों का विस्तृत अध्ययन है। तीसरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय जैन देवकुल के सामान्य परिचय से सम्बन्धित है। आगे के अध्यायों में विवेचित देव मूर्तियों को पारम्परिक सन्दर्भ में समझने की दृष्टि से इस अध्याय का विशेष महत्व है। चौथे अध्याय में खजुराहो की तीर्थंकर या जिन मूर्तियों का विशद् विवेचन हुआ है। पाँचवाँ अध्याय खजुराहो की जैन यक्ष और यक्षी मूर्तियों से सम्बन्धित है। छठे अध्याय में खजुराहो की विद्यादेवी या महाविद्या मूर्तियों का अध्ययन है। सातवें अध्याय में खजुराहो से मिली अन्य जैन देव मूर्तियों का अध्ययन किया गया है। इनमें बाहुबली, सरस्वती, लक्ष्मी, नवग्रह, जैन मुनि एवं युगल मूर्तियाँ मुख्य हैं। आठवें अध्याय में खजुराहो के नवनिर्मित साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय की मूर्तियों का स्वतन्त्र विवेचन है। परिशिष्ट में आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियों, मांगलिक स्वप्नों, जैन लेखों, तीर्थंकर, यक्ष-यक्षी एवं महाविद्याओं की प्रतिमालक्षण सम्बन्धी तालिकाओं और पारिभाषिक शब्दावली के उल्लेख हैं। अन्त में विस्तृत सन्दर्भ-सूची, चित्र-सूची और चित्रावली दिये गये हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन में जिन कृपालु व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सहायता मिली है, उनके प्रति आभार के दो शब्द कहना यहाँ अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

ग्रन्थ-लेखन में आयी विभिन्न समस्याओं के समाधान में कृपापूर्ण सहायता एवं सतत् उत्साहवर्धन के लिए मैं प्रो० मधुसूदन ढाकी, सहनिदेशक (शोध), अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी और प्रो० डा० आनन्द कृष्ण, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन की अवधि में मिली बहुविध सहायता के लिए मैं डा० (श्रीमती) कमल गिरि, व्याख्यात्री, कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का विशेष रूप से आभारी हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए मैं श्री साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो प्रबन्ध समिति एवं श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध समिति, खजुराहो का आभारी हूँ। इस प्रसंग में मैं समिति के अध्यक्ष श्री दशरथ जैन, उपाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार जैन एवं मंत्री श्री कमल कुमार जैन को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ।

ग्रन्थ में प्रकाशित चित्रों के लिए मैं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ। कुछ चित्रों की व्यवस्था के लिए मैं श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध समिति, खजुराहो को भी धन्यवाद देता हूँ। सुन्दर मुद्रण के लिए मैं तारा प्रिन्टिंग वर्क्स, वाराणसी के व्यवस्थापक श्री रमाशंकर पण्ड्या को भी साधुवाद देता हूँ।

विद्वानों एवं सामान्य जिज्ञासु पाठकों के लिए यह ग्रन्थ यदि किंचित् मात्र भी उपयोगी सिद्ध हुआ तो मैं अपने प्रयास को सार्थक मानूंगा। हिन्दी जगत में भी प्रस्तुतत ग्रन्थ का स्वागत होगा, इस विश्वास के साथ।

कार्त्तिक पूर्णिमा,
१६ नवम्बर १९८६

मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
प्रकाशकीय		i–vi
आमुख		vii–viii
अध्याय–१ :	**प्रस्तावना** राजनीतिक पृष्ठभूमि १, खजुराहो के मन्दिर:४, स्थापत्य-मूर्तिकला, प्रतिमाविज्ञान	१–१०
अध्याय–२ :	**खजुराहो की जैन कला** राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ११, खजुराहो के जैन मन्दिर १३	११–३४
अध्याय–३ :	**जैन देवकुल**	३५–३८
अध्याय–४ :	**तीर्थङ्कर या जिन मूर्तियां** सामान्य विकास ३९, खजुराहो की जिन मूर्तियाँ ४१, स्वतन्त्र जिन मूर्तियाँ ४३, ऋषभनाथ ४३, अजितनाथ ४५, सम्भवनाथ ४५, अभिनन्दन ४६, सुमतिनाथ ४६, पद्मप्रभ ४६, सुपार्श्वनाथ ४६, चन्द्रप्रभ ४७, शान्तिनाथ ४७, कुंथुनाथ ४७, मुनिसुव्रत ४८, नेमिनाथ ४८, पार्श्वनाथ ४८, महावीर ५१, द्वितीर्थी जिनमूर्ति ५२, त्रितीर्थी जिनमूर्ति ५३, जिन चौमुखी ५३, जीवन दृश्य ५४	३९–५४
अध्याय–५ :	**यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ** सामान्य विकास ५५, खजुराहो की यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ ५६, सर्वानुभूति (या कुबेर) ५७, चक्रेश्वरी ५८, मनोवेगा ५९, अम्बिका या कुष्माण्डी ५९, पद्मावती ६१, सिद्धायिका ६१	५५–६२
अध्याय–६ :	**विद्यादेवी या महाविद्या मूर्तियाँ**	६३–६६
अध्याय–७ :	**अन्य देव मूर्तियाँ** बाहुबली ६७, जैन युगल ६९, जैन आचार्य ७०, सरस्वती ७२, लक्ष्मी ७४, क्षेत्रपाल ७५, अष्टदिक्पाल ७७, नवग्रह ८०, गंगा-यमुना ८२, अष्टवसु ८२	६७–८२
अध्याय–८ :	**साहू शान्तिप्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो**	८३–९०
परिशिष्ट :		९१–११२
	(क) आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियाँ	९१–९२
	(ख) मांगलिक स्वप्न	९२–९४
	(ग) जैन लेख	९४–९६
	(घ) जिन-मूर्तिविज्ञान-तालिका	९७–९८
	(ङ) यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका	९९–१०७
	(च) महाविद्या-मूर्तिविज्ञान-तालिका	१०८–१०९
	(छ) पारिभाषिक शब्दावली	११०–११२
सन्दर्भ-सूची		११३–१२२
चित्र-सूची		१२३–१२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय १

प्रस्तावना

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो मूर्तियों और मंदिरों के कारण विश्व प्रसिद्ध है। यद्यपि आज यह एक छोटा सा गाँव है किन्तु एक हजार वर्ष पूर्व चन्देल शासकों की राजधानी तथा कला एवं स्थापत्य के प्रमुख केन्द्र के रूप में इस स्थल की प्रसिद्धि थी। खजुराहो आज भी अपने अप्रतिम कला-सौन्दर्य तथा नागर शैली के विशाल मंदिरों एवं मनभावन मूर्तियों के कारण विश्व के कोने-कोने से आने वाले पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र है। यह स्थान महोबा से ५५ किलोमीटर दक्षिण की ओर, हरपालपुर तथा छतरपुर से क्रमशः ९८ और ४६ किलोमीटर पूर्व की ओर और सतना तथा पन्ना से क्रमशः १२० और ४३ किलोमीटर पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित है। खजुराहो के नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के चन्देल मंदिर शैव, वैष्णव, शाक्त एवं जैन सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। मन्दिरों एवं मूर्तियों के निर्माण की दृष्टि से लगभग ९५० ई० से १०५० ई० के मध्य का काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। इसी अवधि में यहाँ के श्रेष्ठतम कन्दरिया महादेव, लक्ष्मण, घण्टई और पार्श्वनाथ मंदिरों का निर्माण हुआ। मध्यकाल में वर्तमान खजुराहो के आस-पास का क्षेत्र अर्थात् मध्य प्रदेश का उत्तरी भाग जेजाकभुक्ति या बुन्देलखण्ड के नाम से भी जाना जाता था। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार खजुराहो में कुल ८५ मंदिर थे किन्तु वर्तमान में उनमें से केवल २५ मंदिर ही शेष हैं।[1]

चन्देल शासक कला एवं स्थापत्य के महान् समर्थक थे। उनके शासन क्षेत्र के अन्तर्गत खजुराहो, महोबा (महोत्सव नगर), कालिंजर (या कालंजर), अजयगढ़, दुधई, चांदपुर, मदनपुर और देवगढ़ जैसे स्थलों पर मंदिरों एवं मूर्तियों की प्रभूत संख्या इस बात का साक्षी है। इन सब में खजुराहो निश्चित ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। अभिलेख, साहित्य तथा विदेशियों के विवरणों में वर्तमान खजुराहो नाम के विभिन्न रूप मिलते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार यह नगर कभी खजूर के वृक्षों के बीच में बसा था, इसी कारण इसका नाम खर्जूरपुर पड़ा; किन्तु वर्तमान में यहाँ खजूर के वृक्षों का नितान्त अभाव है। शिलालेखों और प्राचीन ग्रन्थों में इस स्थान के खर्जूरवाहक, खर्जूरवाटिक[2], खज्जूरपुर, कजुरा, खजुराहा आदि नाम प्राप्त होते हैं।[3]

---

१. कृष्णदेव, "दि टेम्पुल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इंडिया", **ऐन्शियन्ट इंडिया**, अंक १५, १९५९, पृ० ४४।

२. विक्रम संवत् १०५९ (१००२ ई०) का धंग का प्रस्तर लेख।

३. विक्रम संवत् १०२६ (९६९ ई०) का धंग का लेख; विद्याप्रकाश, **खजुराहो-ए स्टडी इन दि कल्चरल कन्डीशन्स ऑव चन्देल सोसायटी**, बम्बई, १९८२ (पुर्नमुद्रित), पृ० १–२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः चन्देल शासकों के काल में ही खजुराहो का प्रमुख राजनीतिक और कला केन्द्र के रूप में विकास हुआ। चन्देल शासकों ने लगभग नवीं शती ई० में अपना राजनीतिक जीवन कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार शासकों के सामन्तों के रूप में प्रारम्भ किया और शीघ्र ही उत्तर भारत की प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उनका अभ्युदय हुआ।[1] चन्देल शासकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रमाण मिलते हैं। खजुराहो के दो लेखों में इन्हें चन्द्रात्रेय और दुधइ के एक लेख में चन्द्रेल्ल कहा गया है। चन्देल नाम से इनका उल्लेख सर्वप्रथम चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के मदनपुर लेख और कल्चुरी शासक लक्ष्मीकर्ण के बनारस लेख में हुआ है।[2] खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के विक्रम संवत् १०११ (९५४ ई०) के अभिलेख में चन्देलों का सम्बन्ध ऋषि अत्रि तथा उनके पुत्र चन्द्रात्रेय से जोड़ा गया है। परमर्दिदेव के विक्रम संवत् १२५२ (११९५ ई०) के बघारी (या बटेश्वर) शिलालेख में भी चन्देलों की उत्पत्ति अत्रि, चन्द्रमा तथा चन्द्रात्रेय से बतलाई गयी है। विभिन्न साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि चन्देलों की उत्पत्ति चन्द्रमा से बतलाकर उनके चन्द्रवंशी क्षत्रिय होने का संकेत किया गया है।

धंग के विक्रम संवत् १०११ (९५४ ई०) के खजुराहो लेख में प्रथम चन्देल शासक का नाम नन्नुक (ल० ८३१-८४५ ई०) बताया गया है। लेख में नन्नुक को नृप और महीपति कहा गया है। एक मान्यता के अनुसार नन्नुक ने संभवतः प्रतिहार शासक रामभद्र के बुरे दिनों में चन्देल राज्य की स्थापना की थी। दूसरी मान्यता के अनुसार वह एक स्थानीय सामन्त मात्र था और उसका दूसरा नाम या विरुद चन्द्रवर्मा था। नन्नुक का उत्तराधिकारी उसका पुत्र वाक्पति (८४४-८७० ई०) हुआ। इसने विन्ध्य की ओर अपनी शक्ति का विस्तार किया। जयशक्ति और विजयशक्ति (ल० ८६५ से ८८५ ई०) वाक्पति के दो पुत्र थे, जिनका कई चन्देल लेखों में उल्लेख हुआ है। वाक्पति की मृत्यु के पश्चात् जयशक्ति और उसके बाद उसका छोटा भाई विजयशक्ति शासक हुआ। जयशक्ति ने शासन प्रबन्ध पर अधिक ध्यान दिया जबकि विजयशक्ति ने राजनीतिक गतिविधियों में विशेष रुचि ली। महोबा के एक लेख के अनुसार जयशक्ति ने अपने नाम पर राज्य का नाम जेजाकभुक्ति रखा। विजयशक्ति के पश्चात् उसका पुत्र राहिल (८८५-९०५ ई०) शासक हुआ। इसके शासनकाल में कोई महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना नहीं हुई। स्थानीय लेख में उसे वीर, योद्धा और शत्रुहन्ता बताया गया है।

---

१. विस्तृत चन्देल इतिहास के लिए द्रष्टव्य : दीक्षित, आर० के०, **चन्देल्स ऑफ जेजाकभुक्ति ऐण्ड देयर टाइम्स** (पी-एच० डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९५०); बोस, एन० एस०, **हिस्ट्री आफ चन्देल्स**, कलकत्ता, १९५६; मित्रा, एस० के०, **अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो**, कलकत्ता, १९५८; पाठक, विशुद्धानन्द, **उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास**, वाराणसी, १९७३, पृ० ३७२-४२७।

२. **एपिग्राफिया इंडिका**, खण्ड-१, पृष्ठ १२४, १४१; खण्ड–२, पृष्ठ ३०६; **इंडियन एन्टिक्वेरी**, खण्ड–१८, पृष्ठ २३६-३७, **आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इंडिया रिपोर्ट** (ए० कनिंघम), खण्ड-२१, पृ० १७४; मिराशी, वी० वी०, **कलचुरि चेदि एरा**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्देल राजवंश का पहला महत्वपूर्ण शासक हर्षदेव (९०५–९२५ ई०) था जो राहिल के बाद सिंहासनासीन हुआ। वस्तुतः हर्ष के समय ही चन्देल राजवंश की शक्ति और प्रतिष्ठा पूरी तरह स्थापित हुई। उसने समकालीन राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से चन्देलों की शक्ति में वृद्धि की। इसके काल में ही खजुराहो का मातंगेश्वर मन्दिर (९००-९२५ ई०) बना। हर्षदेव के पश्चात् उसका पुत्र यशोवर्मन् (९२५-९५० ई०) शासक हुआ जो चन्देल राजवंश का यशस्वी और सामरिक-प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। उसने हर्ष की विजय योजना को और गति दी तथा साम्राज्य का विस्तार किया। उसने गौड़, कोसल, चेदि, कुरू, मिथिला, मालवा, कश्मीर तथा गुर्जरों पर विजय की। कालिंजर किले की विजय उसकी सबसे महत्वपूर्ण विजय थी। प्रतिहारों, कलचुरियों, पालों और परमारों के विरुद्ध सफलता के कारण यशोवर्मन् निर्विवादरूप से उत्तर भारत की एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया। इसके काल में खजुराहो का भव्य लक्ष्मण मन्दिर बना जो स्थापत्य की दृष्टि से मध्य भारत का सर्वाधिक विकसित और अलंकृत मंदिर था।

यशोवर्मन् के पुत्र धंग (९५०-१००३ ई०) के शासनकाल में चन्देल राजवंश की प्रतिष्ठा निश्चित रूप से चरमोत्कर्ष पर थी। धंग ने महत्वपूर्ण विजयों द्वारा चन्देल शक्ति को और अधिक दृढ़ किया। इसी के समय में चन्देल साम्राज्य की सीमायें भी सुनिश्चित हुईं। धंग चन्देल राजवंश का पहला नृपति था जिसने प्रतिहार सत्ता को पूरी तरह अस्वीकार कर स्वाधीनता घोषित की। उसका राज्य कालिंजर से मालव नदी तक, मालव नदी से कालिंदी तक, कालिंदी से चेदि राज्य तक और चेदि राज्य से गोप (गोपाद्रि-ग्वालियर) तक विस्तृत था। महान् विजेता और शासक होने के साथ ही धंग कला का भी महान् समर्थक था। उसके काल में खजुराहो में जिननाथ, वैद्यनाथ और शम्भु के मन्दिर बने। शम्भु का भव्य मन्दिर स्वयं धंग द्वारा बनवाया गया[1]। वर्तमान विश्वनाथ मन्दिर ही धंग द्वारा निर्मित शम्भु मन्दिर था। धंग द्वारा अपूर्व रूप से सम्मानित पाहिल ने जिननाथ मन्दिर बनवाया था जो वर्तमान पार्श्वनाथ मन्दिर है। वैद्यनाथ मन्दिर की पहचान सम्भव नहीं हो सकी है[2]। धंग के पश्चात् उसका पुत्र गण्ड (ल० १००२-०३ से १०१८ ई०) थोड़े समय के लिए शासक हुआ। राजनीतिक दृष्टि से उसका शासन महत्वपूर्ण नहीं था। उसके काल में ही सम्भवतः खजुराहो में देवी जगदंबी और चित्रगुप्त मन्दिर बने। गण्ड के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर (ल० १०१८-१०२९ ई०) सिंहासनारूढ़ हुआ जिसके शासनकाल में चन्देल राजवंश गौरव के शिखर पर पहुँचा। अपने समय में वह सम्भवतः उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। कलचुरियों और परमारों पर उसकी विजय उसके काल की प्रमुख राजनीतिक घटनाएँ थीं। उसने महमूद गजनवी के आक्रमण से कालिंजर किले की दो बार रक्षा की। विद्याधर ने पूर्वजों की मन्दिर निर्माण परम्परा को भी अक्षुण्ण रखा। खजुराहो का कन्दरिया महादेव मन्दिर इस बात का स्पष्ट साक्षी है। अभिलेखों में विद्याधर का शिव के अनन्य भक्त के रूप में उल्लेख हुआ है[3]।

१. **एपिग्राफिया इंडिका**, खण्ड—१, पृ० १४५-४७।
२. विद्याप्रकाश, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० ५।
३. कृष्णदेव, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याधर के पश्चात् कलचुरियों और मुसलमानों के आक्रमणों के कारण चन्देल शक्ति का पराभव प्रारम्भ हो गया। चन्देल शक्ति के पराभव के साथ ही खजुराहो का राजनीतिक महत्व भी कम हुआ। सामरिक आवश्यकताओं के कारण चन्देलों को अपनी राजनीतिक गतिविधियां महोबा, अजयगढ़ और कालिंजर के दुर्गों पर ही केन्द्रित करनी पड़ीं। राजनीतिक स्थितियों में परिवर्तन के बाद भी खजुराहो में मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण का क्रम नहीं टूटा और लगभग १२वीं शती ई० के अन्त तक मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। विद्याधर के पश्चात् क्रमशः विजयपाल (ल० १०२९-१०५१ ई०), देववर्मन् (ल० १०५१ ई०), कीर्तिवर्मन् (ल० १०७०-१०९८ ई०), जयवर्मन् (ल० १११७ ई०), पृथ्वीवर्मन् (ल० ११२५ई०), मदनवर्मन् परमर्दिदेव (ल० ११६६-१२०१ ई०) एवं त्रैलोक्यवर्मन् आदि शासक हुए। इनमें मदनवर्मन् और परमर्दिदेव ही राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। खजुराहो में देव-मूर्तियों के निर्माण और प्रतिष्ठा की परम्परा मदनवर्मन् के शासनकाल (११५८ ई०) तक चलती रही, इसके स्पष्ट पुरातात्त्विक प्रमाण हैं। इसी अवधि में वामन, आदिनाथ, जवारी, चतुर्भुज तथा दूलादेव (१२वीं शती ई० का पूर्वार्ध) आदि मन्दिरों का निर्माण हुआ। ये मन्दिर आकार में पूर्व मन्दिरों की अपेक्षा छोटे किन्तु खजुराहो की कलात्मक गतिविधियों की निरन्तरता के साक्षी हैं।

खजुराहो के मन्दिर

चन्देल शासकों ने भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला के विकास में अभूतपूर्व योगदान किया। शासकों ने अपने साम्राज्य को सरोवरों, राजप्रासादों, मन्दिरों एवं मूर्तियों से पूरी तरह अलंकृत रखने की चेष्टा की। इनकी कलात्मक गतिविधियां खजुराहो, उर्दमऊ, महोबा, कालिंजर, अजयगढ़, मोहान्द्रा, जसो, बानपुर, अहार, देवगढ़, सेरोन, चन्देरी, थूबौन, चांदपुर, दुधइ एवं मदनपुर आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित रही हैं। किन्तु चन्देलों की कलात्मकता निःसन्देह खजुराहो के मन्दिरों एवं उन पर आलेखित मूर्तियों में ही श्रेष्ठतम स्तर पर अभिव्यक्त हुई।

मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में शासकीय समर्थन एवं संरक्षण का विशेष महत्व होता है। इस समर्थन की पृष्ठभूमि में शासकों की धार्मिक आस्था की निर्णायक भूमिका होती है। चन्देल शासक प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुरूप ही धर्म सहिष्णु रहे हैं। यही कारण है कि चन्देल शासन क्षेत्र के अन्तर्गत ब्राह्मण धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के साथ ही जैन एवं बौद्ध[1] कलावशेष भी दिखाई देते हैं। चन्देल शासक व्यक्तिगत स्तर पर शैव तथा वैष्णव धर्मावलम्बी थे। खजुराहो के कन्दरिया महादेव, विश्वनाथ, लक्ष्मण, वराह एवं चतुर्भुज मंदिर इसके साक्षी हैं।

---

१. महोबा से १० वीं-११ वीं शती ई० की कुछ बौद्ध मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें तारा, सिंहनाथ लोकेश्वर और पद्मपाणि अवलोकितेश्वर का निरूपण हुआ है। धुबेला संग्रहालय एवं पुरातत्व संग्रहालय, खजुराहो में भी दो मूर्तियाँ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापत्य[1]

खजुराहो के मंदिर नागर शैली के उदाहरण हैं। इनकी नियोजित स्थापत्य योजना तथा उनमें पूरी तरह समाहित सुन्दर मूर्तियां नागर शैली के मंदिरों के विकास के श्रेष्ठतम स्तर को दर्शाती हैं। ये मंदिर शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और जैन सम्प्रदायों के हैं। यहाँ किसी बौद्ध मंदिर के अवशेष नहीं मिले हैं। विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बद्ध होने के बाद भी इन मंदिरों की वास्तु एवं शिल्प योजना मूलतः एकरूप है। चौंसठ योगिनी, ब्रह्मा, ललगुआँ, महादेव, वराह एवं मातंगेश्वर मंदिरों के अतिरिक्त अन्य सभी मंदिरों के वास्तु शैली की एकरूपता पूरी तरह स्पष्ट है।[2] बिना चहारदीवारी वाले खजुराहो के मंदिर एक ऊँची जगती पर स्थित हैं। तलच्छंद में ये मंदिर लैटिन क्रास के आकार के हैं, जिनमें लम्बी भुजा पूर्व से पश्चिम की ओर प्रदर्शित है। ये मंदिर गर्भगृह, अन्तराल, मण्डप और अर्द्धमण्डप से युक्त हैं। पार्श्वनाथ, लक्ष्मण तथा कन्दरिया महादेव जैसे अधिक विकसित मंदिरों में प्रदक्षिणापथ से युक्त मण्डप भी देखा जा सकता है। ऊर्ध्वच्छंद में खजुराहो के मंदिर जगती और उसपर लम्बाकार ऊपर की ओर उठने वाले अधिष्ठान, जंघा (या मंडोवर), वरण्ड एवं शिखर से युक्त हैं। मंदिरों के अधिष्ठानों पर विभिन्न अभिप्रायों एवं देव मूर्तियों का अंकन हुआ है। जंघा पर सामान्यतः मूर्तियों की दो या तीन समानान्तर पंक्तियाँ आकारित हैं, जिनमें प्रथम दो पंक्तियों में स्वतन्त्र देव तथा देव-युगल मूर्तियाँ हैं जबकि अन्तिम पंक्ति में गन्धर्वों, विद्याधरों एवं किन्नरों आदि की मूर्तियाँ हैं। निचली दो पंक्तियों में बीच-बीच में विभिन्न मनमोहक मुद्राओं में अप्सराओं या सुर-सुन्दरियों की भी आकर्षक मूर्तियाँ बनी हैं। इन्हीं में बीच-बीच में व्याल की भी विविध रूपों वाली मूर्तियाँ हैं। इनमें गज-व्याल, नर-व्याल, शुक-व्याल, सिंह-व्याल मुख्य हैं। उल्लेखनीय है कि खजुराहो मंदिरों पर व्याल आकृतियों का अंकन विशेष लोकप्रिय था। जंघा में कक्षासन या गवाक्ष का मनोहर अंकन कला सौन्दर्य के साथ ही मंदिर के भीतरी भाग में मन्द प्रकाश के संचार के व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। मंदिरों के छत भाग के ऊपर अर्द्धमण्डप, मण्डप और गर्भगृह के लिए अलग-अलग और क्रमशः उन्नत होती हुई कोणयुक्त स्तूपाकार पिरामिड के आकार वाली छतें हैं। शिखर के शीर्ष पर दो आमलक, एक कलश और सबसे ऊपर बीजपूरक है। प्रधान वक्र रेखाओं के लयबद्ध संयोजन से शिखर का आकार अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है। बड़े शिखर की मूल मंजरी के चारों ओर उरःशृंग हैं। खजुराहो-मंदिरों के वितान अत्यन्त कुशल और परिपक्व संयोजन व्यक्त करते हैं। खजुराहो के कुछ मंदिर पंचायतन (लक्ष्मण, विश्वनाथ) शैली के भी हैं जिनमें मध्यवर्ती प्रधान मंदिर के अतिरिक्त जगती के चारों कोनों पर एक-एक मंदिर बने हैं।

वर्तमान में खजुराहो में केवल २५ मन्दिर विभिन्न अवस्थाओं में सुरक्षित हैं। इन्हें साधारणतः तीन समूहों, पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी में विभाजित किया गया है। पश्चिमी

---

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, कृष्णदेव, 'दि टेम्पुल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इंडिया', पृ० ४३–६५; कृष्णदेव, **टेम्पुल्स आव नार्थ इंडिया**, दिल्ली, १९६९, पृ० ५५–६४।

२. कृष्णदेव, **टेम्पुल्स आव नार्थ इंडिया**, पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समूह में सर्वाधिक मन्दिर हैं। इसमें लक्ष्मण, विश्वनाथ, कन्दरिया महादेव, देवी जगदंबी, चित्रगुप्त, चौंसठ योगिनी, लालगुआँ महादेव, मातंगेश्वर, नन्दी, पार्वती, वराह तथा महादेव मन्दिर आते हैं। अन्तिम सात मन्दिर अपेक्षाकृत छोटे किन्तु स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पूर्वी समूह में ब्राह्मण और जैन दोनों ही मन्दिर आते हैं। ब्राह्मण मन्दिरों में ब्रह्मा, वामन और जवारी तथा जैन मन्दिरों में घण्टई, आदिनाथ और पार्श्वनाथ मन्दिर हैं। दक्षिणी समूह में केवल दो मन्दिर दूलादेव और चतुर्भुज हैं। ये दोनों ही मन्दिर ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं।

खजुराहो के मन्दिरों को सामान्यतः ९५० से १०५० ई० के मध्य निर्मित माना गया है। किन्तु श्री कृष्णदेव ने विविध अभिलेखीय साक्ष्यों तथा स्थापत्य, शिल्प एवं अलंकरणों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट किया है कि खजुराहो का प्राचीनतम मन्दिर ८५० ई० के पूर्व और अन्तिम मन्दिर ११०० ई० के बाद बना।[1] कृष्णदेव ने चौंसठ योगिनी, ललगुआँ महादेव, ब्रह्मा, मातंगेश्वर तथा वराह मन्दिरों को प्रारम्भिक तथा अन्य मन्दिरों को परवर्ती मन्दिरों के अन्तर्गत रखा है।

मूर्तिकला

शिल्प वैभव की दृष्टि से भी खजुराहो के मन्दिर विशेष महत्व के हैं। अन्यत्र के मध्ययुगीन मन्दिरों की भाँति खजुराहो में भी स्थापत्य एवं मूर्तिकला का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। मूर्तियाँ मन्दिरों के विभिन्न भागों पर स्थापत्यगत योजना के साथ पूरा सामंजस्य रखती हुई इस प्रकार उकेरी गई हैं कि उनसे मन्दिरों के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। मूर्तियाँ पूरी तरह मन्दिरों का स्वाभाविक अंग प्रतीत होती हैं।[2] खजुराहो की मूर्तियाँ गुप्तकालीन मूर्तियों के मौलिक विशेषताओं को मध्यकालीन प्रवृत्तियों के साथ संजोये हुए हैं। स्टेला क्रैमरिश के अनुसार चन्देल मूर्तिकला में भारतीय मूर्तिकला के मौलिक तत्व पूरी तरह जीवित और क्रियाशील रूप में विद्यमान हैं। इन मौलिक तत्वों ने ही कला को मध्ययुगीन स्वीकृत प्रवृत्तियों को नियंत्रित रखा।[3]

मध्यभारत के केन्द्र में स्थित होने के कारण इसपर पूर्वी और पश्चिमी भारत की कलाओं का प्रभाव पड़ा। भावों की गहनता, शिल्पी की आन्तरिक भावाभिव्यक्ति की क्षमता तथा भव्यता की दृष्टि से ये मूर्तियाँ गुप्त मूर्तियों के समकक्ष नहीं ठहरतीं, क्योंकि इनमें शारीरिक सौन्दर्य और आकर्षण, विशेषतः स्त्री आकृति के सन्दर्भ में, ऐन्द्रिकता के स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है। इन मूर्तियों में शरीर रचना अधिक जटिल तथा तीक्ष्ण एवं वक्र रेखाओं वाली है। मन्दिरों की दीवारों पर उभरी हुई ये मूर्तियाँ चारों ओर से कोरकर बनाये जाने का

---

१. कृष्णदेव, 'दि टेम्पुल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इंडिया', पृ० ४९–५१।

२. कनिंघम ने कन्दरिया महादेव मन्दिर के भीतर और बाहर की ओर कुल ८७२ मूर्तियों का उल्लेख किया है। मूर्तियों की इस अपार संख्या के बाद भी स्थापत्य एवं मूर्ति के बीच का सामंजस्य बना हुआ है।

३. **मेमॉयर्स ऑव आर्कियोलाजिकल सर्वे आव इण्डिया**, अंक ३, पृ० १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव व्यक्त करती हैं और रूपयष्टि की साकार और मनभावन अभिव्यक्ति लगती हैं। प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से भी ये मूर्तियाँ अत्यन्त विकसित कोटि की हैं और इनमें लक्षणों और सहायक आकृतियों से सम्बन्धित विवरणों की प्रमुखता है, जो मध्यकालीन मूर्तिकला की एक सामान्य विशेषता रही है। मध्यकालीन मूर्तियों में प्रतिमालक्षण की दृष्टि से मूर्तियों के क्लिष्ट होने तथा देवमूर्ति निर्माण में कलाकार की पूरी तरह शास्त्रीय ग्रन्थों पर निर्भरता के कारण कला में यान्त्रिकता का भाव प्रकट हुआ। यह बात खजुराहो की मूर्तियों में भी पूरी तरह स्पष्ट है। खजुराहो की मूर्तियों में क्रियाशीलता, आनुपातिक अंग योजना तथा शरीर रचना में किंचित् मांसलता और ऐन्द्रिकता का भाव स्पष्ट है। विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं तथा तीखे शारीरिक लोचों द्वारा विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति की गयी है। आकृतियों के मुख सामान्यतः अण्डाकार और ठुडी गोल है। नेत्र, भौंह, नासिका और होठों के निर्माण पर विशेष ध्यान देकर आकृतियों को आकर्षक बनाया गया है। लम्बी आँखों के ऊपर भोहों की पतली एवं वक्र रेखा प्रदर्शित है। खजुराहो-मूर्तियों में कलाकार की आकर्षक मूर्ति रचना की प्रतिभा अप्सरा मूर्तियों में पूरी तरह उजागर हुई है। शरीर के विभिन्न अवयव शास्त्रीय सौन्दर्य के प्रतिमान प्रतीत होते हैं। प्रतिमालाक्षणिक विवरणों से युक्त होने के बाद भी इन मूर्तियों में जीवन का स्पन्दन और उसकी गतिशीलता स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त है। १० वीं शती ई० के बाद की खजुराहो की मूर्तियों में स्पष्टतः एक अन्तर दिखाई देता है। पार्श्वनाथ एवं लक्ष्मण मन्दिरों की तुलना में कन्दरिया महादेव, आदिनाथ, चतुर्भुज एवं दूलादेव मन्दिरों की मूर्तियाँ शारीरिक रचना की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक पतली और लम्बी दिखाई देती हैं। इनमें आभूषणों एवं आकृतियों के मुख तथा शारीरिक मुद्राओं का भी किंचित् अस्वाभाविक रूप में अंकन हुआ है। ये मूर्तियां १० वीं शती ई० तक की मूर्तियों की तुलना में आकर्षक भी नहीं हैं और इनकी मुद्राओं में शनैः-शनैः गतिशीलता के स्थान पर स्थिरता का भाव प्रबल होता दिखाई देता है।

खजुराहो की मूर्तियाँ तीन समूहों में विभाज्य हैं : पहले वर्ग में चारों ओर से कोरकर बनायी गयी मूर्तियाँ आती हैं, जो मुख्यतः गर्भगृह में प्रतिष्ठित हैं। दूसरे वर्ग में मन्दिरों की भित्तियों एवं स्तम्भों पर पर्याप्त उभार में उकेरी तीन आयामों वाली मूर्तियाँ आती हैं। इनमें भित्तियों की विभिन्न देव, अप्सरा एवं दिक्पाल आकृतियाँ सम्मिलित हैं। तीसरे वर्ग में अपेक्षाकृत कम उभरी और विभिन्न गहराइयों में काटकर बनायी गयी मूर्तियाँ आती हैं। इनमें जगती, अधिष्ठान, उत्तरंग एवं शिखर आदि की देव, पशु, अप्सरा मूर्तियाँ तथा रामायण एवं महाभारत और आखेट, युद्ध एवं सामान्य जीवन के दृश्यांकन हैं। खजुराहो का रूपविधान वास्तव में ललित कलाओं का समग्र रूप में आकलन है। इनमें एक ओर चारुतत्व का सूक्ष्म अंकन मिलता है तो दूसरी ओर शृंगारिकता का उद्दाम पक्ष भी रूपायित हुआ है।

खजुराहो की मूर्तियों को विषय वस्तु के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में पूजा के लिए बनी उपास्यदेवों की प्रतिमाएँ आती हैं। प्रायः चारों ओर से कोरकर बनायी गयी पारम्परिक लक्षणों वाली ये मूर्तियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिरों के गर्भगृह, जंघा एवं कुछ अन्य भागों पर बनी हैं। दूसरे वर्ग में परिवार या पार्श्व देवताओं की मूर्तियाँ आती हैं, जो मुख्यतः मन्दिरों की जंघा, रथिकाओं एवं प्रवेश-द्वारों पर बनी हैं। इनमें दिक्पाल, यक्ष-यक्षियों, गंगा-यमुना, कार्त्तिकेय एवं गणों आदि की मूर्तियाँ हैं। तीसरे वर्ग में अप्सरा या मदनिका मूर्तियाँ आती हैं, जिनकी संख्या बहुत अधिक है। मनमोहक मुद्राओं, सुन्दर वस्त्राभूषणों के अलंकरण तथा आकर्षक शारीरिक रचना के कारण ये मूर्तियाँ खजुराहो कला की सर्वोत्तम मूर्तियाँ मानी जाती हैं। ये अप्सराएँ अपने को विवस्त्र करती (विवृतजघना), अँगड़ाई लेती, अपने पृष्ठभाग को नखों से खँरोचती, पयोधरों का स्पर्श करती, वेणियों से जल निचोड़ती, पैरों से काँटा निकालती, शिशु को दुलारती (पुत्रवल्लभा), पालित पशु-पक्षियों, जैसे शुक और वानर के साथ क्रीड़ा करती, पत्र लिखती, वीणा अथवा वंशी बजाती, दीवारों पर चित्रांकन करती या पैरों में महावर रचाती, नूपुर बँधवाती, नेत्रों में सुरमा अथवा काजल लगाती एवं दर्पण में मुख देखती (दर्पणा) हुई प्रदर्शित हैं। इनमें भारतीय साहित्य में वर्णित विभिन्न नायिकाओं के मूर्त रूप देखने को मिलते हैं।

खजुराहों में विभिन्न मनमोहक मुद्राओं वाली अप्सरा मूर्तियों के साथ ही सामान्य आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष युगलों के चुम्बन और आलिंगन से सम्बन्धित अनेक मूर्तियाँ भी हैं। स्त्री-पुरुष युगलों की रतिक्रिया में संलग्न मूर्तियों के अनेक उदाहरण लक्ष्मण, विश्वनाथ, कन्दरिया महादेव तथा चित्रगुप्त मन्दिरों एवं कुछ उदाहरण पार्श्वनाथ मन्दिर पर हैं। खजुराहो के ब्राह्मण मन्दिरों में कामक्रिया के असामान्य या उद्दाम अंकन भी हैं, जिनमें युगलों या दो से अधिक लोगों के सामूहिक रतिक्रिया को असामान्य स्तर पर दर्शाया गया हैं। ऐसी मूर्तियाँ मुख्य रूप से कन्दरिया महादेव और लक्ष्मण मन्दिरों पर हैं। अगले वर्ग में अत्यधिक अस्वाभाविक स्तर के मनुष्य और पशु के काम सम्बन्धी अंकन आते हैं, जिनमें श्वान्, मृग, गर्दभ, अश्व आदि के साथ मनुष्य के समागम दृश्य हैं। ऐसी मूर्तियाँ मुख्यतः विश्वनाथ, लक्ष्मण और कन्दरिया महादेव मन्दिरों पर हैं।

चौथे वर्ग में रामायण, महाभारत एवं कृष्णलीला के दृश्यांकन तथा सामान्य जन-जीवन के विविध पक्षों के अंकन आते हैं। रामायण और महाभारत के अंकन लक्ष्मण, पार्श्वनाथ एवं कन्दरिया महादेव मन्दिरों पर हैं। युद्ध, आखेट, नृत्य, संगीत, गुरु-शिष्य, कार्यरत श्रमिक तथा विभिन्न पारिवारिक दृश्यों के अंकन न्यूनाधिक लगभग सभी मन्दिरों पर उत्कीर्ण हैं। ये दृश्य तत्कालीन जीवन की बहुमुखी झाँकी प्रस्तुत करते हैं। लक्ष्मण मन्दिर के जीवन्त युद्ध दृश्यों में युद्ध की स्थितियों तथा उसकी विभीषिका और साथ ही युद्ध में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का अंकन हुआ है। पाँचवें वर्ग में पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ आती हैं, जिनमें शार्दूल (या व्याल या वराल या विराल) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। शार्दूल कला में अभिव्यक्त एक कल्पित पशु है, जिसे मुख्यतः शृंगों वाले सिंह के रूप में दर्शाया गया है। खजुराहो की मूर्तियों में गज, अश्व, मत्स्य, शुक, वराह एवं नर-व्यालों के रूप में इनका अंकन हुआ है। अन्तिम वर्ग में वानस्पतिक जगत् तथा भारतीय परम्परा में प्रचलित स्वस्तिक, पद्म, नन्द्यावर्त जैसे प्रतीक आते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार खजुराहो की मूर्तिकला में पूर्व मध्यकालीन मध्य भारत का सम्पूर्ण जीवन मूर्तिमान दिखाई देता है। इनमें युद्ध, आखेट, संगीत, नृत्य, शिक्षा, प्रसाधन आदि से सम्बन्धित अनेक दृश्य देखने को मिलते हैं। खजुराहो की बहुसंख्यक मूर्तियों में इहलोक तथा परलोक की अनेक मनोरम भावनायें साकार रूप में प्रकट हुई हैं। यहाँ के कलाकारों ने प्रकृति और मानव जीवन के शृंगारिक तथा आनन्दमय पक्ष को शाश्वत् रूप देने का प्रयास किया है। शिल्प शृंगार का इतना समृद्ध और व्यापक रूप सम्भवतः भारत के अन्य किसी कलाकेन्द्र पर देखने को नहीं मिलता।

प्रतिमा-विज्ञान

खजुराहो मन्दिरों की मूर्तियाँ प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ ब्राह्मण और जैन धर्मों से सम्बन्धित देव-मूर्तियों के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। शिव की विभिन्न सौम्य, और संहारक मूर्तियों के अतिरिक्त उनकी नटराज तथा संयुक्त मूर्तियाँ भी हैं। इसी प्रकार शैव परिवार के गणेश और कार्त्तिकेय की भी पर्याप्त मूर्तियाँ हैं। शक्ति के विविध रूपों में महिषमर्दिनी, काली, चामुण्डा, पार्वती और सप्त-मातृकाओं की मूर्तियाँ मुख्य हैं। वैष्णव मूर्तियों में विष्णु की स्वतन्त्र स्थानक, आसन तथा शेषशायी रूपों की प्रचुर मूर्तियाँ हैं। साथ ही विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन (त्रिविक्रम), राम, परशुराम, बलराम और कृष्ण (या बुद्ध) आदि अवतार-स्वरूपों तथा लक्ष्मी-नारायण स्वरूप की भी अनेक मूर्तियाँ बनीं। इनके अतिरिक्त सूर्य, ब्रह्मा, सरस्वती और गज-लक्ष्मी की भी पर्याप्त मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ लगभग सभी मन्दिरों पर न्यूनाधिक संख्या में आकारित हैं। पार्श्वनाथ जैन मन्दिर पर राम, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, बलराम एवं काम आदि ब्राह्मण देवों की स्वतन्त्र एवं शक्ति-सहित आलिंगन मूर्तियाँ विशेष महत्व की हैं। इनसे खजुराहो में ब्राह्मण और जैन सम्प्रदायों के बीच के सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध प्रकट होते हैं। लक्ष्मण, कन्दरिया महादेव, पार्श्वनाथ एवं अन्य मन्दिरों पर विभिन्न देव युगलों की आलिंगन मूर्तियों में देवताओं की शक्तियों को सामान्य लक्षणों वाला, विशिष्टतारहित तथा द्विभुज दर्शाया गया है। उनके साथ पारम्परिक वाहनों एवं आयुधों का प्रदर्शन नहीं हुआ है। जंघा की स्वतन्त्र तथा शक्ति-सहित आलिंगन देव-मूर्तियाँ सामान्यतः त्रिभंग में निरूपित हैं।

प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से खजुराहो में कुछ दुर्लभ मूर्तियाँ भी बनीं, जिनमें शंख, चक्र और पद्म पुरुष; विष्णु के हयग्रीव, वैकुण्ठ, अनन्त तथा विश्वरूप; नारसिंही, गोधासना पार्वती एवं सिंहवाहना गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ महत्व की हैं। संघाट या समन्वित मूर्ति निर्माण की परम्परा भी खजुराहो में लोकप्रिय थी जिसके फलस्वरूप हरिहर, अर्द्धनारीश्वर, हरिहरपितामह (दत्तात्रेय), सूर्यनारायण, हरिहरहिरण्यगर्भ की अनेक मूर्तियाँ बनीं। इनके अतिरिक्त गौण देवताओं का भी अनेकशः निरूपण हुआ। इनमें अष्टदिक्पाल, नवग्रह, अष्टवसु, गन्धर्व, नाग एवं विद्याधर मूर्तियाँ मुख्य हैं। इनका अंकन सभी मन्दिरों पर हुआ है। मन्दिरों के अर्द्ध-मण्डप और गर्भगृह के ललाटबिम्ब में गर्भगृहों में प्रतिष्ठित मुख्य देवता या उसके किसी प्रमुख स्वरूप की छोटी मूर्ति आकारित हैं। द्वार-शाखाओं पर गंगा-यमुना और मन्दिरों की जंघा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा गर्भगृह की भित्ति के निर्धारित कोणों पर अष्टदिक्पालों का निरूपण हुआ है। सप्त-मातृकाओं की मूर्तियों में एक ओर गणेश और दूसरी ओर वीरभद्र की मूर्तियाँ बनी हैं। प्रतिमालक्षण की दृष्टि से दूलादेव मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेश-द्वार की नृत्यरत सप्तमातृका मूर्तियाँ महत्वपूर्ण हैं। लक्ष्मण मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति पर कृष्णलीला से सम्बन्धित तथा पार्श्व-नाथ, लक्ष्मण और कन्दरिया महादेव मन्दिरों के अधिष्ठान और शिखर पर रामायण के दृश्यांकन हैं। कृष्णलीला के दृश्यों में कुवलयापीड-उद्धार, शकट-भंग, अरिष्टासुर-वध, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर-वध, तृणावर्त-वध, कालिय-मर्दन, पूतना-वध, कुब्जानुग्रह, चाणूर-युद्ध, शलयुद्ध एवं बलराम द्वारा सूतलोमहर्षण का वध मुख्य हैं। रामायण के दृश्यों में मारीच-वध, सीताहरण, अशोकवाटिका में सीता और वालि-सुग्रीव युद्ध मुख्य हैं।

प्रतिमालक्षण की दृष्टि से खजुराहो की मूर्तियाँ पारम्परिक और विकसित कोटि की हैं। देवमूर्तियों के निरूपण में सामान्यतः मुख्य आयुधों, वाहनों एवं अन्य लक्षणों की दृष्टि से शास्त्रीय ग्रन्थों का पालन किया गया है खजुराहो के मूर्ति निर्माण की परम्परा अधिकांशतः पुराणों एवं **अपराजितपृच्छा** (भुवनदेवकृत, १३ वीं शती ई० का उत्तरार्द्ध) से प्रभावित रही है। खजुराहो की मूर्तियों में शास्त्रीय विवरणों के प्रति प्रतिबद्धता के बाद भी कलाकार ने एकरसता के परिहार के लिए देवमूर्तियों में आयुधों के क्रम तथा सहायक आकृतियों के निरूपण में किंचित् परिवर्तनों द्वारा अपनी सूझ-बूझ को भी प्रदर्शित किया है। विभिन्न देवाकृतियों के हाथों में पद्म का प्रदर्शन खजुराहो में विशेष लोकप्रिय था। पद्म के जितने विविध रूप खजुराहो की देवमूर्तियों में मिलते हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं मिलते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय २

खजुराहो की जैन कला

खजुराहो के जैन मंदिर पूर्वी समूह के मंदिरों के अन्तर्गत आते हैं। एक विशाल किन्तु आधुनिक चहारदीवारी के अन्दर यहाँ कई प्राचीन और नवीन जैन मंदिर सुरक्षित हैं। नवीन जैन मंदिर प्राचीन मंदिरों के ध्वंसावशेषों पर ही निर्मित हैं जिनमें प्राचीन जैन मंदिरों के प्रवेश-द्वारों तथा मूर्तियों का उपयोग किया गया है। वर्तमान में इस चहारदीवारी में कुल १५ जैन मंदिर हैं, जिनमें केवल पार्श्वनाथ और आदिनाथ मंदिर ही अपने मूलरूप में हैं। शांतिनाथ मंदिर (क्रमांक १) की मूलनायक की प्रतिमा एवं कुछ अंशों में मंदिर भी अपने मूलरूप में विद्यमान है। चहारदीवारी के बाहर एक अन्य प्राचीन जैन मंदिर के कुछ भाग सुरक्षित हैं। यह मंदिर अपने विशिष्ट अलंकरणों के कारण घण्टई मंदिर के नाम से ज्ञात है। खजुराहो के जैन मंदिर और उनकी प्रभूत जैन मूर्तियां १०वीं से १२वीं शती ई० के मध्य खजुराहो में जैन धर्म और कला के तीव्र विकास की स्पष्ट साक्षी हैं। पार्श्वनाथ मंदिर खजुराहो का एक विशाल और सुन्दर मंदिर है। पार्श्वनाथ, घण्टई तथा आदिनाथ मंदिरों के निर्माण में स्थानीय जैन समाज के साथ ही किंचित् शासकीय समर्थन भी था।

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में शासकीय संरक्षण एवं समर्थन के साथ ही व्यापारी तथा व्यवसायी वर्ग के आर्थिक सहयोग और धार्मिक संगठन तथा धर्माचार्यों की इन गतिविधियों में रुचि की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैन मंदिरों और मूर्तियों की संख्या तथा उन पर उत्कीर्ण लेख उनके निर्माण में स्पष्टतः चन्देल शासकों, व्यापारी एवं व्यवसायी वर्गों तथा स्थानीय जैन संगठन के सक्रिय सहयोग को प्रकट करता है।

चन्देल शासकों ने अपना राजनीतिक जीवन गुर्जर-प्रतिहार शासकों के सामंत के रूप में प्रारम्भ किया था। प्रतिहारों के समय में राजस्थान में ओसियां (जोधपुर–महावीर मंदिर, लगभग ८वीं शती ई०), मध्य प्रदेश में ग्यारसपुर (विदिशा–मालादेवी मंदिर) एवं उत्तर प्रदेश में देवगढ़ (ललितपुर–शांतिनाथ मंदिर, ८६२ ई०) जैसे स्थलों पर जैन मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। यद्यपि कोई भी चन्देल शासक व्यक्तिगत रूप से जैन धर्मावलम्बी नहीं था किन्तु धार्मिक सहिष्णुता की नीति के कारण इन शासकों ने ब्राह्मण मंदिरों एवं मूर्तियों के साथ ही जैन मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण को भी प्रोत्साहित किया। चन्देल शासकों के काल में उत्तर प्रदेश में चांदपुर, बूढ़ी चांदेरी, दुधई, महोबा एवं देवगढ़ तथा मध्य प्रदेश में खजुराहो, अजयगढ़ (गुना), अहार, मदनसागरपुर एवं कई अन्य स्थलों पर जैन मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। कीर्तिवर्मन् के शासनकाल (१०६३ ई०) में बानपुर में सहस्रकूट जिनालय तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६६ ई० में अहार में एक जैन मंदिर का निर्माण हुआ। कीर्तिवर्मन् के उत्तराधिकारी जयवर्मन् के समय में महोबा में १११२ ई० में कई जिन प्रतिमायें प्रतिष्ठित हुईं। मदनवर्मन् ने महोबा में ११५४ ई० में नेमिनाथ एवं ११५६ ई० में सुमतिनाथ की मूर्तियों की स्थापना की। महोबा से ११४५ ई० और ११५८ ई० की कुछ अन्य जैन प्रतिमायें भी मिली हैं। मदनवर्मन् के उत्तराधिकारी परमर्दिदेव (११६५-१२०३ ई०) के शासनकाल में महोबा में एक जैन मंदिर का निर्माण हुआ।[1] इसी के शासनकाल में ११८० ई० में अहार क्षेत्र में शांतिनाथ की विशाल खड्गासन मूर्ति भी बनी।

जैन कला की दृष्टि से खजुराहो निश्चित ही चन्देल शासकों के काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र था। इसकी पृष्ठभूमि में खजुराहो का चन्देल शासकों की राजधानी होना था। खजुराहो के विभिन्न जिनालयों एवं मूर्तियों का निर्माण हर्षदेव, यशोवर्मन्, धंग, गण्ड, विद्याधर, कीर्तिवर्मन् और मदनवर्मन् के शासन में हुआ। पार्श्वनाथ मंदिर की ब्राह्मण देव मूर्तियाँ ब्राह्मण धर्मावलम्बी चन्देल शासकों के समर्थन तथा जैन समुदाय के उदार धार्मिक दृष्टि का संकेत हैं। पार्श्वनाथ जैन मंदिर के विक्रम संवत् १०११ (९५४ ई०) के लेख में धंग के शासनकाल में ही श्रेष्ठि पाहिल द्वारा जिननाथ का भव्य मंदिर बनवाकर उसके लिए प्रभूत दान देने का उल्लेख है।[2] धंग के महाराज गुरु वासवचन्द्र भी जैन थे।[3] यद्यपि वासवचन्द्र कभी मंत्री नहीं रहे किन्तु उन्होंने अपने महाराजगुरु पद के प्रभाव का निश्चय ही उपयोग किया होगा। धंग के शासनकाल में निर्मित पार्श्वनाथ मंदिर इसका प्रमाण है। पाहिल द्वारा पार्श्वनाथ मंदिर को सात वाटिका का दान दिए जाने पर धंग ने उसका सम्मान भी किया था। यह बात जैन धर्म के प्रति धंग के उदार दृष्टिकोण को व्यक्त करती है।[4] पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण भी पाहिल द्वारा किया था।[5] विद्याधर के समय खजुराहो के शांतिनाथ मंदिर में शांतिनाथ की १६ फीट ऊँची विशाल प्रतिमा (१०२८ ई०) स्थापित की गई। ११७७ ई० में परमर्दिदेव के शासन-काल में भी खजुराहो में एक जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई।

उपर्युक्त लेखों तथा चन्देल शासन के विभिन्न क्षेत्रों से जैन मंदिर एवं मूर्ति अवशेषों के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि चन्देल राज्य के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में समृद्ध जैनों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं जिनका मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में पूरा आर्थिक सहयोग मिल रहा था। श्रेष्ठि पाहिल, साल्हे, जाहद, मल्हण, पाणिधर तथा उनके पुत्रों (त्रिविक्रम, आल्हण तथा लक्ष्मीधर), श्रेष्ठि बीवनशाह एवं उनकी भार्या पद्मावती तथा श्रेष्ठि देदू एवं माहुल आदि के नामोल्लेख

---

१. जैन, ज्योतिप्रसाद, **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें**, दिल्ली, १९७५, पृ० २२४-२५।

२. **वही**, पृ० २२४।

३. जन्नास, ई० तथा अबुय्य, जे०, **खजुराहो**, हेग, १९६०, पृ० ६।

४. **एपिग्राफिया इंडिका**, खंड–१, पृ० १३५–३६।

५. कृष्णदेव, "**दि टेम्पुल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इंडिया**" पृ० ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो, दुबकुण्ड, अहार, मदनेशसागरपुर आदि स्थलों के जैन मूर्ति लेखों में मिलते हैं।[1] इन लेखों में आये विभिन्न रूपकारों या शिल्पियों के नामोल्लेख भी महत्व के हैं। इनमें लाखन, कुमारसिंह, पापट एवं रामदेव आदि रूपकारों के नाम उल्लेखय हैं।[2] खजुराहो एवं अन्य स्थलों के लेखों में विभिन्न दिगम्बर जैनाचार्यों के भी उल्लेख मिलते हैं, जिनसे सम्पूर्ण क्षेत्र में जैन मंदिरों एवं मूर्तियों के होने तथा उनके स्वतंत्र विचरण का संकेत मिलता है। वासवचन्द्र के अतिरिक्त हमें श्रीदेव, कुमुदचन्द्र, देवचन्द्र आदि जैनाचार्यों के उल्लेख मिलते हैं।[3]

खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर को सात वाटिकाओं का दान करने वाला पाहिल श्रेष्ठि देदू का पुत्र था। ये वाटिकायें पाहिल, चन्द्र, लघुचन्द्र, शंकर, पंचायतन, आम्र और धंग नाम वाली थीं। वाटिकाओं के नाम स्पष्टतः ब्राह्मण एवं जैन परम्परा के सामंजस्य को प्रकट करते हैं।[4] खजुराहो के १०७५ ई० के एक मूर्ति लेख में श्रेष्ठि बीवनशाह की भार्या पद्मावती द्वारा आदिनाथ की मूर्ति स्थापित किये जाने का उल्लेख है। खजुराहो के ११४८ ई० के एक अन्य मूर्ति लेख में श्रेष्ठि पाणिधर के तीन पुत्रों का तथा पाणिधर द्वारा वहाँ जैन मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। खजुराहो के ११५८ ई० के एक अन्य लेख में पाहिल के वंशज एवं गृहपति कुल के साधु साल्हे द्वारा संभवनाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है। लेख में साल्हे के पुत्रों, महागण, महाचन्द्र, शनिचन्द्र, जिनचन्द्र, उदयचन्द्र आदि के भी नाम दिये हैं।[5] इस प्रकार खजुराहो के विभिन्न मूर्ति लेखों से स्पष्ट है कि व्यापारी परिवार के पाहिल एवं उसके पिता और अन्य पूर्वजों तथा उत्तराधिकारियों ने लगभग २०० वर्षों (९५४-११५८ ई०) तक जैन मूर्ति निर्माण में पूरा आर्थिक सहयोग दिया। इन लेखों से गृहपति वंश के जैन धर्मावलम्बी होने की भी स्पष्टतः सूचना मिलती है। इस कुल के विभिन्न सदस्यों ने आदिनाथ, संभवनाथ एवं नेमिनाथ तीर्थंकरों की मूर्तियां बनवायी थीं।

खजुराहो के जैन मंदिर

खजुराहो के पूर्वी मन्दिर समूह में ब्राह्मण और जैन दोनों ही धर्मों के मन्दिर आते हैं। घण्टई मन्दिर के अतिरिक्त अन्य सभी जैन मन्दिर एक आधुनिक चहारदीवारी में स्थित हैं।

---

१. द्रष्टव्य, तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, **जैन प्रतिमाविज्ञान**, वाराणसी, १९८१, पृ० २७।

२. पार्श्वनाथ मंदिर के अर्धमंडप के प्रवेशद्वार के समीप ही गोहल, माहुल, देवशर्मा, जयसिंह और पीषन के नाम फर्श और दीवारों पर अभिलिखित हैं। ज्योति प्रसाद जैन ने इन नामों को पार्श्वनाथ मन्दिर के निर्माण से सम्बद्ध शिल्पियों का नाम माना है। जैन, ज्योति प्रसाद, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० २२६।

३. जैन, ज्योति प्रसाद, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० २२५; जैन, बलभद्र, **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ** (तृतीय भाग)—मध्य प्रदेश, बम्बई, १९७६, पृ० १४०-४२।

४. **एपिग्राफिया इंडिका**, खण्ड १, पृ० १३५-३६।

५. **वही**, पृ० १३६; विजयमूर्ति (सं०), **जैन शिलालेख संग्रह**, भाग—३, बम्बई, १९५७, पृ० ७९, १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध खजुराहो के जैन मन्दिर एवं मूर्तियाँ लगभग ९५० से ११५० ई० के मध्य बनीं। तीर्थंकरों की निर्वस्त्र मूर्तियों तथा जैन मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर १६ मांगलिक स्वप्नों के उकेरन से मन्दिरों का पूरी तरह दिगम्बर सम्प्रदाय से संबद्ध होना स्पष्ट है। जैन मन्दिरों में पार्श्वनाथ मन्दिर प्राचीनतम और स्थापत्यगत योजना की दृष्टि से विशालतम है। प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से आदिनाथ मन्दिर की मूर्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। घण्टई मन्दिर यद्यपि वर्तमान में खण्डित रूप में है किन्तु अपने मूलरूप में यह मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर के समान विशाल और उतना ही सुन्दर भी रहा है। खजुराहो की जैन मूर्तियाँ प्राचीन तथा नवीन जैन मन्दिरों पर हैं। साथ ही अनेक मूर्तियाँ स्थानीय साहू शांति प्रसाद जैन, जार्डिन एवं पुरातात्विक संग्रहालयों में भी सुरक्षित हैं।

खजुराहो की जैन मूर्तिकला में तीर्थंकरों की स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही उनकी द्वितीर्थी और चौमुखी मूर्तियाँ भी बनीं। तीर्थंकरों के जीवन-दृश्यों के अंकन का यहां अभाव दृष्टिगत होता है। केवल कुछ तीर्थंकरों के अभिषेक से सम्बन्धित दृश्य ही मिलते हैं। ज्ञातव्य है कि दिगम्बर स्थलों पर तीर्थंकरों के जीवन दृश्यों का अंकन सामान्यतः नहीं हुआ है। ऐसे अंकन श्वेताम्बर स्थलों पर ही मिलते हैं, जिनके मुख्य उदाहरण ओसियाँ, कुंभारिया एवं दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों में हैं। तीर्थंकरी के पश्चात् उनके शासनदेवताओं (या यक्ष-यक्षी) का निरूपण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। यक्ष और यक्षियों की मूर्तियाँ जिन-संयुक्त मूर्तियों के साथ ही स्वतंत्र रूप में भी बनीं। खजुराहों में केवल गोमुख-चक्रेश्वरी, सर्वाह्न या सर्वानुभूति (या कुबेर)-अम्बिका, धरणेन्द्र-पद्मावती एवं मातंग-सिद्धायिका की ही स्वतन्त्र मूर्तियाँ बनीं। ये यक्ष-यक्षी युगल क्रमशः ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के शासनदेवता हैं। तीर्थंकरों और शासन-देवताओं के पश्चात् जैन देवकुल में महाविद्याओं का ही महत्व था। यद्यपि महाविद्याओं के मूर्त अंकन के उदाहरण दिगम्बर स्थलों पर नहीं मिलते, किन्तु खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर की १६ रथिकाओं में प्रतिष्ठित स्वतन्त्र लक्षणों वाली देवियों की पहचान जैन परम्परा के १६ महाविद्याओं से सम्भव है।

खजुराहो के मन्दिरों में सरस्वती, लक्ष्मी, क्षेत्रपाल, बाहुबली एवं जैन आचार्यों आदि का भी निरूपण हुआ है। मन्दिरों के निर्धारित कोणों पर अष्टदिक्पालों की स्थानक मूर्तियाँ और प्रवेशद्वारों के उत्तरंगों पर नवग्रहों और बड़ेरियों पर १६ मांगलिक स्वप्नों का अंकन है। आदिनाथ मन्दिर पर गोमुख यक्ष या (अष्टवसुओं) की मूर्तियाँ भी आकारित हैं। जैन मन्दिरों पर अष्टदिक्पालों एवं नवग्रहों का निरूपण जैन धर्म में इनके पूजन का प्रमाण है। खजुराहो के ब्राह्मण मन्दिरों की मूर्तियों का किंचित् प्रभाव अप्सराओं एवं कामक्रिया से सम्बन्धित शिल्पांकनों के साथ ही पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप और गर्भगृह की जंघा और शिखरों की विभिन्न ब्राह्मण देवयुगल आकृतियों के अंकन में भी देखा जा सकता है। ज्ञातव्य है कि अन्य किसी भी स्थल पर जैन मन्दिर पर ब्राह्मण देव युगलों का और वह भी आलिंगन मुद्रा में निरूपण नहीं हुआ है। इनमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा, काम, बलराम, राम आदि की शक्ति सहित आलिंगन मूर्तियाँ हैं। ऐसी मूर्तियाँ केवल पार्श्वनाथ मन्दिर पर ही हैं। जैन मन्दिरों के प्रवेश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारों पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की स्थानक मूर्तियाँ भी मन्दिर निर्माण की सामान्य विशेषता के अनुरूप हैं।

यहाँ खजुराहो के जैन मन्दिरों तथा मूर्तियों का संक्षेप में अलग-अलग उल्लेख आवश्यक है।

मन्दिर क्रमांक १ (शांतिनाथ मन्दिर)

पार्श्वनाथ मन्दिर के समीप ही दक्षिण की ओर एक अलग छोटी चहारदीवारी में शांतिनाथ मन्दिर सहित कुल १६ मन्दिर हैं जिनका निर्माण अधिकांशतः प्राचीन जैन मन्दिरों और मूर्तियों के अवशेषों से किया गया है। इन मन्दिरों का क्रमांक (आगे से क्र०) १ (शांतिनाथ) से १६ (आदिनाथ) है। शांतिनाथ मन्दिर में शांतिनाथ की १२ फीट ऊँची खड्गासन मूर्ति है। यह तीर्थंकर प्रतिमा खजुराहो की समस्त देव प्रतिमाओं में विशालतम और सांगोपांग प्रतिमा है। मूलनायक के दोनों हाथों में पूर्ण विकसित पद्म हैं और सौम्यमुख पर गहन चिन्तन का भाव व्यक्त है। शांतिनाथ के दोनों ओर पार्श्वनाथ (३' ५'' × १' ११ ') की तथा परिकर में अन्य जिनों की आकृतियाँ बनीं हैं। चमकदार आलेप से युक्त शांतिनाथ की विशाल प्रतिमा मनोज्ञ और अनुपातिक अंग योजना वाली है। अलंकृत प्रभामण्डल से युक्त मूर्ति में एक योगी की तपश्चर्या और चिन्तन के भाव को सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया गया है। संवत् १०८५ (= १०२८ ई०) के लेख से युक्त इस मूर्ति के समीप ही दीवारों में पार्श्वनाथ, ऋषभनाथ (२' १०'' × १' ८'') और महावीर तथा कुछ अन्य तीर्थंकरों की ११वीं शती ई० की मूर्तियाँ भी सुरक्षित हैं। पार्श्वनाथ के सिर पर सर्प फणों का फैलाव और उनके बैठने का शांत भाव सुन्दर है। इस मूर्ति के परिकर में बाहुबली की भी मूर्ति बनी है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर गंगा-यमुना और समीप ही क्षेत्रपाल (२' × १' ३') की मूर्तियाँ हैं। क्षेत्रपाल की मूर्ति में रौद्र भाव के स्थान पर मुख पर सौम्य भाव है और शारीरिक चेष्टाओं से नृत्य की लयात्मकता पूरी तरह अभिव्यक्त है।

मन्दिर क्रमांक १/२

इस मन्दिर के प्रवेशद्वार पर गंगा और यमुना की बिना वाहन वाली एवं नृत्यरत पुरुषों की ६ आकृतियाँ और गर्भगृह में द्वितीर्थी जिनों की कायोत्सर्ग मूर्ति (४' × २) है।

मन्दिर क्रमांक १/३

इस मन्दिर में मूलनायक के रूप में पार्श्वनाथ की सात सर्पफणों के छत्र वाली कायोत्सर्ग (४' ४'' × १' ११'') मूर्ति है। इस मनोज्ञ मूर्ति में शरीर रचना इकहरी और सुन्दर है। पार्श्वनाथ के दक्षिण पार्श्व में बिल्हारी से प्राप्त एक द्वितीर्थी जिन मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति में ऋषभनाथ और चन्द्रप्रभ की क्रमशः वृषभ और चन्द्र लांछनों वाली कायोत्सर्ग आकृतियाँ बनी हैं। दोनों ही तीर्थंकरों के साथ चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं, जिनके करों में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक और जलपात्र हैं। मूलनायक के बायीं ओर भी एक द्वितीर्थी जिन मूर्ति अवस्थित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग में अवस्थित जिनों के साथ यहाँ लांछन नहीं दिखाये गये हैं। इस मूर्ति के परिकर में पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति भी बनी है।

मन्दिर क्रमांक १/४

इस मन्दिर के उत्तरंग पर १६ मांगलिक स्वप्न और द्वारशाखाओं पर गंगा-यमुना की आकृतियाँ हैं। मूलनायक के रूप में नौ सर्पफणों के छत्र वाली पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति स्थित है। संगमरमर में उकेरी यह मूर्ति विक्रम संवत् १९२७ (ई० १८७०) की है। इस मूर्ति के समीप ही पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ की २० वीं शती ई० की काले संगमरमर की ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों के अतिरिक्त मन्दिर में पत्थर में बनी पार्श्वनाथ (चार उदाहरण), चन्द्रप्रभ, आदिनाथ और अजितनाथ एवं धातु में बनीं आदिनाथ, शान्तिनाथ (दो उदाहरण) एवं पार्श्वनाथ की छोटी-बड़ी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। छतरपुर से प्राप्त मल्लिनाथ की कलश लांछन वाली एक खड्गासन मूर्ति के परिकर में २३ अन्य जिनों की आकृतियाँ भी दिखायी गयी हैं।

मन्दिर क्रमांक १/५

इस मन्दिर में बाहुबली की २० वीं शती ई० की विशाल कायोत्सर्ग प्रतिमा (८' × २'·७'') द्रष्टव्य है।

मन्दिर क्रमांक १/६

मन्दिर में ऋषभनाथ की ११ वीं शती ई० की एक मनोज्ञ ध्यानस्थ मूर्ति (४' ७' × २' ६'') सुरक्षित है। कन्धों को छूती हुई लटों, वृषभ लांछन एवं यक्ष-यक्षी युक्त इस मूर्ति में नवग्रह भी बने हैं। यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वाह्ण और चक्रेश्वरी निरूपित हैं। ऋषभनाथ के जटा-मुकुट की बनावट बहुत सुन्दर और कई गुच्छकों के रूप में बनी है। सिंहासन के ऊपर अलंकृत आसन और उलटा पद्म तथा प्रभामण्डल भी मनोहारी है। मुख पर चिन्तन का भाव और कन्धों पर लटकती जटाएँ देवत्व का पूरा आभास कराती हैं। वेदि के ऊपर किसी प्राचीन जैन मन्दिर के द्वार का ऊपरी भाग सुरक्षित है जिसमें सुपार्श्वनाथ सहित १५ जिन आकृतियाँ बनी हैं।

मन्दिर क्रमांक १/७

इस मन्दिर के प्रवेशद्वार के सिरदल पर तीर्थंकरों की ध्यानस्थ और नीचे गंगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं। मूलनायक के रूप में कपिलांछन से युक्त अभिनन्दन की मूर्ति विराजमान है जिसके दाहिने पार्श्व में अश्वलांछन वाले सम्भवनाथ तथा चकवालांछन वाले सुमतिनाथ की स्वतन्त्र मूर्तियाँ हैं। संगमरमर में उकेरी ये सभी ध्यानस्थ मूर्तियाँ १९८१ ई० में स्थापित हुई हैं।

मन्दिर क्रमांक १/८

इस मन्दिर में नेमिनाथ की काले पत्थर की सम्वत् १९४३ (ई० १८८६) की ध्यानस्थ मूर्ति है। यह मूर्ति चार अष्टकोणीय प्राचीरों वाले मेरु मन्दिर में स्थित है जिसकी जालीनुमा दीवारें अत्यन्त अलंकृत हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर क्रमांक १/९

इस मन्दिर में मूलनायक महावीर (सिंह लांछन) सहित अनन्तनाथ (श्येन पक्षी) तथा विमलनाथ (शूकर) की लांछनयुक्त तीन ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। संगमरमर में बनी परिकरविहीन ये मूर्तियाँ वर्ष १९८१ में स्थापित हुई हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१०

इस मन्दिर में जैन युगल (तीर्थंकर के माता-पिता) मूर्ति (३' ४" × २' ६") का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण सुरक्षित है। वेदि के ऊपर किसी तीर्थंकर के अभिषेक का विस्तृत अंकन दिखाया गया है। इस दृश्यांकन में गन्धर्वों, विद्याधरों तथा कलशधारी देवों की आकृतियों के साथ ही भूत, वर्तमान और भविष्य के २४-२४ जिनों को मिलाकर कुल ७२ जिनों की आकृतियां बनीं हैं।

मन्दिर क्रमांक १/११

इस मन्दिर में वर्ष १९८१ स्थापित श्वेत संगमरमर की शान्तिनाथ, कुंथुनाथ एवं अरनाथ की पारम्परिक लांछनों वाली तीन खड्गासन मूर्तियाँ हैं। तीनों ही तीर्थंकरों का चक्रवर्ती होना इनके एक साथ निरूपित होने की दृष्टि से उल्लेख्य है।

मन्दिर क्रमांक १/१२

मन्दिर का प्रवेशद्वार और अर्द्धमण्डप प्राचीन जैन मन्दिर का भाग है। इस मन्दिर का प्रवेशद्वार अत्यन्त कलापूर्ण है। इसके सिरदल पर १६ मांगलिक स्वप्न, तीर्थंकरों, नवग्रहों तथा नीचे के भाग में गंगा और यमुना की मनोहारी मूर्तियाँ बनी हैं। गर्भगृह में मूलनायक आदिनाथ की वृषभ लांछन वाली मूर्ति है, जिसके दाहिने पार्श्व में अरनाथ (मत्स्य लांछन) एवं बायें पार्श्व में पुनः आदिनाथ की ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। श्वेत संगमरमर में बनी ये सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ १९८१ ई० में स्थापित हुई हैं। ललाटबिम्ब की ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्ति अनूठी है। दोनों पैर मोड़कर ध्यानमुद्रा में बैठी तीर्थंकर आकृति का बायाँ हाथ गोद में है, जबकि दाहिना हाथ पारम्परिक मुद्रा में न होकर जानु पर रखा है जिसमें पूर्ण विकसित पद्म दिखाया गया है। इस विचित्र तीर्थंकर मूर्ति में त्रिछत्र, गन्धर्व एवं अशोक वृक्ष का अंकन हुआ है।

मन्दिर क्रमांक १/१३

मन्दिर में चन्द्रप्रभ की ध्यानस्थ मूर्ति (३' ४" × २' ३") है। तीर्थंकर के साथ चन्द्र लांछन तथा यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ निरूपित हैं। इस वेदि के दोनों ओर की दीवारें प्राचीन जैन मन्दिरों की बाह्य भित्ति का अवशिष्ट भाग हैं, जो मन्दिर संख्या १/१२ एवं १/१४ की बाह्य भित्तियाँ हैं। इनपर कई देवी-देवताओं की आकृतियाँ द्रष्टव्य है। इनमें ब्रह्माणी, यम, निर्ऋति (निर्वस्त्र), अम्बिका, ईशान्, इन्द्र, गोमुख तथा अप्सराओं की स्वतन्त्र मूर्तियाँ महत्व की हैं। इस मन्दिर की पूर्वी दीवार पर विवस्त्रजघना अप्सरा, दिक्पाल तथा पद्मावती यक्षी की मूर्तियाँ उकेरीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर क्रमांक १/१४

मन्दिर के उत्तरंग पर ललाट बिम्ब में षड्भुजा चक्रेश्वरी तथा उसके छोरों पर गज-लक्ष्मी एवं सरस्वती की आकृतियाँ उकेरी हैं। अर्द्धमण्डप के छत पर चारों ओर १६ मांगलिक स्वप्न तथा द्वारशाखाओं पर गंगा और यमुना का अंकन हुआ है। गर्भगृह में पार्श्वनाथ की बिल्हरी से प्राप्त सुन्दर ध्यानस्थ मूर्ति (३' ७" × २' १") अवस्थित है। इसके तोरण भाग में १३ छोटी जिन आकृतियाँ भी बनी हैं। पूरा मन्दिर प्राचीन है। अर्द्धमण्डप के वितान पर चारों ओर चार तीर्थंकरों के अभिषेक तथा नीचे चारों ओर जैन आचार्यों के उपदेश एवं २७ चामर-धारिणी आकृतियाँ तथा कुछ अन्य प्रसंग बने हैं। अर्द्धमण्डप के स्तम्भों पर द्वारपाल की मूर्तियाँ बनी हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१५

एक छोटे गर्भगृह में चन्द्र लांछन वाली चन्द्रप्रभ की ध्यानस्थ मूर्ति (२'७" × १'६') प्रतिष्ठित है। मन्दिर में दाहिने ओर का कुछ भाग बाद में बनाया गया है। तीर्थंकर के साथ द्विभुज यक्ष-यक्षी भी आकारित हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१४ एवं १/१५ के बीच के बरामदे में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रदत्त जैन स्थापत्य एवं मूर्तिकला से सम्बन्धित कई भाचित्र (फोटो) कालक्रमानुसार दर्शाये गये हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१६–१८

मन्दिर क्रमांक १/१६, १७, १८ परस्पर मिले हुए हैं, जिनमें एक मन्दिर से होकर दूसरे मन्दिर में जाने के लिए दरवाजे हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१६

इस मन्दिर में मूलनायक के रूप में वज्र-लांछन युक्त धर्मनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति स्थापित है। धर्मनाथ के दाहिने एवं बायें क्रमशः चन्द्रप्रभ एवं शान्तिनाथ की लांछनयुक्त मूर्तियाँ हैं। श्वेत संगमरमर की ये मूर्तियाँ १९८१ ई० (धर्मनाथ), १८६५ ई० (चन्द्रप्रभ) और १९०२ ई० (शान्तिनाथ) में तिथ्यंकित हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१७

इस मन्दिर में ११ वीं-१२ वीं शती ई० की तीर्थंकरों की तीन विशाल खड्गासन मूर्तियाँ हैं। एक उदाहरण (५' × १' २") में शूकर-लांछन के आधार पर मूर्ति की पहचान विमलनाथ से की गयी है। ये मूर्तियाँ मध्यप्रदेश के दमोह जिला स्थित हटा तहसील के फतेहपुर ग्राम से प्राप्त हुई हैं।

मन्दिर क्रमांक १/१८

इस मन्दिर में विक्रम सम्वत् १९२७ (१८७० ई०) की नौ सर्पफणों के छत्र वाली काले पत्थर की पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति है। सर्पफणों की संख्या के आधार पर तीर्थंकर की पहचान सुपार्श्वनाथ से भी की जा सकती है। मूलनायक के एक ओर चन्द्रप्रभ (विक्रम सम्वत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९१५) और दूसरी ओर नेमिनाथ (विक्रम सम्वत् १९२७) की लांछनयुक्त मूर्तियाँ हैं। सम्वत् १९२७ के मूर्ति लेख से यह प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्वत् १९२७ में श्री कंछेदीलाल जैन (नगौद) एवं उनके परिवार के लोगों द्वारा खजुराहो में गजरथ के अवसर पर की गयी थी।

मन्दिर क्रमांक २

इस मन्दिर के प्रवेशद्वार पर पार्श्वनाथ की प्राचीन और गर्भगृह में पद्मप्रभ की काले पाषाण की अर्वाचीन (२५ जनवरी, १९८१ को स्थापित) आसनस्थ मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ३

मन्दिर के गर्भगृह में मूलनायक ऋषभनाथ की वृषभ लांछन वाली ध्यानस्थ मूर्ति (३'६" × २' ६") है। इस मूर्ति के सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी के रूप में गोमुख और चक्रेश्वरी तथा परिकर में बाहुबली आमूर्तित हैं। बाहुबली के पार्श्वों में विद्याधारियों की आकृतियाँ भी बनी हैं। इस मनोज्ञ मूर्ति में जटामुकुट एवं घुमावदार लटों वाली कन्धों पर लटकती जटाओं का संयोजन बहुत सुन्दर है। मूलनायक का मुख अत्यन्त सुन्दर एवं शान्त है। आकृति के ओंठ एवं ठुड्डी अत्यन्त आकर्षक एवं तीखे हैं। साथ ही खिले हुए कमल एवं मुक्ता अलंकरणों वाला प्रभा-मण्डल भी मनोहारी है। दो पार्श्ववर्ती रथिकाओं में सुमतिनाथ (चकवा लांछन, २' ६½" × १' ५") एवं अभिनन्दन (कपि-लांछन, २' १०" × १' ७") की भी ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। लगभग ११ वीं शती ई० की इन दोनों ही मूर्तियों में यक्ष-यक्षी भी दिखाये गये हैं। प्रवेशद्वार पर बायीं ओर वाराही एवं चामुण्डा की त्रिभंग आकृतियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ४

मन्दिर के प्रवेशद्वार पर किसी तीर्थंकर के अभिषेक का दृश्यांकन है। वेदि पर जनवरी १९८१ में स्थापित (विक्रम सम्वत् २०३७) श्वेत संगमरमर की शीतलनाथ, विमलनाथ एवं महावीर की मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ५

इस मन्दिर का प्रवेशद्वार अत्यन्त अलंकृत है। मूलनायक के रूप में मल्लिनाथ प्रतिष्ठित हैं। पार्श्ववर्ती रथिकाओं में नेमिनाथ एवं मुनिसुव्रत की श्वेत संगमरमर की जनवरी, १९८१ (विक्रम सम्वत् २०३७) में स्थापित लांछनयुक्त ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ६

मन्दिर के प्रवेशद्वार के उत्तरंग के मध्य में तीर्थंकर तथा छोरों पर चक्रेश्वरी और अम्बिका यक्षियों की मूर्तियाँ हैं। द्वारशाखाओं पर गंगा और यमुना की तथा गर्भगृह में सुपार्श्व-नाथ की कायोत्सर्ग (३' ९" × २') मूर्तियाँ हैं। सुपार्श्वनाथ के चरणों के समीप दो आर्यिकाओं की भी आकृतियाँ उकेरी हैं। मध्यवर्ती सुपार्श्वनाथ प्रतिमा के दोनों ओर बिल्हारी से प्राप्त कलचुरी काल की दो कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। दाहिनी ओर अजितनाथ (३' ७" ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०½'') की गज-लांछन और यक्ष-यक्षी तथा बायीं ओर जटाओं से शोभित वृषभ-लांछन वाली आदिनाथ (३' ८'' × १' २'') की गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी से सुशोभित मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ७

मन्दिर का प्रवेशद्वार अत्यधिक अलंकृत और प्रतिमाशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मन्दिर के उत्तरंग पर लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका और नवग्रहों के अतिरिक्त १८ जैन मुनियों तथा १६ माङ्गलिक स्वप्नों का भी अंकन हुआ है। जैन मुनियों को सामान्यतः नमस्कार-मुद्रा में मयूरपिच्छिका के साथ दिखाया गया है। ये आकृतियाँ ललाट-बिंब की सुपार्श्वनाथ मूर्ति के दोनों ओर बनी हैं और इनमें उनके नाम भी अभिलिखित हैं। गर्भगृह में महावीर की ध्यानस्थ मूर्ति (४' × २' २'') है। विक्रम सम्वत् ११४८ (१०९१ ई०) की इस मूर्ति में यक्ष-यक्षी भी आमूर्तित हैं। सिंह-लांछन और यक्ष-यक्षी वाली महावीर की यह मूर्ति खजुराहो की अनुपम और साथ ही महावीर की सबसे सुन्दर, पूर्ण एवं सांगोपांग मूर्ति है। महावीर का अलंकृत प्रभामण्डल एवं अष्टप्रातिहार्य भी सुन्दर है। मूलनायक के मुख पर मन्दस्मित और गहन चिन्तन का भाव विशेष उल्लेखनीय है। अर्धनिमिलित नेत्र, तिखी ठुड्डी और श्रीवत्स भी दर्शनीय है।

मन्दिर क्रमांक ८

मन्दिर के उत्तरंग पर चक्रेश्वरी एवं लक्ष्मी और गर्भगृह में तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्ति (३'७'' × २'२'') है।

मन्दिर क्रमांक ९ (आदिनाथ मन्दिर)

पार्श्वनाथ मन्दिर के ठीक उत्तर में स्थित आदिनाथ मन्दिर खजुराहो के जैन मन्दिर समूह का एक महत्वपूर्ण मन्दिर है। यह मन्दिर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित है। निरन्धार-प्रासाद-शैली के इस मन्दिर का वर्तमान में केवल शिखर युक्त गर्भगृह और अन्तराल ही शेष है। मन्दिर के मण्डप और अर्द्धमण्डप पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं और उनके स्थान पर गुम्बदाकार भीतरी छतों वाला एक नवीन प्रवेश-कक्ष बना दिया गया है। योजना, निर्माण शैली एवं मूर्तिकला की दृष्टि से आदिनाथ मन्दिर खजुराहो के वामन मन्दिर (ल० १०५०–७५ ई०) के निकट है। इस समानता के आधार पर कृष्णदेव ने आदिनाथ मन्दिर को ११वीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में रखा है।[1] गर्भगृह में संवत् १२१५ (११५८ ई०) की काले पत्थर की आदिनाथ की मूर्ति (३'४'' × ३' ५'') प्रतिष्ठित है जो मूल प्रतिमा को हटाए जाने के बाद वहाँ रखी गई है। ललाटबिंब में ऋषभनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्ति बनी है।

मन्दिर के मंडोवर पर मूर्तियों की तीन समानान्तर पंक्तियाँ हैं। ऊपर की पंक्ति में गन्धर्व, किन्नर और विद्याधरों की अत्यन्त गतिशील मूर्तियाँ हैं। मध्य की पंक्ति में चारों कोणों पर अष्टवासुकियों या गोमुखयक्ष की आठ चतुर्भुज गोमुख आकृतियाँ बनी हैं। निचली पंक्ति में अष्ट-दिक्पालों की त्रिभंग में चतुर्भुज मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। नीचे की दो पंक्तियों में विभिन्न

---

१. कृष्णदेव, **पूर्वनिर्दिष्ट**, पृ० ५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षक मुद्राओं में अप्सराओं तथा व्यालों की भी मूर्तियाँ बनी हैं। मंडोवर की १६ रथिकाओं में १६ देवियों की मूर्तियाँ हैं। ललितमुद्रा में आसीन या त्रिभंग में खड़ी ये देवियाँ मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। स्वतन्त्र वाहनों एवं आयुधों वाली इन देवियों की सम्भावित पहचान १६ महाविद्याओं से की गई है। मन्दिर के अधिष्ठान पर क्षेत्रपाल (दक्षिण), जैन यक्षी चक्रेश्वरी (उत्तर) और अम्बिका (पश्चिम) की मूर्तियाँ हैं। आदिनाथ मन्दिर की द्वार-शाखाओं की चतुर्भुज देवियों की मूर्तियाँ भी मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। इनमें लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, गौरी, काली, गांधारी एवं कुछ अन्य देवियों को वाहनों या बिना वाहनों वाला दिखाया गया है। उत्तरंग पर चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों के अतिरिक्त लक्ष्मी भी आकारित हैं। मन्दिर के प्रवेशद्वार के दहलीज छोरों पर दो चतुर्भुज देवमूर्तियाँ बनी हैं जिनके सुरक्षित करों में अभयमुद्रा, परशु एवं चक्राकार पद्म प्रदर्शित हैं। दहलीज के बायें छोर पर गजलक्ष्मी और दाहिने छोर पर तीन सर्पफणों के छत्र वाली कूर्मवाहना देवी निरूपित हैं। ध्यानमुद्रा में विराजमान और एक सुरक्षित हाथ में पद्म से युक्त इस देवी की पहचान सम्भव नहीं है। द्वार-शाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ भी उकेरी हैं।

प्रवेशद्वार के बड़ेरी पर १६ मांगलिक स्वप्नों का अंकन हुआ है। बायीं ओर आदिनाथ की माता को शय्या पर लेटे दिखाया गया है। इसके आगे स्त्री-पुरुष युगल की वार्तालाप-मुद्रा में मूर्तियाँ बनी हैं। यह निश्चित ही आदिनाथ के माता-पिता हैं जिन्हें शुभ स्वप्नों के प्रसंग में वार्ता करते दिखाया गया है। इसके बाद क्रम से १६ मांगलिक स्वप्न बने हैं।

आदिनाथ मन्दिर लगभग १ मीटर ऊँची जगती पर बना है। मन्दिर के अधिष्ठान के गोटे कई भिन्न-भिन्न स्तरों और अलंकरणों वाले हैं। अधिष्ठान के ऊपर जंघा या मंडोवर का अलंकृत तथा शिल्प-सज्जित भाग है जिनमें निचली दो पंक्तियों में देवी-देवताओं तथा प्रक्षेपों पर अप्सराओं, नृत्यांगनाओं और व्यालों की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर का शिखर सप्तरथ और षोडशभद्र है। कर्णरथों के ऊपर एक लघु स्तूपाकार शिखर है जिनमें दो पीढ़े, चन्द्रिकायें तथा आमलक हैं। इस परिधि के ऊपर एक बड़े आकार का आमलक, दो चन्द्रिकायें, एक छोटा आमलक, चन्द्रिका और कलश हैं। अन्तराल की छत तीन आलों की शृंखला से आच्छादित है। गर्भगृह का द्वार सात शाखाओं वाला है जिनमें पत्रलता, मन्दारमाला, वाद्य-वादन करती और नृत्यरत-गण आकृतियों, पत्रलताओं एवं वर्तुलाकार गुच्छ रचनाओं का अलंकरण है।[1]

आदिनाथ मन्दिर पर पार्श्वनाथ मन्दिर के समान किसी देवता की शक्ति सहित युगल या आलिंगन मूर्ति नहीं है। पार्श्वनाथ मन्दिर की अपेक्षा आदिनाथ मन्दिर की मूर्तियाँ जैन स्वरूप को अधिक प्रकट करती हैं। ये मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्तियों की तुलना में अलंकरणों

---

१. कृष्णदेव, **जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर** (सं० ए० घोष), नई दिल्ली, १९७५, खण्ड–२, पृ० २८८-९३; जैन, बलभद्र, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १४६-४७; जन्नास, ई०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की विविधता और सूक्ष्म उकेरन वाली नहीं है। साथ ही इन मूर्तियों की शारीरिक चेष्टा में एक स्थिरता प्राप्त होती है तथा इनका भाव प्रक्षेपण भी उतना सशक्त नहीं है। पार्श्वनाथ मन्दिर की तुलना में आकृतियाँ कुछ लम्बी और पतली भी दिखाई देती हैं। स्त्रियों का पृष्ठ-भाग स्वाभाविक उठाव और मांसल न होकर कुछ चिपटा दिखाई देता है। वक्ष गोल न होकर कुछ अण्डाकार है और नाभि अधिक गहरी काटी गयी है। स्त्री मूर्तियों में धोतियों का अलंकरण भी विविधता रहित है। स्त्री आकृतियाँ पूर्ववत् आकर्षक और मनमोहक मुद्राओं वाली हैं। अप्सरा मूर्तियों में शारीरिक भंगिमा अत्यन्त प्रखर और कुछ सीमा तक अस्वाभाविक रूप में दिखाई गई है। इनमें अधिकांशतः अप्सरायें एक हाथ से वक्ष का स्पर्श करती और दूसरे में पत्र-पुष्प या अन्य सामग्री लिए प्रदर्शित हैं। अन्य विषयों में बालक और शुक के साथ क्रीड़ा करती, पत्र लिखती, दर्पण में देखकर केश संवारती या अंजन लगाती, दीवार पर चित्र बनाती, दर्पण में मुख देखकर आभूषण पहनती, पैर से काँटा निकालती, माला लिए, मेखला पहनती, अंगड़ाई लेती, वेणु-वादन एवं कन्दुक क्रीड़ा करती हुई मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। नृत्य-रत अप्सरा मूर्तियों के हाथों और पैरों की विभिन्न चेष्टाओं द्वारा नृत्य के भाव को बहुत ही गतिशील रूप में दर्शाया गया है। इस मन्दिर की अप्सरा मूर्तियाँ अधिकांशतः पृष्ठ और पार्श्व-दर्शन वाली हैं जबकि पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ समक्ष दर्शन वाली हैं। इन अप्सरा मूर्तियों में नारी सौन्दर्य, विशेषतः उनके सुन्दर अंगयष्टि, को शिल्पी ने विभिन्न कोणों से प्रस्तुत किया है। अप्सराओं में अंगड़ाई लेती हुई, उचककर दिवाल पर चित्र बनाती तथा मेखला पहनती हुई मूर्तियाँ विशेष आकर्षक हैं।

आदिनाथ मन्दिर पर कुल ३७ व्याल मूर्तियाँ हैं जिनमें सामान्यतः व्याल के पीठ पर और पैरों के नीचे खड्ग या गदा या शूलधारी योद्धाओं की दो आकृतियाँ दिखायी गयी हैं। व्याल के समक्ष कभी-कभी मेष, शूकर, महिष, मयूर, ऊँट एवं गज की आकृतियाँ भी बनी हैं। ये व्याल मूर्तियाँ चन्देल शासकों की शौर्य की साकार अभिव्यक्ति हैं। व्याल आकृतियाँ सिंह, शूकर, शुक, गज, नर और अश्व व्यालों के रूप में हैं। इनमें सिंह व्याल की संख्या सर्वाधिक है। सबसे ऊपर की तीसरी पंक्ति में मालाधारी, वीणा बजाती, पुष्पधारी, नगाड़ा बजाती या वार्तालाप करती विद्याधरों की स्वतन्त्र और युगल मूर्तियाँ हैं। मन्दिर में तीन ओर के छज्जे में जैन आचार्यों की वार्तालाप करती हुई मूर्तियाँ भी हैं।

मन्दिर क्रमांक १०

इस मन्दिर के उत्तरंग पर लक्ष्मी, सरस्वती और सिद्धायिका के साथ ही अम्बिका की भी मूर्तियाँ हैं। उत्तरंग पर तीन देवियों, एक जैन युगल (स्त्री-पुरुष दोनों बालक लिए हुए) तथा मालाधारिणी और द्वारशाखाओं पर गंगा-यमुना की सवाहन तथा आलिंगनबद्ध युगलों की मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिर में मूलनायक के रूप में विक्रम सम्वत् २०३७ (२५ जनवरी १९८१) की काले पत्थर की नमिनाथ की पद्म-लांछन वाली ध्यानस्थ मूर्ति है। इस मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में नौ सर्पफणों के छत्रों वाली स्वस्तिक-लांछनयुक्त विक्रम सम्वत् १९२७ (१८७० ई०) की सुपार्श्वनाथ एवं बायीं ओर सात सर्पफणों के छत्र वाली सर्प-लांछनयुक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम सम्वत् १९२७ (१८७० ई०) की पार्श्वनाथ की काले पत्थर की खजुराहो गजरथ में प्रतिष्ठित ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर क्रमांक ११/१-२ (पार्श्वनाथ-मन्दिर)

पार्श्वनाथ मन्दिर खजुराहो के जैन मन्दिरों में प्राचीनतम और सर्वाधिक सुरक्षित मन्दिर है। स्थापत्यगत योजना एवं मूर्ति अलंकरणों की दृष्टि से भी पार्श्वनाथ मन्दिर जैन मन्दिरों में विशालतम और सर्वोत्कृष्ट है। इस सांधार प्रासाद में छज्जेदार वातायनों से युक्त वक्र भागों का अभाव है। मन्दिर के प्रदक्षिणापथ में मन्द प्रकाश के संचार हेतु साधारण गवाक्ष बनाए गये हैं जिनसे होकर पहुँचने वाला मन्द प्रकाश दर्शनार्थियों एवं आराधकों के लिए एक अलौकिक शान्त वातावरण का सृजन करता है। पूर्वाभिमुख पार्श्वनाथ मन्दिर के पश्चिमी प्रक्षेप में गर्भगृह के पृष्ठभाग से जुड़ा एक स्वतन्त्र देवालय भी है (वेदि नं० ११-२) जो इस मन्दिर की अभिनव विशेषता है। इस देवालय में ११वीं शती ई० की ऋषभनाथ की प्रतिमा (४२" × २'६") प्रतिष्ठित है। कृष्णदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर को धंग के शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों (९५०-७० ई०) में निर्मित माना है।[1] खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर (९३०-५० ई०) एवं पार्श्वनाथ मन्दिर में स्थापत्य एवं शिल्प की दृष्टि से पर्याप्त समानता है। दोनों ही मन्दिरों के गर्भगृह-द्वार के उत्तरंग पर एक दूसरे के ऊपर दो रूप-पट्टिकायें बनी हैं। केवल लक्ष्मण और पार्श्वनाथ मन्दिरों पर ही कृष्णलीला के दृश्य तथा राम-सीता-हनुमान और बलराम-रेवती की मूर्तियाँ हैं। दोनों मन्दिरों के यमलार्जुन दृश्यांकन में अत्यधिक समानता है।[2]

लक्ष्मण मन्दिर का निर्माण यशोवर्मन् द्वारा कराया गया जबकि पार्श्वनाथ मन्दिर उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी धंग के शासनकाल में बना। इस सूचना के स्रोत दो अभिलेख हैं जो लक्ष्मण और पार्श्वनाथ मन्दिरों में हैं। दोनों ही अभिलेख धंग के शासनकाल में लिखे गए थे और दोनों की तिथि–विक्रम संवत् १०११ (९५४ ई०) है। किन्तु दोनों अभिलेखों की लिपि में बहुत अन्तर होने के कारण पार्श्वनाथ मन्दिर के अभिलेख को लुप्त मूल अभिलेख की प्रतिलिपि माना जाता है जिसे लगभग सौ वर्ष बाद फिर से लिखा गया। मन्दिर में कई पूववर्ती तीर्थ-यात्री-लेख भी अंकित हैं जिन्हें लिपि के आधार ९५० से १००० ई० के मध्य का मान सकते हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण पूर्ण दक्षता के साथ हुआ है। मन्दिर के मंडोवर पर तीन समानान्तर पंक्तियों में मूर्तियों के सुन्दर संयोजन और शिखर के सूक्ष्मांकन की फर्गुसन ने अत्यधिक प्रशंसा की है। पार्श्वनाथ मन्दिर की वास्तुकला लक्ष्मण मन्दिर की अपेक्षा अधिक विकसित है। ऊर्ध्व पंक्ति में विद्याधरों का अंकन पार्श्वनाथ मन्दिर से ही प्रारम्भ हुआ।[3] मन्दिर में अप्सराओं एवं सुर-सुन्दरियों की श्रेष्ठतम मूर्तियाँ हैं जो खजुराहो शिल्पी की सुन्दरतम कृतियाँ हैं।

---

१. कृष्णदेव, "दि टेम्पुल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया", पृ० ५४।
२. वही, पृ० ५४-५५।
३. अवस्थी, रामाश्रय, **खजुराहो की देव प्रतिमायें**, आगरा, १९६७, पृ० १५-१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ मन्दिर प्रदक्षिणापथ-युक्त गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप और अर्द्धमण्डप से युक्त है। यह मन्दिर मूलतः ऋषभनाथ को समर्पित था किन्तु गर्भगृह में सम्वत् १९१७ (१८६० ई०) में स्थापित काले पत्थर में बनी पार्श्वनाथ की मूर्ति के कारण ही इसे आगे चलकर पार्श्वनाथ मंदिर के नाम से जाना जाने लगा। अर्धमण्डप के ललाटबिंब में ऋषभनाथ को यक्षी चक्रेश्वरी तथा गर्भगृह की मूल प्रतिमा के सिंहासन पर ऋषभनाथ के वृषभ-लांछन और पारंपरिक यक्ष-यक्षी गोमुख-चक्रेश्वरी के अंकन, मंदिर के मूलतः ऋषभनाथ को समर्पित होने के अकाट्य प्रमाण हैं। मूलनायक ऋषभनाथ की मूर्ति (जो संप्रति गायब है) के पार्श्वों में पाँच और सात सर्पफणों के छत्रों से सुशोभित सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ भी बनीं हैं। मंदिर के भीतर के सभी भाग एक आयताकार दीवार द्वारा परिवेष्टित हैं।

मण्डप की दीवार को भीतर की ओर से अर्धस्तम्भों का और बाहर की ओर से मूर्तियों की पट्टियों तथा जालीदार वातायनों का आधार प्राप्त है। गर्भगृह तथा मण्डप की भित्तियों के प्रक्षेपों और आलो में जंघा पर क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर छोटी होती गयी मूर्तियों की तीन समानान्तर पंक्तियाँ हैं। नीचे की पंक्ति में प्रक्षेपों पर विभिन्न देवताओं की स्वतंत्र तथा शक्ति सहित एवं अप्सराओं तथा जिनों की लांछनरहित मूर्तियां हैं। इनमें अष्टदिक्पालों, यक्षी अम्बिका, शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा आदि की मूर्तियां हैं। बीच-बीच में आलों में व्यालों की विविध रूपों वाली मूर्तियां हैं। मध्य की पंक्ति में विभिन्न देव-युगलों, लक्ष्मी तथा लांछनरहित जिनों आदि की मूर्तियां हैं। मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से केवल निचली दो पंक्तियों की मूर्तियाँ ही महत्वपूर्ण हैं।[1] ऊपर की पंक्ति में प्रक्षेपों तथा आलों में पुष्पहार से युक्त विद्याधर युगल, गंधर्व एवं किन्नर-किन्नरियों की उड्डीयमान आकृतियां हैं। नीचे की दोनों पंक्तियों की देव-युगल एवं स्वतंत्र देवों की मूर्तियों में देवता सदैव चतुर्भुज हैं किन्तु उनकी शक्तियां द्विभुजा हैं। इन मूर्तियों में देवताओं को शक्तियों की एक भुजा सदा आलिंगन-मुद्रा में है और दूसरे में दर्पण या पद्म प्रदर्शित है। तात्पर्य यह है कि विभिन्न देवताओं के साथ उनकी पारंपरिक शक्तियों, यथा विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी एवं शिव के साथ शिवा के स्थान पर व्यक्तिगत विशेषताओं से रहित सामान्य लक्षणों वाली शक्तियाँ निरूपित हैं। मण्डप और गर्भगृह के जंघा के अतिरिक्त स्वतंत्र देवताओं एवं देव-युगलों की मूर्तियां मन्दिर के शिखर एवं वरण्ड भाग पर भी चारों ओर बनीं हैं। स्वतंत्र देवमूर्तियों में केवल शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा तथा देवयुगलों में शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा के अतिरिक्त कुबेर, राम, बलराम, अग्नि एवं काम की मूर्तियां हैं। जंघा की मूर्तियों में देवता सदैव त्रिभंग में हैं, पर अन्य भागों की मूर्तियों में इन्हें ललितमुद्रा में भी दिखाया गया है। मंदिर के जंघा एवं अन्य भागों पर जैन यक्षी अम्बिका एवं चक्रेश्वरी तथा सरस्वती, लक्ष्मी, ब्रह्माणी आदि की भी मूर्तियाँ हैं। जिनों तथा चक्रेश्वरी एवं अम्बिका यक्षियों की मूर्तियों के अतिरिक्त मण्डप के जंघा की अन्य सभी मूर्तियां ब्राह्मण देवकुल से संबंधित

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, ब्रुन, क्लाज़, "दि फिगर ऑव टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पुल ऐट खजुराहो, **आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ,** बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

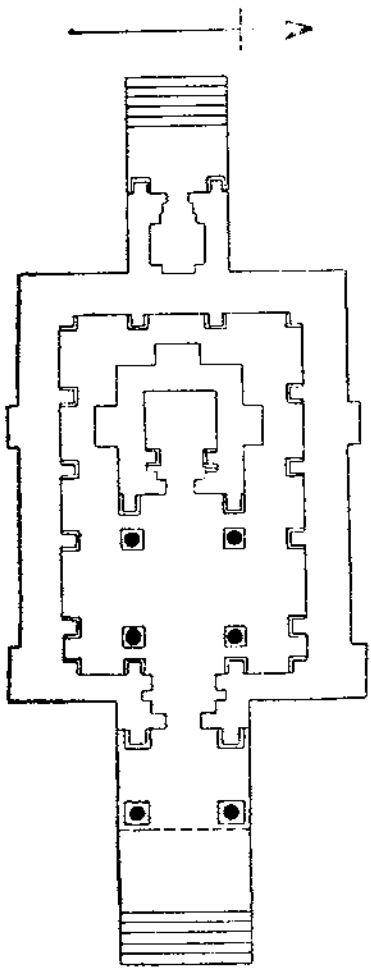

पार्श्वनाथ मन्दिर : तल योजना

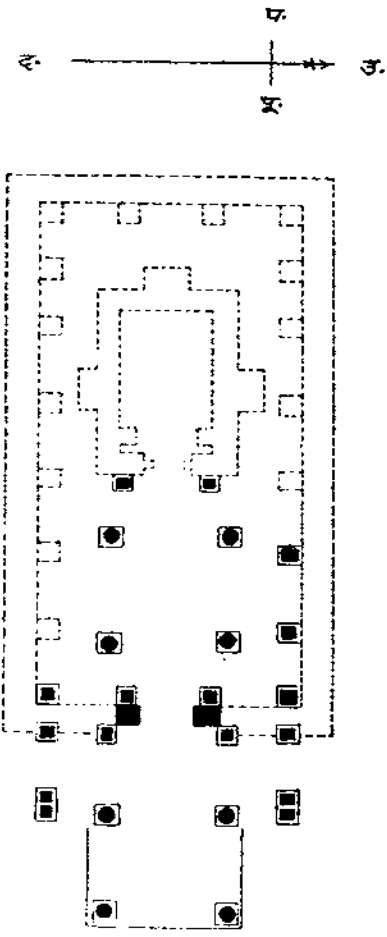

घण्टई मन्दिर : अनुमानित तल योजना

(एलिको जन्नास की पुस्तक खजुराहो से साभार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और प्रभावित हैं। इन मूर्तियों में विष्णु के किसी अवतार रूप तथा इसी प्रकार शिव के किसी संहारक या अनुग्रहकारी स्वरूप की मूर्तियां नहीं हैं, जिससे यह प्रकट होता है कि कलाकार ने ब्राह्मण प्रभाव पर किंचित् नियंत्रण रखने की भी चेष्टा की थी। त्रिशूल एवं सर्प तथा नन्दी वाहन वाले शिव एवं स्रुक और पुस्तक से युक्त ब्रह्मा को कुछ विद्वानों ने क्रमशः जैन परंपरा के ईश्वर और ब्रह्मशांति यक्षों से पहचानने का प्रयास किया जो इस मंदिर के शिल्पांकन में ब्राह्मण देव मूर्तियों के स्पष्ट प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में प्रांसङ्गिक नहीं है। पार्श्वनाथ मंदिर पर विष्णु एवं बलराम की कई स्वतंत्र तथा शक्तिसहित युगल मूर्तियां हैं। किन्तु खजुराहो की नेमिनाथ की मूर्तियों में बलराम और कृष्ण का निरूपण नहीं हुआ है, जबकि देवगढ़ तथा मथुरा के दिगम्बर स्थलों पर नेमिनाथ की मूर्तियों में इनका अंकन हुआ है। तात्पर्य यह कि पार्श्वनाथ मंदिर की विष्णु तथा बलराम की मूर्तियां ब्राह्मण देव-मंदिरों के अनुकरण पर बनीं हैं। यदि ये जैन परंपरा के अंतर्गत बनी होतीं तो नेमिनाथ की मूर्तियों में भी उनका निश्चित ही अकन हुआ होता। इसी संदर्भ में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि देवताओं का अपनी शक्तियों के साथ आलिंगनमुद्रा में निरूपण भी पूरी तरह जैन परंपरा के विरुद्ध है। जैन परंपरा में कहीं भी कोई देवता अपनी शक्ति के साथ अभिलक्षित नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में देवताओं का शक्ति के साथ और वह भी आलिंगनमुद्रा में निरूपण परंपरा के सर्वथा प्रतिकूल है। यह तथ्य भी मंदिर की मूर्तियों के ब्राह्मण देव-परिवार से संबंधित होने का ही समर्थक है। मंदिर पर ब्रह्मा और शिव को ब्रह्मशांति या ईश्वर यक्ष के स्थान पर सर्वदा ब्राह्मण देवताओं के रूप में ही दिखलाया गया है।

पार्श्वनाथ मन्दिर की अप्सरा मूर्तियां खजुराहो मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। इनमें नारी सौन्दर्य पूरी तरह साकार हो उठा है। अप्सरा मूर्तियों में तीखी भंगिमाओं के माध्यम से शारीरिक आकर्षण की अभिव्यक्ति हुई। अप्सरा मूर्तियों के अतिरिक्त मंदिर पर कामक्रिया में रत युगलों की भी चार मूर्तियां हैं। पर पार्श्वनाथ मन्दिर की काम-मूर्तियां खजुराहो के लक्ष्मण, कन्दरिया महादेव, दूलादेव एवं विश्वनाथ मन्दिरों की तुलना में बिल्कुल ही उद्दाम नहीं हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के शिल्पांकन में जहाँ ब्राह्मण प्रभाव पूरी तरह मुखर है वहीं आदिनाथ मन्दिर इस प्रभाव से तरह मुक्त है।

पार्श्वनाथ मंदिर १.२ मीटर ऊँची जगती पर स्थित है। इसका अधिष्ठान दो श्रेणियों में विभक्त है जिसमें निचले भाग में जाड्यकुंभ, कर्णिका, पट्टिका अन्तरपत्र और कपोत तथा ऊपरी भाग में पारंपरिक सज्जा पट्टियां हैं, जिनके ऊपर एक वसंत पट्टिका है। जंघा की तीन समानान्तर मूर्ति पट्टियों के ऊपर वरण्डिका तथा शिखर भाग हैं। इस मन्दिर में गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप और अर्धमण्डप के लिए अलग-अलग शिखर बने हुए हैं जिनमें से अन्तराल, महामण्डप और अर्धमण्डप की छतों के अधिकांश भाग पुनर्निर्मित हैं। गर्भगृह का सप्तरथ शिखर नागर शैली का है जिसमें उरुश्रृंगों की दो पंक्तियां तथा गौणश्रृंगों (जिनमें कर्णश्रृंग भी सम्मिलित हैं) की तीन पंक्तियां हैं। मंदिर का अर्धमण्डप आकार में साधारण किन्तु अत्यधिक अलंकृत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी तोरण सज्जा में अलंकरण और मूर्तियों का सुन्दर संयोजन देखा जा सकता है। अर्ध-मण्डप की भीतरी छत खजुराहो के अन्य मंदिरों की तुलना में अधिक अलंकृत है। अर्धमण्डप का प्रवेश-द्वार विभिन्न देव आकृतियों तथा अलंकरणों से सज्जित है। आयताकार मण्डप की भीतर की ठोस दीवारें १६ अर्धस्तम्भों पर स्थित हैं जिनमें बीच-बीच में पीठिकाओं पर तीर्थंकरों की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह का प्रवेश-द्वार विभिन्न अलंकरणों तथा गंगा-यमुना, मिथुन, नवग्रहों एवं तीर्थंकरों की आकृतियों से सज्जित है।

मन्दिर के पश्चिमी भाग के देवालय में केवल गर्भगृह ही शेष है, जिसके प्रवेश-द्वार पर लता-वल्लरियों के अलंकरणों के साथ ही गंगा-यमुना, गणों, मिथुनों, नवग्रहों, सरस्वती तथा चतुर्भुज जैन प्रतिहारों की आकृतियाँ भी बनी हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्ति एवं अन्य भागों की स्वतन्त्र एवं देव-युगल मूर्तियों में पद्म के विविध रूपों तथा सर्प और बीजपूरक का सामान्य रूप से प्रदर्शन हुआ है। गर्भगृह की भित्ति के आठ कोणों की दिक्पाल मूर्तियों के ऊपर शिव की आठ मूर्तियाँ बनी हैं। इनमें जटामुकुट, वन-माला और उपवीत से सुशोभित चतुर्भुज शिव त्रिभंग में हैं और उनके हाथों में वरदाक्ष, त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु हैं। समीप ही नन्दी वाहन भी उत्कीर्ण है। मण्डप की भित्ति पर भी शिव की इन्हीं विशेषताओं वाली चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। पूर्वी भित्ति की एक मूर्ति में शिव अपस्मारपुरुष पर खड़े हैं और उनके करों में अभयमुद्रा, त्रिशूल, चक्राकार पद्म तथा कमण्डलु हैं। मण्डप की अन्य मूर्तियों में नन्दी वाहन वाले शिव जटामुकुट से सुशोभित हैं और उनके दो करों में पद्म और शेष दो में त्रिशूल, सर्प, कमण्डलु या बीजपूरक में से कोई दो प्रदर्शित हैं। एक उदाहरण में शिव के हाथों में अभयमुद्रा, गदा, सर्प और कमण्डलु भी प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियाँ ऋषभनाथ और शिव के पारस्परिक सम्बन्ध को प्रकट करती हैं।

विष्णु की स्वतन्त्र मूर्तियाँ केवल मण्डप की भित्ति पर ही हैं। इनमें चतुर्भुज विष्णु के साथ वाहन नहीं दिखाया गया है। उनके हाथों में गदा, शंख, चक्र, धनुष, पद्म आदि प्रदर्शित हैं। अधिकांशतः विष्णु को एक हाथ गदा पर टेककर आराम करने की मुद्रा में दिखाया गया है। कुछ उदाहरणों में परशु, बीजपूरक तथा अभयमुद्रा भी दिखायी गयी है।

मण्डप की भित्ति, शिखर एवं अन्य भागों पर विष्णु-लक्ष्मी तथा शिव-पार्वती (२५ से अधिक) की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। इनमें शिव-पार्वती या तो त्रिभंग में हैं या फिर ललित-मुद्रा में। शिव-पार्वती की मूर्तियों में शिव का एक हाथ कटि पर है और दो में पद्म और सर्प हैं; एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। वाम पार्श्व की देवी का दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है तथा बायें में बीजपूरक (या दर्पण) है। कभी-कभी शिव के दो हाथों में से एक में फल और दूसरे में पद्म भी प्रदर्शित है। लक्ष्मी-नारायण मूर्तियों में, जिसका एक मनोज्ञ उदाहरण दक्षिणी भित्ति पर है, विष्णु किरीटमुकुट से शोभित हैं और उनके तीन हाथों में पद्म, शंख और चक्र प्रदर्शित हैं; एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। कभी-कभी विष्णु को गदा पर एक हाथ टेककर आराम करते हुए भी दिखाया गया है। ऐसी मूर्तियों में अन्य हाथों में शंख और सर्प (या फल या पद्म) हैं। वाम पार्श्व की लक्ष्मी आकृति का दाहिना हाथ सदा आलिंगनमुद्रा में है और बायें में पद्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विष्णु और शिव के अतिरिक्त मन्दिर पर ब्रह्मा की भी स्वतन्त्र और युगल मूर्तियाँ हैं। मन्दिर की जंघा पर श्मश्रुयुक्त ब्रह्मा की एक स्वतन्त्र मूर्ति है। ब्रह्मा के करों में वरदाक्ष, स्रुक, पुस्तक और कमण्डलु प्रदर्शित हैं। यहाँ ब्रह्मा के साथ न तो वाहन दिखाया गया है और न ही ब्रह्मा त्रिमुख हैं। उत्तरी भित्ति पर ब्रह्मा की शक्तिसहित एक मूर्ति है। ब्रह्मा यहाँ तीन मुखों वाले, घटोदर और श्मश्रुयुक्त हैं। उनके दो हाथों में स्रुक और पुस्तक हैं, जबकि शेष दो हाथों में से एक कटि पर है और दूसरा आलिंगनमुद्रा में है। यहाँ शक्ति को ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में दिखलाया गया है। देवी की वाम भुजा आलिंगनमुद्रा में हैं, जबकि दायें में चक्राकार पद्म है।

जंघा पर बलराम-रेवती, कुबेर-कौबेरी, अग्नि-आग्नेयी, राम-सीता, काम-रति एवं यम-यमी (?) की भी मूर्तियां हैं। दक्षिणी भित्ति की सप्त सर्पफणों के छत्र वाली किरीटमुकुट से शोभित बलराम की मूर्ति में दो करों में चषक और हल हैं; एक दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है तथा बायाँ कटि पर है। यहाँ भी शक्ति दक्षिण पार्श्व में ही खड़ी है। शक्ति के दाहिने हाथ में सनाल पद्म है, जबकि बायाँ आलिंगनमुद्रा में है। दक्षिणी भित्ति पर ही कुबेर की भी शक्ति सहित मूर्ति है। कुबेर की एक दक्षिण भुजा आलिंगन में है और दो में नकुलक एवं चक्राकार पद्म हैं; चौथी भुजा गदा पर आराम कर रही है। दक्षिण पार्श्व की कौबेरी की मूर्ति में दाहिने हाथ में चक्राकार पद्म है, जबकि बायाँ आलिंगनमुद्रा में है। उत्तरी भित्ति की राम-सीता मूर्ति में किरीट-मुकुट तथा छन्नवीर से सज्जित राम के दो हाथों में एक लम्बा बाण प्रदर्शित है। राम की ऊर्ध्व वाम भुजा आलिंगनमुद्रा में है, जबकि नीचे का दाहिना हाथ पालित-मुद्रा में दक्षिण पार्श्व में खड़ी कपिमुख हनुमान की आकृति के मस्तक पर है। राम की पीठ पर तूणीर भी प्रदर्शित है। सीता के बायें हाथ में नीलोत्पल है और दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है। इस मूर्ति के ऊपर ही सम्भवतः रावण द्वारा सीता से भिक्षा ग्रहण करने का प्रसंग भी उत्कीर्ण है। जटामुकुट से युक्त साधु आकृति (रावण) के भिक्षापात्र में उसके सामने खड़ी स्त्री आकृति (सीता) को भिक्षा डालते हुए दिखाया गया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के दक्षिण शिखर पर उत्कीर्ण रामायण के एक अन्य कथा दृश्य का उल्लेख भी यहाँ प्रासंगिक है। अशोकवाटिका से सम्बन्धित इस दृश्य में क्लान्तमुख सीता को खड्गधारी असुर आकृतियों से वेष्ठित दिखाया गया है। सीता के समक्ष ही कपिमुख हनुमान की आकृति बनी है, जिन्हे सीता को राम की मुद्रिका देते हुए दर्शाया गया है। जैन ग्रन्थ **पउमचरिय** (विमलसूरिकृत) एवं रविषेणकृत **पद्मपुराण** में राम-कथा का विस्तृत उल्लेख है। इन ग्रन्थों में अशोकवाटिका से सम्बन्धित दृश्य की भी चर्चा मिलती है (**पउमचरिय** ५३/११)। अर्धमण्डप और मण्डप पर वरण्ड के ऊपर द्विभुज राम की कई छोटी मूर्तियाँ भी हैं। इनमें राम के दोनों हाथों में एक लम्बा शर दिखाया गया है।

मण्डप की उत्तरी भित्ति पर ही अग्नि की भी शक्तिसहित एक मूर्ति है। अग्नि श्मश्रुयुक्त हैं और उनके तीन हाथों में धनुकार्षण, दण्ड और शिखा हैं तथा एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। शक्ति की दाहिनी भुजा आलिंगनमुद्रा में है, जबकि बायें में चक्राकार पद्म है। काम और रति की भी दो युगल मूर्तियाँ हैं, जो क्रमशः पूर्व और उत्तर की भित्तियों पर हैं। पूर्वी भित्ति की मूर्ति में श्मश्रु और जटामुकुट से शोभित काम के दो हाथों में पंचशर एवं इषु-धनु हैं, जबकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष दो हाथों में से एक व्याख्यानमुद्रा में है और दूसरा आलिंगनमुद्रा में। उत्तरी भित्ति की मूर्ति में काम दाढ़ी-मूछों से रहित तथा किरीटमुकुट से सज्जित है। उनके दो हाथों में पूर्ववत् पंचशर (मानव मुख) और इषु-धनु हैं तथा एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। केवल व्याख्यान-मुद्रा के स्थान पर एक हाथ में पद्म-कलिका प्रदर्शित है। दोनों ही उदाहरणों में रति बायें पार्श्व में खड़ी हैं और उनका दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है, जबकि बायें में पुस्तक (या पद्म) प्रदर्शित है।

उत्तरी भित्ति पर ही एक ऐसी युगल मूर्ति भी है जिसकी सम्भावित पहचान यम-यमी से की जा सकती है। जटामुकुट और मूछों से युक्त देवता के दो हाथों में खट्वांग और पताका हैं जबकि शेष हाथों में से एक में व्याख्यान-अक्षमाला है और दूसरा आलिंगनमुद्रा में है। शक्ति का दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है और बायें में पद्म है।

देव-युगल आकृतियों के अतिरिक्त मन्दिर के जंघा तथा अन्य भागों पर सामान्य स्त्री-पुरुष युगलों की भी मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ अधिकांशतः आलिंगनमुद्रा में हैं। इनमें स्त्री का दाहिना हाथ सदैव आलिंगनमुद्रा में है और बायें में दर्पण (या पद्म) प्रदर्शित है। कभी-कभी इन युगलों को वार्तालाप की मुद्रा में भी दिखलाया गया है। इन मूर्तियों में आकृतियाँ विभिन्न रूपों और वस्त्राभूषणों वाली हैं जो समाज के विभिन्न वर्गों एवं स्तरों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें कभी-कभी स्त्री को चुम्बन की स्थिति में या चुम्बन के लिए पुरुष के सम्मुख आते हुए और पुरुष को स्त्री का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए या उसके पयोधरों का स्पर्श करते हुए दिखलाया गया है। ये आकृतियाँ निर्वस्त्र न होकर पूरी तरह वस्त्र सज्जित हैं। कुछ उदाहरणों में समीप ही किसी आकृति को इन कृत्यों पर आश्चर्य व्यक्त करते या पीछे मुड़कर वापस लौटते हुए भी दिखाया गया है। पूर्वी जंघा के एक दृश्य में यह भाव पूरी तरह स्पष्ट है। दृश्य में श्मश्रु तथा जटाजूट से शोभित किसी ब्राह्मण साधु के दोनों ओर दो स्त्रियाँ खड़ी हैं। इनमें से एक ने साधु की दाढ़ी और दूसरे ने उसकी जटाओं को पकड़ रखा है। यह दृश्य निश्चित ही स्त्रियों द्वारा साधु को उसके किसी कृत्य पर दण्डित करने से सम्बन्धित है।

मन्दिर के मण्डप और गर्भगृह की भित्तियों पर ऊपरी पंक्ति में गन्धर्व और विद्याधरों की स्वतन्त्र और युगल मूर्तियाँ हैं। इनमें किन्नर मूर्तियाँ नहीं हैं। गन्धर्व अधिकांश उदाहरणों में द्विभुज हैं। दक्षिण मण्डप की भित्ति की एक मूर्ति में गन्धर्व चतुर्भुज है और उसके दो हाथों में फल और पुष्प हैं तथा एक हाथ आलिंगन-मुद्रा में है। एक हाथ की सामग्री स्पष्ट नहीं है। उड्डीयमान गन्धर्व युगल मूर्तियों में द्विभुज पुरुष के एक हाथ में माला, पद्म, हार, फल और वरदमुद्रा में से कोई एक प्रदर्शित है जब कि दूसरा हाथ आलिंगनमुद्रा में है। स्त्री का दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में है और बायें में सामान्यतः दर्पण और कभी-कभी पद्म या माला या फल भी है। स्वतन्त्र मूर्तियों में गन्धर्व हार, चामर और पुष्प लिए हैं। गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति के एक उदाहरण में गन्धर्व युगल नृत्यरत भी दिखाए गये हैं। गर्भगृह की उत्तरी भित्ति के एक उदाहरण में पुरुष-स्त्री के हाथों में एक ही पुष्पहार प्रदर्शित है। विद्याधर युगलों में पुरुषों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्यतः वेणुवादन करते हुए दिखाया गया है जबकि स्त्री के एक हाथ में पुष्प है और दूसरा जानु पर स्थित है। पूर्वी भित्ति की एक मूर्ति में विद्याधर को नृत्य की मुद्रा में मंजीरा बजाते हुए भी दिखाया गया है।

पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप और गर्भगृह की भित्तियों पर व्याल की लगभग ४५ मूर्तियाँ (२२ × ८ इंच) हैं। इनमें अधिकांश उदाहरणों में सिंह-व्याल तथा कुछ में गज-व्याल, नर-व्याल, शूकर-व्याल, मकर-व्याल तथा शुक-व्याल की मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों में रौद्रस्वरूप वाली व्याल आकृतियों की पीठ पर सामान्यतः एक खड्गधारी योद्धा आसीन है। योद्धा की एक दूसरी आकृति व्याल के पैरों के समीप बनी है और उसके हाथों में खड्ग, खेटक और कभी-कभी चक्र, शूल, अंकुश, गदा या अन्य कोई आयुध प्रदर्शित है। इस आकृति को व्याल से युद्धरत दिखाया गया है। नीचे की आकृति कभी-कभी गज या अश्व पर भी बैठी है। ये व्याल मूर्तियाँ चन्देल शासकों के शौर्य की मूक गाथा हैं।

मनभावन अप्सरा या सुरसुन्दरियों की मूर्तियों की दृष्टि से पार्श्वनाथ मन्दिर निःसन्देह खजुराहो का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। मण्डोवर और गर्भगृह की भित्तियों पर कुल ५० अप्सरा मूर्तियाँ हैं। मनमोहक शारीरिक चेष्टाओं और भावभंगिमाओं वाली ये मूर्तियाँ त्रिभंग या अतिभंग में हैं। ये आकृतियाँ सुन्दर और मांसल शरीर रचना वाली, नाभि-दर्शना, स्वस्थ पयाधरों वाली और तीखी भंगिमाओं वाली हैं। इनकी सम्पूर्ण शरीर यष्टि से ऐन्द्रिकता का भाव प्रकट होता है। शरीर के विभिन्न अंगों की मांसलता और ऐन्द्रिकता की तुलना में नितम्ब भाग कुछ सपाट जैसा दिखाई देता है। आकृतियों की नासिका लम्बी और तीखी, मुख छोटे और किंचित्, अण्डाकार, ठुड्डी तीखी, होंठ अपेक्षाकृत चौड़े और कुछ मोटे, आँखें लम्बी और खुली हुयी हैं। आँखों के मध्य में पुतली नहीं बनी है। इन आकृतियों को विभिन्न वस्त्राभूषणों से सज्जित और विविध केश-सज्जा वाला दिखाया गया है। केश-सज्जा सामान्यतः धम्मिल्ल और लम्बे जूड़े के रूप में बनी है। अलंकरणों में ग्रैवेयक, हार, स्तन-हार, कई लड़ियों वाली मेखला, कर्णफूल, भुजबन्ध, वलय एवं नूपुर मुख्य हैं। आभूषण अधिकांशतः मोती की लड़ियों से बने हैं। इन आकृतियों में साड़ियाँ विशेष रूप से आकर्षक रूपरेखा वाली हैं। इनमें विभिन्न पुष्पों और रेखाओं के माध्यम से विविधतापूर्ण अलंकरण किया गया है। अप्सराओं को चोली भी पहने हुए दिखाया गया है जिसके किनारे स्पष्ट हैं। अप्सराओं की सभी उँगलियों में छल्लेदार अंगूठियाँ और कलाई में चूड़ियाँ हैं। इनमें प्रेमी को पत्र लिखती, दर्पण देखती (दर्पणा), काजल लगाती, अपने को विवस्त्र करती (विवस्त्रजघना), एक हाथ योनि के समक्ष रखकर अपनी नग्नता को छिपाने का यत्न करती, बालक के साथ क्रीड़ा करती, कन्दुक क्रीड़ा करती (यह मूर्ति सम्प्रति खजुराहो के पुरातत्व संग्रहालय में है), अंगड़ाई लेती (अलसकन्या), नृत्य करती, दर्पण देखकर मांग में सिन्दूर भरती, दुपट्टा पकड़े हुए, दाहिने पैर से काँटा निकालती तथा पद्म, चामर और कलश लिए एवं पायल बाँधती, केश से जल निचोड़ती तथा महावर रचाती हुयी अप्सरा मूर्तियों की प्रमुखता है। विवस्त्रजघना और पत्र लिखती हुयी अप्सरा मूर्तियाँ संख्या में सर्वाधिक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवस्त्रजघना मूर्तियों में सामान्यतः जांघ पर वृश्चिक और पैरों के पास कपि की आकृतियाँ (त्रास) बनी हैं; जांघ पर ही 'श्री' अभिलिखित है। विवस्त्रजघना मूर्तियों में 'श्री' शब्द का आलेखन विशेष सांकेतिक सन्दर्भ का हो सकता है। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति की एक स्त्री मूर्ति का दाहिना हाथ ऊपर उठा है और दूसरा हाथ योनि भाग के समक्ष उसे ढँकने की मुद्रा में प्रदर्शित है। स्त्री की साड़ी पैरों के समीप खड़ी कपि आकृति खींच रही है। इस प्रकार इस मूर्ति में बहुत ही सुन्दर ढंग से साड़ी के सरकने और फलस्वरूप नारी संकोच के साथ ही ऐन्द्रिक आकर्षण का भाव निर्दिष्ट है। ऐसी मूर्तियाँ अत्यन्त सहज रूप में दर्शकों के मन में ऐन्द्रिक अनुभूति का संचार करती हैं। दर्पण में मुख देखती या काजल लगाती या माँग में सिन्दूर भरती हुयी मूर्तियों में मुख पर उल्लास का भाव स्पष्ट है। अँगड़ाई लेती हुई मूर्तियों में सम्पूर्ण शरीर विशेषतः ग्रीवा और पैरों एवं हाथों की स्वाभाविक स्थिति से नारी शरीर के अंगों में मादक उभार अत्यन्त स्वाभाविक और आकर्षक रूप में प्रकट हुआ है। ऐसी मूर्तियों में केवल पैर का पिछला हिस्सा ही जमीन पर है और दोनों हाथ पीछे की ओर दिखाये गये हैं। ये मूर्तियाँ एक ओर अँगड़ाई की स्वाभाविक स्थिति दर्शाती हैं और साथ ही उस अवस्था में नारी की अंगयष्ठी के आकर्षक लोचों और उभारों द्वारा ऐन्द्रिकता के भाव का भी संचार करती हैं। अप्सराओं की सभी क्रियाओं में नारी शरीर के आकर्षण और उभार को कलाकारों ने सफलतापूर्वक प्रकट किया है। नृत्यरत मूर्तियों में पैरों, हाथों और उँगलियों की स्थितियाँ अत्यन्त स्वाभाविक रूप में नृत्य की मुद्रा दर्शाती हैं। गर्भगृह की उत्तरी भित्ति की मूर्ति में पैर में चुभे काँटे को निकालती हुयी अप्सराओं की दो मूर्तियाँ स्वाभाविकता की पराकाष्ठा को छूती हैं। एक उदाहरण में दाहिने पैर में कांटा चुभा होने के कारण अप्सरा को उस पैर को उठाये हुए और हाथ से काँटा निकालने को चेष्टा करते हुए दिखाया गया है। बायें पैर पर खड़ी इस आकृति का शारीरिक सन्तुलन प्रशंसनीय होने के साथ ही आकर्षक भी है। दाहिने पैरों के तलवे में स्पष्टतः काँटे का कुछ निकला हुआ भाग भी देखा जा सकता है। अप्सरा के पैरों के समीप ही थैला लटकाये एक पुरुष आकृति खड़ी है जो संभवतः काँटा निकालने वाले नापित की आकृति है। अप्सरा के मुख पर काँटा चुभने की पीड़ा का भाव भी सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। दूसरे उदाहरण में अप्सरा को अपने उठे हुए दाहिने पैर की ओर संकेत करते दिखाया गया है। केशों से जल निचोड़ती हुई अप्सरा मूर्तियों में केशों को काफी लम्बा और कटि के नीचे तक लटकता दिखाया गया है। अप्सराओं की ग्रीवा और केश पतले और लम्बे हैं। गर्भगृह की मूर्तियाँ मण्डप की अपेक्षा अधिक सुन्दर और सुरक्षित हैं। इन मूर्तियों में उँगलियाँ कभी तो छोटी और कभी काफी लंबी और पतली दिखायी गयी हैं। काजल लगाती हुयी आकृति में सामान्यतः दोनों आँखों को बराबर खुला दिखाया गया है जो स्वाभाविक नहीं है। काजल लगाते समय दोनों आंखें सामान्यतः खुली नहीं रह सकतीं। मण्डप की काजल लगाती हुई अप्सरा मूर्ति के समीप ही बायें पार्श्व में कंधे पर थैला लटकाये (प्रसाधन-पेटिका) एक पुरुष आकृति खड़ी है। मण्डप की उत्तरी भित्ति की महावर रचाती हुई मूर्ति में अप्सरा के हाथ में एक लम्बी शलाका दिखायी गयी है जो महावर रचाने की प्रारम्भिक स्थिति का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूचक है। पर दक्षिणी भित्ति की मूर्ति में अप्सरा को महावर रचाते हुए दिखाया गया है और उसके दक्षिण पार्श्व में एक पुरुष आकृति इस भाव के साथ दर्पण लिये खड़ी है मानो वह अप्सरा को दर्पण में अपना सौन्दर्य निहारने का निमन्त्रण दे रही है। मण्डप के दक्षिणी भित्ति की प्रेमी को पत्र लिखती हुयी अप्सरा मूर्ति के बायें हाथ में एक पत्र है जबकि दाहिने हाथ की दो उँगलियाँ खुली और नीचे की ओर संकेत करती हुयी हैं। समीप ही एक पुरुष आकृति मसिपात्र के साथ प्रदर्शित है। मसिपात्र में ही लेखनी डूबी हुयी है। लेखन को उद्यत अप्सरा द्वारा पुरुष से लेखनी माँगने और पुरुष द्वारा लेखनी को मसिपात्र से निकालने के भाव की दृष्टि से यह अत्यन्त असाधारण मूर्ति है। उल्लेखनीय है कि अप्सरा मूर्तियों के साथ की पुरुष आकृतियाँ आकार में तुलनात्मक दृष्टि से छोटी हैं जो अप्सरा मूर्तियों के महत्व का संकेत देती हैं। मण्डप की दक्षिणी भित्ति पर अप्सरा की एक ऐसी मूर्ति है जो पंजों पर उचककर मानो दीवार पर चित्र बना रही हो।

महामण्डप और अन्तराल की छतों पर पुष्प और ज्यामितीय अलंकरण तथा स्तम्भों पर कीचकों की द्विभुज, चतुर्भुज और षड्भुज तथा नाग आकृतियाँ हैं। कीचकों को सामान्यतः दो हाथों से स्तंभों को सहारा देते हुए दिखाया गया है। चतुर्भुज होने पर अतिरिक्त दो हाथों में सामान्यतः फल एवं अभय-मुद्रा प्रदर्शित हैं। कीचकों के दो हाथों में कभी-कभी लम्बी माला और शेष दो में गदा और फल या लम्बा खड्ग भी दिखाये गये हैं। कीचकों को सदा उड़ने की मुद्रा में दिखाया गया है और उनके गर्दन तथा पेट के मध्य का भाग पर्याप्त लंबा और अस्वाभाविक है। षड्भुज होने पर दो अतिरिक्त हाथों में सामान्यतः शंख दिखाया गया है। एक स्तंभ पर षड्भुज नारी कीचक की आकृति भी बनी है। नाग आकृतियों में कटि के ऊपर का भाग सर्पाकार है और उनके सिर के ऊपर तीन या पांच सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है।

अर्धमण्डप और गर्भगृह के प्रवेश-द्वार की दहलीजों पर दोनों ओर गज और सिंह की युद्धरत आकृतियाँ बनी हैं जिनके बीच में खड्गधारी योद्धा की भी आकृतियाँ हैं। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार पर दो ओर गजलक्ष्मी और सरस्वती की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। बायीं ओर की दो गजों से अभिषिक्त लक्ष्मी आकृति के हाथों में अभय-मुद्रा, सनाल-पद्म (दो में) और जलपात्र है। ललित-मुद्रा में आसीन सरस्वती को दो हाथों से वीणा वादन करते हुये दिखाया गया है। उत्तरंग पर नवग्रहों की स्थानक आकृतियाँ हैं जिनके ऊपर तीर्थंकर पूजन का दृश्य है। द्वार-शाखाओं पर वाद्यवादन और नृत्य करती हुयी आकृतियों के अतिरिक्त आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष युगलों की भी १८ आकृतियाँ हैं। द्वार पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की कलशधारी आकृतियां हैं। निचले भाग पर वैष्णव लक्षणों वाली चतुर्भुज द्वारपालों की मूर्तियाँ हैं। किरीट-मुकुट और कौस्तुभ से अलंकृत द्वारपालों के तीन सुरक्षित हाथों में चक्र, शंख और गदा हैं।

अर्धमण्डप के प्रवेश-द्वार पर भी गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के समान ही अलंकरण और शिल्पांकन हैं। उत्तरंग पर नवग्रहों तथा नृत्य और संगीत से संबंधित आकृतियाँ तथा ललाट-बिंब में चक्रेश्वरी की मूर्ति है। दहलीज पर भी वाद्य-वादकों सहित नृत्यांगनाओं की आकृतियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनीं हैं। द्वार-शाखाओं पर स्त्री-पुरुष युगलों की १८ मूर्तियां हैं जिनमें उन्हें अधिकांशतः वार्तालाप की मुद्रा में या आलिंगनबद्ध दर्शाया गया है। इनमें समाज के विभिन्न वर्गों की आकृतियां हैं।

मन्दिर के विभिन्न भागों पर नृत्य और संगीत तथा शिक्षा और सामान्य जनजीवन से संबंधित विभिन्न दृश्य हैं जो उल्लासमय जीवन के प्रति लोगों की आस्था के साक्षी हैं। नृत्य और संगीत से संबंधित दृश्यों में सामान्यतः दो या अधिक पार्श्ववर्ती वाद्यवादकों के साथ एक स्त्री को नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है। इनमें अधिकांशतः नगाड़ा, मंजीरा या वेणु वादकों की मूर्तियां हैं। कुछ उदाहरणों में नर्तकों की भी आकृतियां देखी जा सकती हैं। इन उदाहरणों में पैरों, हाथों और मुखमुद्रा से नृत्य की विभिन्न चेष्टाओं का अत्यन्त स्वाभाविक और गतिशील रूप प्रकट हुआ है। पश्चिमी भित्ति पर एक पुरुष आकृति को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में एक हाथ कान पर रखकर ऊँचे स्वर में गाने की मुद्रा में दिखलाया गया है।

सामान्य घरेलू दृश्यों में उत्तरी शिखर की मूर्ति महत्वपूर्ण है। इसमें एक पुरुष आकृति के समक्ष दोनों हाथ जोड़कर दर्पण देखती हुई एक स्त्री आकृति बैठी है। जैन साधुओं के अंकन अधिकांशतः शिखर पर हैं। दक्षिणी भित्ति पर श्मश्रुयुक्त साधु की एक आकृति है जिसके समक्ष एक क्षीणकाय आकृति बैठी है। यह संभवतः साधु द्वारा पुरुष आकृति को कुछ समझाने का दृश्य है। इसी प्रकार के दृश्य पूर्वी और पश्चिमी शिखर पर भी हैं। पश्चिमी शिखर के दृश्य में जैन और ब्राह्मण साधुओं के बीच शास्त्रार्थ का अंकन है। दक्षिणी शिखर के एक दृश्य में एक जैन साधु के समक्ष उपदेश श्रवण करती हुई कुछ आकृतियां बैठी हैं।

मन्दिर के मण्डप तथा गर्भगृह की भित्तियों एवं शिखर पर जिनों की भी कई मूर्तियां हैं। मण्डप और शिखर की जिन मूर्तियों में लांछन और यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं, अतः जिनों की पहचान संभव नहीं है। इनमें सिंहासन, त्रिछत्र, चामरधारी सेवक एवं गज आकृतियों से युक्त मूलनायकों के साथ परिकर में लघु जिन मूर्तियां भी बनीं हैं। गर्भगृह की भित्ति की जिन मूर्तियां लांछन, अष्टप्रातिहार्य और यक्ष-यक्षी की आकृतियों से युक्त हैं। इनमें जिनों को नौ मूर्तियों के अतिरिक्त बाहुबली की भी एक मूर्ति है। तीर्थंकरों को ध्यानस्थ और कायोत्सर्ग दोनों ही मुद्राओं में निरूपित किया गया है। तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी सामान्यतः अभयमुद्रा (या पद्म) और फल (या जलकलश) से युक्त हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि तीर्थंकरों के साथ पारंपरिक यक्ष-यक्षी युगलों के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी का अंकन हुआ है। नौ में से केवल चार ही तीर्थंकरों के लांछन स्पष्ट हैं जिनके आधार पर उनकी पहचान अभिनन्दन (कपि), पुष्पदन्त (मकर), चन्द्रप्रभ (शशि) एवं महावीर (सिंह) से की जा सकती है। गर्भगृह में पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की आकृतियों से वेष्टित ऋषभनाथ की विशाल मूर्ति है। मण्डप में चारों ओर तीर्थंकरों, जैन युगल एवं अंबिका की मूर्तियाँ हैं।

मन्दिर में अम्बिका की कुल तीन मूर्तियाँ हैं, जिनमें से दो मण्डप की दक्षिणी भित्ति एवं शिखर तथा एक मण्डप की भीतरी दीवार में हैं। दो उदाहरणों में अम्बिका चतुर्भुजा और एक में द्विभुजा हैं। मण्डप की उत्तरी और दक्षिणी भित्ति पर चतुर्भुजा लक्ष्मी की भी तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तियाँ हैं। अधिष्ठान की रथिकाओं में सरस्वती की दो ललितासीन मूर्तियाँ हैं। सरस्वती की तीन अन्य मूर्तियाँ गर्भगृह तथा पश्चिम के संयुक्त जिनालय के उत्तरंगों पर भी हैं। लक्ष्मी और सरस्वती के अतिरिक्त मन्दिर में ब्रह्माणी की भी तीन मूर्तियाँ हैं जिनमें ब्रह्माणी त्रिमुख और चतुर्भुजा हैं। उत्तरी भित्ति के रथिका बिम्ब में त्रिभंग में खड़ी ब्रह्माणी के चारों हाथ खंडित हैं। उल्लेखनीय है कि लक्ष्मी, सरस्वती एवं ब्राह्मणी की रथिका मूर्तियों में परिकर में छोटी तीर्थंकर मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की गई हैं। ब्रह्माणी की दो अन्य छोटी मूर्तियाँ अर्धमण्डप के उत्तरंग के छोरों पर बनीं हैं। हंसवाहन वाली देवी ललितमुद्रा में आसीन हैं और उनके करों में बीजपूरक (या अभय-मुद्रा), शक्ति, पुस्तक और कमण्डलु हैं।

मन्दिर क्रमांक १२

इस मन्दिर में मूलनायक के रूप में आदिनाथ की विशाल मनोहारी प्रतिमा (५' ११" × ३' २") प्रतिष्ठित है। वृषभ-लांछन से युक्त तीर्थंकर ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। ऋषभनाथ के साथ पारम्परिक जटा-मुकुट और लटें प्रदर्शित नहीं हैं। पर सिंहासन छोरों पर चतुर्भुजा गरुडवाहना चक्रेश्वरी यक्षी तथा पर्सधारी सर्वाह्न यक्ष एवं धर्मचक्र के दोनों ओर वृषभ-लांछन का अंकन स्पष्ट है। यह मूर्ति खजुराहो की सबसे बड़ी ध्यानस्थ मूर्ति है। इस मूर्ति में परिकर का अत्यन्त विस्तृत रूप में अंकन मिलता है। अलंकृत प्रभामण्डल से शोभित मूर्ति में मूलनायक के मुख पर गम्भीर चिन्तन का भाव स्पष्ट है। परिकर में कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्तियों तथा बादलों की पृष्ठभूमि में आकाशगामी गन्धर्व युगलों का अंकन उल्लेखनीय है। मूलनायक की केश-रचना विशेष आकर्षक है।

मन्दिर क्रमांक १३

मन्दिर में मूलनायक के रूप में श्रेयांशनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा (२' ७" × १' ७") प्रतिष्ठित है। इस प्रतिमा की बायीं ओर विक्रम सम्वत् २०३७ (२५ जनवरी १९८१ ई०) की बाहुबली की एक मूर्ति स्थापित है। श्रेयांशनाथ के दक्षिण-पार्श्व में कूर्मलांछन वाली मुनिसुव्रत की कायोत्सर्ग मूर्ति है।

मन्दिर क्रमांक १४

मन्दिर के मध्य में तीर्थंकर की लांछनयुक्त मूर्ति है। इस मूर्ति के बायीं ओर सिंह-लांछनयुक्त महावीर की मूर्ति है। दाहिनी ओर भी तीर्थंकर की एक मूर्ति है। पर लांछन यहाँ स्पष्ट नहीं है। उपर्युक्त तीनों मूर्तियाँ कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं और दो उदाहरणों में यक्ष-यक्षी भी बने हैं।

मन्दिर क्रमांक १५

इस मन्दिर में नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की ११ वीं शती ई० की त्रितीर्थी मूर्ति (२' ३" × १' ७") स्थापित है। सभी तीर्थंकर कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। अर्धमण्डप के बाहर गज आकृतियाँ बनी हैं। ये आकृतियाँ अत्यन्त अलंकृत और प्रभावोत्पादक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर क्रमांक १६

इस मन्दिर में ११ वीं शती ई० की वृषभ-लांछन वाली आदिनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति (२' × १' ४') है। तीर्थंकरों के साथ यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वाह्ण और चक्रेश्वरी आमूर्तित हैं।

घण्टई मन्दिर :

जैन मन्दिर समूह के परकोटे से बाहर गाँव के दक्षिण में यह मन्दिर स्थित है। स्तम्भों पर उत्कीर्ण झूलती हुई घण्टियों और क्षुद्र घण्टिकाओं के कारण इस मन्दिर का नाम घण्टई पड़ा। घण्टई नाम सम्भवतः मन्दिर के निर्माणकाल में ही प्राप्त हो गया था, जो खजुराहो के पुरातात्विक संग्रहालय की कुछ मूर्तियों पर घण्टई शब्द के उत्कीर्णन से स्पष्ट है। शृंखला और घण्टों के सुन्दर रूपांकन वाले ये स्तम्भ मध्यभारत के सर्वोत्कृष्ट स्तम्भों में हैं। पूर्वाभिमुख मन्दिर यद्यपि पर्याप्त खण्डित है किन्तु अवशिष्ट भाग यह दर्शाता है कि योजना में यह मन्दिर पार्श्वनाथ मन्दिर के समान और भव्यता और विशालता में उससे बढ़कर था। विस्तार में पार्श्वनाथ मन्दिर से यह लगभग दुगुना था। वर्तमान में इस मन्दिर के केवल अर्ध-मण्डप और महामण्डप ही शेष हैं। इनमें से प्रत्येक मण्डप की समतल तथा अलंकृत छत चार-चार स्तम्भों पर आधारित हैं। स्तम्भों के वृत्तार्धों के भीतर जैन आचार्यों, विद्याधरों और मिथुन युगलों की अकृतियाँ हैं। कृष्णदेव ने स्थापत्य, मूर्तिकला और लिपि सम्बन्धी साक्ष्यों के आधार पर घण्टई मन्दिर को १० वीं शती ई० के अन्त का निर्माण माना है।[1]

मन्दिर के महामण्डप के उत्तरंग पर ललाटबिम्ब में अष्टभुज चक्रेश्वरी की मूर्ति है, जो इस बात का प्रमाण है कि मन्दिर आदिनाथ को समर्पित था। उत्तरंग पर द्विभुज नवग्रहों और गोमुख अष्ट वसुओं की भी स्थानक मूर्तियाँ हैं। बड़ेरी पर १६ मांगलिक स्वप्नों तथा द्वार-शाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की त्रिभंग मूर्तियाँ हैं। अर्धमण्डप की छत तथा मण्डप के स्तम्भों पर तीर्थंकरों एवं जैन आचार्यों की मूर्तियाँ बनी हैं। जैन आचार्यों को सामान्यतः शास्त्रार्थ तथा व्याख्यान की मुद्रा में पुस्तिका के साथ दिखाया गया है। वितान के एक दृश्य में एक निर्वस्त्र जैन आचार्य को व्याख्यान मुद्रा में दिखाया गया है और उसके समक्ष नमस्कार मुद्रा में एक स्त्री आकृति खड़ी है। एक उदाहरण में श्मश्रुयुक्त ब्राह्मण साधु जैन आचार्य के समक्ष नमस्कार मुद्रा में दिखाये गये हैं।

---

१. कृष्णदेव "दि टेम्पुल्स आव खजुराहो इन सेण्ट्रल इण्डिया", पृ० ६०; कृष्णदेव, **जैन आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर**, खण्ड–२, पृ० २८०-८४; जैन, बलभद्र, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १३३-३४; जग्रास, ई०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–३

जैन देवकुल

प्राचीन भारतीय कला तत्त्वतः धार्मिक रही है। फलतः धर्म या सम्प्रदाय विशेष में होने वाले परिवर्तनों ने शिल्प की विषयवस्तु को भी प्रभावित किया। इसी दृष्टि से खजुराहो की जैन मूर्तियों के अध्ययन के पूर्व जैन देवकुल के स्वरूप की जानकारी भी आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर ही इस बात का आकलन किया जा सकेगा कि खजुराहो की जैन मूर्तियों के निरूपण में किस सीमा तक पारम्परिक और शास्त्रीय निर्देशों का पालन हुआ है।

२४ तीर्थंकरों या जिनों की धारणा जैन धर्म की धुरी रही है। जैन देवकुल के अन्य सभी देवता किसी न किसी रूप में तीर्थंकरों से उनके सहायक देवों के रूप में सम्बद्ध रहे हैं। तीर्थंकरों को देवाधिदेव भी कहा गया है। कर्म तथा वासना पर विजय प्राप्ति के कारण इन्हें जिन (विजेता) और कैवल्य प्राप्ति के बाद साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के सम्मिलित तीर्थ की स्थापना के कारण तीर्थंकर कहा गया। प्रत्येक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी युगों में क्रमशः २४ तीर्थंकरों की कल्पना की गयी। वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरों में से केवल अन्तिम दो—पार्श्वनाथ एवं महावीर (या वर्धमान) ही ऐतिहासिक व्यक्ति माने गये हैं।

२४ तीर्थंकरों की प्रारम्भिक सूची **समवायांग सूत्र**[1], **भगवती सूत्र, कल्पसूत्र**[2], **चतुर्विंशति-स्तव** एवं **पउमचरिय**[3] में है। २४ तीर्थंकरों की सूची ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही नियत हो गयी थी। इस सूची में ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्द, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, श्रेयांशनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, अरनाथ, कुंथुनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ (अरिष्टनेमि), पार्श्वनाथ एवं महावीर (वर्धमान) के नाम मिलते हैं। कुषाण काल में मथुरा में ऋषभनाथ, सम्भवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्तियाँ भी बनने लगी थीं।

जैन देवकुल में ६३ शलाका या उत्तम पुरुषों की कल्पना भी गयी है। इनमें २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती (भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुंथु, अर, सुसूम, पद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त), ९ बलदेव (अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म या राम, बलराम), ९ वासुदेव (त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष-पुण्डरीक, दत्त, नारायण या लक्ष्मण, कृष्ण) और ९ प्रतिवासुदेव (अश्वग्रीव, तारक, मेरक,

---

१. **समवायांग सूत्र** १५७।

२. **कल्पसूत्र** २, १८४–२०३।

३. **पउमचरिय** (विमलसूरि कृत–४७३ ई०), १.१–७, ५.१४५–४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, जरासन्ध) सम्मिलित हैं।[1] ६३ शलाका पुरुषों की विस्तृत सूची **पउमचरिय, महापुराण** (जिनसेन एवं गुणभद्रकृत—आठवीं-नवीं शती ई०) एवं **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (हेमचन्द्रकृत—१२ वीं शती का उत्तरार्ध) में मिलती है।[2] जैन शिल्प में सभी ६३ शलाका पुरुषों का निरूपण नहीं हुआ। हमें २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त बलराम, कृष्ण, राम और भरत चक्रवर्ती की ही मूर्तियाँ मिलती हैं। बलराम और कृष्ण को नेमिनाथ की मूर्तियों के परिकर में और साथ ही स्वतन्त्र रूप में भी दिखाया गया। **पउमचरिय** में राम और रावण तथा भरत चक्रवर्ती और **उत्तराध्ययन सूत्र, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण** एवं **त्रिशष्टि-शलाकापुरुषचरित्र** में बलराम और कृष्ण से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं।

आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य ६३ शलाका पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित कई श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें **कहावली** (भद्रेश्वर कृत—आठवीं शतीई०) और **तिलोयपण्णत्ति** (यतिवृषभ कृत—ल० आठवीं शती ई०), **महापुराण** एवं **त्रिशष्टिशलाका पुरुषचरित्र** मुख्य हैं। खजुराहो में ६३ शलाका पुरुषों में से केवल तीर्थंकरों तथा राम, कृष्ण और बलराम की ही मूर्तियाँ बनीं।

ल० छठीं से १० वीं शती ई० के मध्य का काल धार्मिक इतिहास की दृष्टि से संक्रमण काल था। इस अवधि में अन्य धर्मों एवं कलाओं के समान जैन धर्म और कला में भी नवीन प्रवृत्तियाँ एवं तान्त्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है। तान्त्रिक प्रभाव के फलस्वरूप जैन देवताओं की संख्या तथा जैनों के धार्मिक कृत्यों में तीव्र गति से वृद्धि हुई। इस अवधि में विभिन्न प्रतिमा-लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना के फलस्वरूप कला में शास्त्रीय परम्परा के निर्वाह की बाध्यता से कला में यान्त्रिकता का भाव भी प्रकट हुआ।[3]

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों के अवगाहन से ज्ञात होता है कि पाँचवीं शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल का मूलस्वरूप काफी कुछ निर्धारित हो चुका था। इन ग्रन्थों में तीर्थंकरों तथा अन्य शलाका पुरुषों एवं यक्ष-यक्षियों, विद्याओं, सरस्वती, लक्ष्मी, बलराम, कृष्ण, नैगमेषी, लोकपाल (इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि) तथा लोकधर्म में प्रचलित देवों यथा, रुद्र, शिव, स्कन्द, वासुदेव, वैश्रमण या कुबेर, गन्धर्व, पितर, नाग, भूत, कीर्ति, अज्जापार्वती या आर्या के नामोल्लेख तथा प्रतिमालक्षण से सम्बन्धित कुछ प्रारम्भिक उल्लेख हैं। आगे की शताब्दियों (ल० छठी से १०वीं शती ई०) में इन देवताओं के प्रतिमालाक्षणिक स्वरूपों में और अधिक विकास हुआ। साथ ही कुछ नवीन देवताओं को भी जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया। मध्ययुग में जैन देवकुल के

---

१. **पउमचरिय** ५.१४५–५७।

२. **समवायांग सूत्र** में यद्यपि २४ जिनों, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव एवं ९ प्रति-वासुदेव के नामोल्लेख्य हैं, पर उत्तम पुरुषों की संख्या केवल ५४ ही बतायी गयी है। सम्भवतः ९ प्रतिवासुदेवों को प्रारम्भ में उत्तम पुरुषों की सूची में मान्यता नहीं मिल सकी थी।

३. शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, वाराणसी, १९५५, पृष्ठ १६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४ तीर्थंकरों एवं अन्य शलाका पुरुषों के साथ ही २४ तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी युगलों, १६ महा-विद्याओं, नवग्रहों, अष्टदिक्पालों, क्षेत्रपाल, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, शान्तिदेवी, ६४ योगिनी, ब्रह्म-शान्ति एवं कपर्दि यक्षों, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती तथा जिनों के माता-पिता का निरूपण हुआ।[1]

ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक २४ तीर्थंकरों के लांछन निर्धारित हुए, जिनकी प्राचीन-तम सूची **तिलोयपण्णत्ति** एवं **प्रवचनसारोद्धार** में उपलब्ध हैं।[2] मूर्तियों में तीर्थंकर-लांछन का अंकन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ जिसके प्रारम्भिक उदाहरण राजगिर (नेमिनाथ मूर्ति) और वाराणसी (महावीर मूर्ति, भारत कला भवन, वाराणसी, क्रमांक १६१) में हैं। आठवीं शती ई० के बाद से तीर्थंकर मूर्तियों के साथ लांछनों का नियमित अंकन होने लगा।

ल० छठी शती ई० में तीर्थंकरों के साथ शासनदेवताओं के रूप में यक्ष-यक्षी युगलों को सम्बद्ध किया गया।[3] यक्ष-यक्षी तीर्थंकरों के सेवक और उपासक देव हैं, जो जिनसंघों की रक्षा करते हैं।[4] तीर्थंकर मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण छठी शती ई० में प्रारम्भ हुआ, जिसका प्रारम्भिकतम उदाहरण अकोटा की ऋषभ मूर्ति (बड़ौदा संग्रहालय) है।[5] इस मूर्ति में यक्ष और यक्षी सर्वाह्न (सर्वानुभूति या कुबेर) और अम्बिका हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक २४ तीर्थंकरों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों की सूची भी बन गयी[6] तथा ११ वीं-१२ वीं शती ई० में उनके लक्षण निश्चित हुए।[7] जैन स्थलों पर केवल यक्षियों के ही सामूहिक अंकन के उदाहरण हैं। ये उदाहरण केवल दिगम्बर स्थलों पर ही मिलते हैं। २४ यक्षियों की सामूहिक मूर्तियों के उदाहरण देवगढ़ (ललितपुर, उ०प्र०) के शान्तिनाथ मन्दिर (मन्दिर–१२, ८६२ ई०) एवं खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा) की बारभुजी गुफा (११वीं-१२वीं शती ई०) में हैं। मध्यप्रदेश में सतना स्थित पतियानदाई मन्दिर की अम्बिका मूर्ति (११ वीं शती ई०) के परिकर में भी २४ यक्षियों की आकृतियाँ बनी हैं।[8] देवगढ़ और पतियानदाई के उदाहरणों में यक्षियों की आकृतियों के नीचे उनके नाम भी उत्कीर्ण हैं, जो अधिकांशतः दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों से साम्य रखते हैं।

यक्ष-यक्षियों के बाद विद्यादेवियों को जैनकला में सर्वाधिक महत्व मिला। आगम ग्रन्थों एवं **पउमचरिय** में विद्यादेवियोंके प्रारम्भिक उल्लेख हैं। **वसुदेवहिण्डी, हरिवंशपुराण** (७८३ ई०),

१. केवल देवताओं के प्रतिमालाक्षणिक स्वरूपों और कभी-कभी नामों के सन्दर्भ में भिन्नता दृष्टिगत होती है।

२. **तिलोयपण्णत्ति** ४.६०४–०५; **प्रवचनसारोद्धार** ३८१–८२।

३. शाह, यू० पी०, "इंट्रोडक्शन ऑफ शासनदेवताज इन जैन वर्शिप", **प्रोसीडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन ओरियन्टल कान्फ्रेंस**, २० वाँ अधिवेशन, १९६८, पृ० १४१–४३।

४. **हरिवंशपुराण** ६५. ४३–४५; **तिलोयपण्णत्ति** ४. ९३६।

५. शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९।

६. **तिलोयपण्णत्ति, कहावली** एवं **प्रवचनसारोद्धार**।

७. **निर्वाणकलिका, त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** एवं **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (दिगम्बर)।

८. यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र तथा अन्य ग्रन्थों में अनेक विद्यादेवियों के नामोल्लेख मिलते हैं।[1] सर्वप्रथम बप्पभट्टिसूरि की **चतुर्विंशतिका** (७४३–८३८ ई०) में ही तीर्थंकरों के साथ यक्षियों के स्थान पर विद्याओं, सरस्वती एवं कुछ उदाहरणों में यक्षियों के स्वरूप निरूपित हुए हैं। अनेक विद्याओंमें से १६ प्रमुख विद्याओं को लेकर १६ महाविद्याओं की सूची बनी। १६ महाविद्याओं की प्रारम्भिक सूची **तिजयपहुत्ति** (मानवदेवसूरि कृत, ९ वीं शती ई०), **संहितासार** (इन्द्रनन्दी कृत, ९३९ ई०) एवं **स्तुतिचतुर्विंशतिका** (या **शोभनस्तुति,** शोभनमुनि कृत, ल० ९७३ ई०) में उपलब्ध है। महाविद्याओं के लाक्षणिक स्वरूप सर्वप्रथम नवीं-१० वीं शती ई० में नियत हुए। बप्पभट्टि की **चतुर्विंशतिका** और शोभनमुनि की **स्तुतिचतुर्विंशतिका** में महाविद्याओं के लाक्षणिक स्वरूपों के प्रारम्भिक उल्लेख मिलते हैं। ल० आठवीं शती ई० के अन्त या नवीं शती के पूर्वार्द्ध से इन महाविद्याओं को मन्दिरों पर भी आकारित किया गया, जिसके प्रारम्भिक उदाहरण ओसियाँ (जोधपुर, राजस्थान) के महावीर एवं खजुराहो के आदिनाथ मन्दिरों पर हैं।

मध्ययुग में राम और कृष्ण के अतिरिक्त भरत और बाहुबली के भी विस्तृत उल्लेख प्राप्त होते हैं। देवगढ़, बिल्हरी और खजुराहो के दिगम्बर स्थलों पर इन शलाकापुरुषों को रूपांकित भी किया गया। खजुराहो, देवगढ़ एवं कुछ अन्य स्थलों पर पंचपरमेष्ठी, जैन आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं तथा जिनों के माता-पिता, दिक्पाल[2], नवग्रह, क्षेत्रपाल, शान्तिदेवी[3], गणेश[4], ब्रह्मशान्ति एवं कपर्दि यक्षों[5] आदि की भी अनेक मूर्तियाँ बनीं।

———

१. **हरिवंशपुराण** २२. ६१–६६।

२. जैन ग्रन्थों में आकाश और पाताल को सम्मिलित कर १० दिक्पालों की सूची दी गयी है, किन्तु घणेरव (राजस्थान) के महावीर मन्दिर के अतिरिक्त अन्य सभी जैन स्थलों पर १० के स्थान पर केवल आठ दिक्पालों का ही आलेखन हुआ है।

३. जैन धर्म एवं संघ की संरक्षिकादेवी के रूप में ९वीं–१०वीं शती ई० में श्वेताम्बर स्थलों पर शान्तिदेवी की प्रभूत मूर्तियाँ बनीं। जिन मूर्तियों के सिंहासन पर भी अभय-या-वरद-मुद्रा, पद्म (या पुस्तक) और फल से युक्त शान्तिदेवी का अनेकशः अंकन हुआ है। **वास्तु-विद्या** के जिन परिकर लक्षण से सम्बन्धित अध्याय में पद्म धारण करने वाली तथा जिन सिंहासन के मध्य में आसीन देवी को आदिशक्ति नाम दिया गया है (२२. १०–१२)। खजुराहो की भी कुछ जिन मूर्तियों में सिंहासन के मध्य में शान्तिदेवी निरूपित हैं।

४. गणेश केवल श्वेताम्बर स्थलों पर ही रूपांकित हुए। जैन गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ पूरी तरह ब्राह्मण गणेश से प्रभावित हैं। गजमुख एवं लम्बोदर तथा मूषक पर आरूढ गणेश के करों में अभय और वरदमुद्रा, स्वदन्त, परशु, मोदकपात्र, पद्म एवं अंकुश दिखाये गये हैं। ओसियाँ की देवकुलिकाओं तथा कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश की कई मूर्तियाँ हैं।

५. ब्रह्मशान्ति और कपर्दि यक्षों का निरूपण केवल श्वेताम्बर ग्रन्थों में ही हुआ है। सम्भवतः इसी कारण दिगम्बर स्थलों पर इनकी मूर्तियाँ नहीं बनीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–४

तीर्थंकर या जिन मूर्तियाँ

सामान्य विकास

जैन देवकुल में तीर्थंकरों या जिनों को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। हेमचन्द्र ने इन्हें देवाधिदेव भी कहा है। कला में सर्वप्रथम जिनों की ही मूर्तियाँ बनीं। प्राचीनतम जिन मूर्ति ल० तीसरी शती ई० पू० की है। यह मूर्ति लोहानीपुर (पटना, बिहार) से मिली है और सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। जैन परंपरा में २४ तीर्थंकरों के अलग-अलग लांछन एवं यक्ष-यक्षी युगल बताए गए हैं। लांछनों और यक्ष-यक्षियों तथा पीठिका लेखों के आधार पर ही जिन मूर्तियों को पहचाना गया है। गुजरात और राजस्थान में लांछनों के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परंपरा अधिक लोकप्रिय थी। कला में स्वतन्त्र जिन मूर्तियों के साथ ही उनकी द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुखी और चौबीसी मूर्तियाँ भी बनीं। जिन मूर्तियाँ केवल दो ही मुद्राओं में बनीं, या तो उन्हें ध्यान-मुद्रा में दोनों पैर मोड़कर और दोनों हाथों की खुली हथेलियों को गोद में रखे हुए आसीन या फिर दोनों हाथ लंबवत् नीचे लटकाये कायोत्सर्ग (या खड्गासन) में खड़ा निरूपित किया गया।

लोहानीपुर की प्राचीनतम मूर्ति में तीर्थंकर निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं।[1] यहीं से शुंग काल या कुछ बाद की एक अन्य मूर्ति भी मिली है। ल० पहली शती ई० पू० या कुछ बाद की दो अन्य कायोत्सर्ग मूर्तियाँ प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई और पटना संग्रहालय में हैं। पटना संग्रहालय की मूर्ति चौसा (भोजपुर, बिहार) से मिली है।[2] दोनों ही उदाहरणों में पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं और उनके सिर पर पाँच या सात सर्पफणों के छत्र हैं। इन प्रारम्भिक जिन मूर्तियों के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न नहीं है। जिनों के वक्षस्थल में श्रीवत्स चिह्न का अंकन सर्वप्रथम पहली शती ई० पू० में मथुरा में प्रारंभ हुआ और उसके बाद की सभी जिन मूर्तियों में यह अभिन्न लक्षण के रूप में प्रदर्शित हुआ। वस्तुतः श्रीवत्स चिह्न जिन मूर्तियों की पहचान का मुख्य आधार है।[3] ल० पहली शती ई० पू० में ही मथुरा के

---

१. जायसवाल, के० पी०, "जैन इमेज ऑफ मौर्य पीरियड", **जर्नल बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी**, खं० २३, भाग–१, १९३७, पृ० १३०-३२।

२. शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, पृ० ८९, प्रसाद, एच० के०, "जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजिम", **महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम**, बंबई, १९६८, पृ० २७५–८०।

३. दक्षिण भारत की बादामी, अयहोल, एलोरा एवं कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त जिन मूर्तियाँ इसकी अपवाद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयागपटों पर सर्वप्रथम जिनों का ध्यान-मुद्रा में अंकन प्रारम्भ हुआ। ऐसे एक उदाहरण में ध्यानस्थ तीर्थंकर के सिर पर सात सर्पफणों का छत्र भी बना है जो पार्श्वनाथ का लक्षण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन मूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्वनाथ का ही वैशिष्ट्य स्पष्ट हुआ। पार्श्वनाथ के बाद ऋषभनाथ के लक्षण नियत हुए। मथुरा में पहली शती ई० में स्कंधों पर लटकती हुई जटाओं वाली ऋषभनाथ की कई मूर्तियाँ बनीं।

जैन प्रतिमाविज्ञान, विशेषतः जिन प्रतिमाओं के विकास की दृष्टि से कुषाण काल का विशेष महत्व है। पहली-दूसरी शती ई० के मध्य मथुरा में जिनों की स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही उनके जीवन से सम्बन्धित दृश्यांकन भी उत्कीर्ण हुए। ऋषभनाथ एवं पार्श्वनाथ के अतिरिक्त मथुरा में संभवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ एवं महावीर की भी मूर्तियाँ बनीं। नेमिनाथ की मूर्तियों में बलराम एवं कृष्ण का अंकन हुआ। ऋषभनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के अतिरिक्त अन्य जिनों को केवल पीठिका लेखों के आधार पर ही पहचाना गया है। मथुरा के अतिरिक्त चौसा से भी ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की कुषाण कालीन मूर्तियाँ मिली हैं। कुषाण-काल में मथुरा में ही सर्वप्रथम जिन मूर्तियों में प्रातिहार्यों, धर्मचक्र, मांगलिक चिह्नों एवं उपासकों आदि का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। मथुरा में आठ प्रातिहार्यों में से केवल सात (सिंहासन, प्रभामण्डल, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर, छत्र, चैत्यवृक्ष एवं दिव्य ध्वनि) ही प्रदर्शित हुए। जिनों की हथेलियों, तलुओं एवं उँगलियों पर धर्मचक्र, श्रीवत्स और त्रिरत्न जैसे मांगलिक चिह्न भी उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों में पार्श्वनाथ के सर्पफणों पर भी ये चिह्न बने हैं। कुषाण काल में जिन चौमुखी (प्रतिमा सर्वतोभद्रिका) का निर्माण प्रारम्भ हुआ जिनमें चारों ओर चार जिनों की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ बनीं। चार जिनों में से केवल ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की ही पहचान संभव है। कुषाण काल में ही ऋषभनाथ के जीवन से सम्बन्धित नीलांजना के नृत्य तथा महावीर के गर्भापहरण के दृश्य भी बने।

जिन प्रतिमालक्षण की दृष्टि से गुप्तकाल का भी विशेष महत्व है। सर्वप्रथम गुप्तकालीन ग्रन्थ **बृहत्संहिता** में ही जिन मूर्तियों के सामान्य लक्षण निरूपित हुए।[1] इस ग्रन्थ में जिनों के श्रीवत्स चिह्न से युक्त, निर्वस्त्र, अजानुलम्बबाहु और तरुण स्वरूप में निरूपण का उल्लेख है। जिन मूर्तियों में पारंपरिक लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्टप्रातिहार्यों का प्रदर्शन गुप्तकाल में ही प्रारम्भ हुआ। लांछनों से युक्त प्राचीनतम जिन मूर्तियाँ नेमिनाथ (शंख) और महावीर (सिंह) की हैं। ये मूर्तियाँ क्रमशः राजगिर (बिहार) और वाराणसी (भारत कलाभवन, वाराणसी, क्रमांक १६१) से मिली हैं। ऋषभनाथ एवं पार्श्वनाथ की मूर्तियों में पूर्ववत् लटकती जटाओं और सात सर्पफणों के छत्र देखे जा सकते हैं। यक्ष-यक्षी युगल से युक्त पहली जिन मूर्ति (ल० छठी शती ई०) श्वेतांबर स्थल अकोटा (बड़ौदा, गुजरात) से मिली है। यह मूर्ति ऋषभनाथ की है और इसमें यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति (या कुबेर) और अंबिका की आकृतियाँ बनी

---

१. आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥ **बृहत्संहिता** ५८.४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं।[1] ल० सातवीं-आठवीं शती ई० से जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षियों का नियमित अंकन होने लगा जिसके प्रारम्भिक उदाहरण बादामी, अयहोल, वाराणसी, मथुरा, ओसियाँ एवं अकोटा से मिले हैं।

ल० आठवीं-नवीं शती ई० में २४ जिनों के लांछन और उनके यक्ष-यक्षी युगलों की सूची निर्धारित हुई। प्रारम्भिकतम सूचियाँ **कहावली, तिलोयपण्णत्ति** (४·६०४-०५, ९३४-३९) एवं **प्रवचनसारोद्धार** (३७५–७८, ३८१–८२) में हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतंत्र लाक्षणिक विशेषतायें ल० ११ वीं-१२ वीं शती ई० में नियत हुईं, जिनके उल्लेख **निर्वाण-कलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, प्रतिष्ठासारसंग्रह** और **प्रतिष्ठासारोद्धार** में हैं। गुजरात और राजस्थान में श्वेतांबर परंपरा तथा अन्य क्षेत्रों में दिगम्बर परंपरा की मूर्तियाँ बनीं।

२४ जिनों में ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ बनीं। उत्तर भारत में नेमिनाथ और महावीर की अपेक्षा ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की अधिक मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भारत में नेमिनाथ की मूर्तियों का लगभग अभाव है और पार्श्वनाथ एवं महावीर की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भारत में ऋषभनाथ की मूर्तियाँ अत्यल्प हैं। इस प्रकार उत्तर भारत में ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ तथा दक्षिण भारत में पार्श्वनाथ और महावीर की उपासना सर्वाधिक लोकप्रिय थी। इन्हीं चार जिनों से सम्बन्धित यक्ष और यक्षियाँ भी विशेष लोकप्रिय थीं। जैन स्थलों पर ऋषभनाथ के गोमुख-चक्रेश्वरी, नेमिनाथ के सर्वानुभूति-अम्बिका, पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र-पद्मावती और महावीर के मातंग-सिद्धायिका की सर्वाधिक मूर्तियाँ बनीं। **रूपमण्डन** में भी स्पष्टतः २४ तीर्थंकरों में से उपर्युक्त चार जिनों एवं उनसे सम्बन्धित यक्ष-यक्षियों को विशेषरूप से पूज्य बताया गया है।[2]

खजुराहो की तीर्थंकर मूर्तियाँ : सामान्य निरूपण

अन्य जैन स्थलों की भाँति खजुराहो में भी तीर्थंकरों की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। यहाँ लगभग ९५० से ११५० ई० के मध्य की २०० से अधिक जिन मूर्तियाँ हैं।[3] खजुराहो के कुछ ब्राह्मण मंदिरों पर भी जिन मूर्तियों का अंकन हुआ है। ये मूर्तियाँ साम्प्रदायिक सौहार्द की साक्षी हैं। देवी जगदम्बी और विश्वनाथ मंदिरों के अधिष्ठानों पर जिनों की ऐसी मूर्तियाँ हैं।[4] खजुराहो में जिनों की स्वतंत्र मूर्तियों के साथ ही उनकी द्वितीर्थी, त्रितीर्थी और चौमुखी

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, चन्दा, आर० पी० "जैन रिमेन्स ऐट राजगिर" **आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट**, १९२५–२६, पृ० १२५–२६; तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, "एन अनपब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी", **विश्वेश्वरानन्द इन्डोलॉजिकल जर्नल**, खं० १३, अं० १–२, पृ० ३७३–७५; शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९।

२ **रूपमण्डन** ६·२५-२७।

३. इस संख्या में मंदिरों की दीवारों और उत्तरंगों की छोटी जिन मूर्तियां नहीं सम्मिलित हैं।

४. भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मंदिर के अधिष्ठान पर भी इसी प्रकार जिनों की आकृतियाँ बनी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तियाँ भी बनीं। खजुराहो की जिन मूर्तियाँ प्रतिमालक्षण की दृष्टि से पूर्ण विकसित कोटि की हैं। इनमें जिनों के साथ लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों, अष्ट-प्रातिहार्यों तथा परिकर में लघु जिन आकृतियों, नवग्रहों तथा कभी-कभी लक्ष्मी, सरस्वती और बाहुबली का भी अंकन हुआ है।[1] इस स्थल की प्राचीनतम जिन मूर्तियां पार्श्वनाथ मंदिर में हैं। जिन मूर्तियों के व्यक्तिशः निरूपण के पूर्व संक्षेप में उनकी सामान्य विशेषताओं की चर्चा भी प्रासंगिक है। श्रीवत्स चिह्न से युक्त जिन मूर्तियां या तो ध्यान-मुद्रा में या कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। ध्यानस्थ मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हैं। खजुराहों की जिन मूर्तियां लक्षणों की दृष्टि से पूरी तरह देवगढ़ एवं मथुरा जैसे समकालीन दिगम्बर केन्द्रों की जिन मूर्तियों के समान हैं।

खजुराहों में तीर्थंकरों को अलंकृत आसनों पर निरूपित किया गया है जिसके नीचे सिंहासन है। सिंहासन के मध्य में उपासकों द्वारा पूजित या बिना उपासकों के धर्मचक्र उत्कीर्ण है। सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी युगलों की मूर्तियां हैं। धर्मचक्र के समीप ही जिनों के लांछन बने हैं। मूलनायक के पार्श्वों में मुकुट एवं हार आदि से शोभित सेवकों की दो स्थानक मूर्तियां भी हैं जिनके एक हाथ में चामर है और दूसरा कटि पर स्थित है। कभी-कभी दूसरे हाथ में पद्म भी प्रदर्शित है। मूलनायक के कंधों के ऊपर दोनों ओर गजों, उड्डीयमान मालाधरों एवं मालाधर युगलों की मूर्तियां बनी हैं। गजों पर सामान्यतः घट लिये एक या दो आकृतियां बैठी हैं। जिनों के सिरों के पीछे ज्यामितीय, पुष्प एवं अन्य अलंकरणों से सज्जित प्रभामण्डल उत्कीर्ण है।

गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित जिनों की केश रचना उष्णीष के रूप में आबद्ध है। ऋषभनाथ, सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ के साथ क्रमशः लटकती जटाओं एवं पांच तथा सात सर्पफणों के छत्रों का प्रदर्शन हुआ है। मूलनायक के सिर के ऊपर त्रिछत्र और दुन्दुभि बजाती अधलेटी आकृति भी बनी है। परिकर के ऊपरी भाग में कभी-कभी कुछ अन्य मालाधर गन्धर्वों एवं वाद्यवादन करती आकृतियों का भी निरूपण हुआ है। कुछ उदाहरणों में सिंहासन पर या परिकर में द्विभुज नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में लघु जिन मूर्तियों का अंकन विशेष लोकप्रिय था। कभी-कभी परिकर की २३ छोटी जिन मूर्तियां मूलनायक के साथ मिलकर जिन चौबीसी का रूप ग्रहण कर लेती हैं। जिन मूर्तियों के छोरों पर एक के ऊपर एक क्रम से गज, व्याल, मकर एवं योद्धा की आकृतियां बनीं हैं।

जिन मूर्तियों में यक्ष एवं यक्षी (शासन देवताओं) की मूर्तियां क्रमशः सिंहासन के दक्षिण और वाम छोरों पर बनी हैं। यक्ष-यक्षी युगल सामान्यतः द्विभुज या चतुर्भुज तथा

---

१. स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णकम्।
पीठंभामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम्॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम्।
लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षीं च वामके॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १·७६–७७, **हरिवंशपुराण** ३·३१–३८; **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५·८२–८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ललितमुद्रा में आसीन हैं। कुछ उदाहरणों में यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं भी हुआ है। ऐसी मूर्तियों में सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षियों के स्थान पर दो लघु जिन आकृतियां बनी हैं। खजुराहो में ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, पुष्पदंत, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की ही सर्वाधिक मूर्तियां बनीं। पार्श्वनाथ और महावीर की अपेक्षा ऋषभनाथ की अधिक मूर्तियां हैं। यह संख्या ऋषभनाथ की सर्वाधिक लोकप्रियता का सूचक है। खजुराहो के तीनों प्रमुख जैन मंदिरों (पार्श्वनाथ, घण्टई एवं आदिनाथ) का ऋषभनाथ को समर्पित रहा होना भी इसी तथ्य को प्रकट करता है। अभिनंदन, सुमतिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ, चंद्रप्रभ, कुंथुनाथ एवं मुनिसुव्रत की केवल एक-एक मूर्ति मिली है। अन्य तीर्थंकरों की दो से छः मूर्तियां हैं।

स्वतंत्र जिन मूर्तियाँ

खजुराहो की तीर्थंकर मूर्तियों के सामान्य निरूपण के बाद उनका व्यक्तिशः विवेचन भी आवश्यक है। स्वतंत्र जिन मूर्तियों के पश्चात् खजुराहो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी और चौमुखी मूर्तियों तथा जिनों के जीवन की घटनाओं से संबन्धित अंकन का उल्लेख किया जायगा। खजुराहो की जिन मूर्तियां अधिकांशतः पीले रंग के बलुए पत्थर में और कुछ उदाहरणों में लाल और भूरे रंग के पत्थरों में बनी हैं।

ऋषभनाथ

ऋषभनाथ मानव समाज के आदि व्यवस्थापक एवं वर्तमान अवसर्पिणी युग के प्रथम तीर्थंकर हैं। प्रथम जिन होने के कारण ही इन्हें आदिनाथ भी कहा गया है। इनका लांछन वृषभ है और यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी (अप्रतिचक्रा) हैं। खजुराहो में ऋषभनाथ की सर्वाधिक (ल० ६०) मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां ल० ९५० से ११५० ई० के मध्य की हैं। खजुराहो से मिली ऋषभनाथ की ल० ११वीं शती ई० की एक मूर्ति भारत कला-भवन, वाराणसी (क्रमांक २२०७३) में भी सुरक्षित है। देवगढ़ के अतिरिक्त इतनी विशाल संख्या में ऋषभनाथ की मूर्तियां अन्य किसी स्थल पर नहीं बनीं। खजुराहो की मूर्तियों में ऋषभनाथ के साथ लटकती हुई जटाओं और लांछन के रूप में वृषभ का नियमित अंकन हुआ है। सर्वाधिक विस्तृत लक्षणों वाली मूर्ति पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह में है। यद्यपि इस उदाहरण में मूलनायक की प्रतिमा पूरी तरह नष्ट हो चुकी है किन्तु पीठिका और परिकर सुरक्षित हैं। ऋषभनाथ के पार्श्वों में कभी-कभी पांच और सात सर्पफणों के छत्र वाले सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियां भी बनी हैं। कभी-कभी दोनों पार्श्वों में पार्श्वनाथ की ही आकृतियां बनी हैं। ऐसे उदाहरणों में पार्श्ववर्ती चामर-धर सेवकों को कभी-कभी स्थानाभाव के कारण नहीं दिखाया गया है। जार्डिन संग्रहालय (क्रमांक १६९१) की एक विशिष्ट मूर्ति में ऋषभनाथ के पारंपरिक यक्ष-यक्षी (गोमुख-चक्रेश्वरी) के साथ ही लक्ष्मी एवं अंबिका की भी आकृतियां उत्कीर्ण हैं, जो ऋषभनाथ की विशेष प्रतिष्ठा की परिचायक हैं। उल्लेखनीय है कि देवगढ़ (मंदिर–४, ११वीं शती ई०) और उरई (जालौन, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, क्रमांक १६.०.१७८) की ऋषभनाथ की दो अन्य मूर्तियों में भी गोमुख और चक्रेश्वरी के साथ अंबिका और लक्ष्मी की आकृतियां बनी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश उदाहरणों में ऋषभनाथ ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं। मूलनायक को सामान्यतः पद्म पर और कभी-कभी सीधे सिंहासन पर दिखाया गया है। लगभग दस उदाहरणों में ऋषभनाथ की केश-रचना जटा के रूप में पीछे की ओर सँवारी गई है। अन्य उदाहरणों में केश छोटे-छोटे गुच्छकों के रूप में बने हैं। कन्धों पर लटें सभी मूर्तियों में दिखाई गई हैं। पार्श्ववर्ती चामरधर सेवकों के हाथ कभी-कभी कट्यवलम्बित मुद्रा के स्थान पर फल (या सनाल पद्म) से युक्त है।

खजुराहो की ऋषभनाथ की मूर्तियों को यक्ष-यक्षियों के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वर्ग में यक्ष-यक्षी से रहित मूर्तियाँ हैं जिनके कुल चार उदाहरण हैं। दूसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियाँ (दो उदाहरण) हैं जिनमें गोमुख और चक्रेश्वरी के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आकारित हैं। तीसरे वर्ग में पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी की मूर्तियाँ बनीं हैं। खजुराहो में गोमुख और चक्रेश्वरी का अंकन १०वीं शती ई० के मध्य से ही प्रारम्भ हो गया था जिसका एक उदाहरण पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति है। गरुडवाहना (मानव) चक्रेश्वरी अधिकांशतः चतुर्भुज हैं जबकि गोमुख यक्ष का द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही रूपों में निरूपण हुआ है। कुछ उदाहरणों में मूलनायक के चारों ओर २३, २४, ३३ और ५२ जिन मूर्तियाँ भी बनी हैं। चार उदाहरणों में नवग्रहों का भी अंकन हुआ है।

गोमुख और चक्रेश्वरी के निरूपण में मुख्य लक्षणों के सन्दर्भ में दिगम्बर ग्रन्थों के निर्देशों का पालन किया गया है। कुछ उदाहरणों में यक्ष के रूप में धन का थैला धारण करने वाले कुबेर की भी आकृति बनी है। गोमुख यक्ष के साथ कभी-कभी वृषभ वाहन (पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति) भी प्रदर्शित है। गोमुख यक्ष के करों में सामान्यतः अभय (या वरद) मुद्रा, गदा (या परशु), पुस्तक (या पद्म) एवं कलश (या फल) प्रदर्शित हैं। उल्लेखनीय है कि गोमुख के हाथों में पुस्तक और पद्म का प्रदर्शन स्थानीय परम्परा की देन है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी के हाथों में सामान्यतः वरद (या अभय)-मुद्रा, गदा (या चक्र), चक्र एवं शंख हैं। चक्रेश्वरी का निरूपण स्पष्टतः वैष्णवी से प्रभावित है।

पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति में दोनों पार्श्वों में सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग आकृतियों के अतिरिक्त परिकर में ४१ अन्य लघु जिन मूर्तियाँ भी बनी हैं। गोमुख यक्ष वृषभारूढ़ और चतुर्भुज है और उसके दो अवशिष्ट करों में गदा और फल है। गरुड-वाहना चक्रेश्वरी के तीन सुरक्षित करों में वरद, गदा और शंख हैं। इस उदाहरण में सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के साथ भी चतुर्भुज यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ उकेरी हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह के प्रदक्षिणापथ की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति में परिकर में २३ अन्य जिन आकृतियाँ भी हैं जो इस मूर्ति को जिन चौबीसी मूर्ति बना देती हैं। ६ उदाहरणों में द्विभुज यक्ष के हाथों में धन का थैला और फल प्रदर्शित हैं, जो स्पष्टतः कुबेर के लक्षण हैं। तीन उदाहरणों में यद्यपि यक्ष गोमुख नहीं हैं किन्तु हाथों की सामग्री गोमुख यक्ष के ही समान है। साहू शांतिप्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो (के० ७) की मूर्ति (४' ८" × २' २") में तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवशिष्ट हाथों में सर्प, पद्म और धन का थैला प्रदर्शित हैं, जबकि जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति में वरद्-मुद्रा, परशु, श्रीफल और जलपात्र हैं। चक्रेश्वरी के निरूपण में चक्र के बाद गदा और शंख का प्रदर्शन सर्वाधिक लोकप्रिय था।

अजितनाथ

अजितनाथ इस अवसर्पिणी के दूसरे तीर्थंकर हैं। उनका लांछन गज और यक्ष-यक्षी महायक्ष एवं अजितबला (या अजिता या रोहिणी) हैं। खजुराहो में अजितनाथ की कुल चार मूर्तियाँ हैं। ये सभी मूर्तियाँ साहू शांतिप्रसाद जैन कला संग्रहालय (आगे से सा० शा० जै० क० सं०) में हैं। सभी उदाहरणों में गज लांछन उत्कीर्ण है। ल० ११वीं-१२वीं शती ई० की इन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के निरूपण में तनिक भी परम्परा का पालन नहीं हुआ है। एक उदाहरण (के० २२) के अतिरिक्त अन्य सभी में मूलनायक ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। एक उदाहरण में केश-रचना जटा के रूप में प्रदर्शित है। यक्ष और यक्षी की आकृतियाँ केवल एक ही उदाहरण में बनी हैं। सा० शां० जै० क० सं० की एक मूर्ति (के० २२) में राहु और केतु सहित पाँच ग्रहों की भी आकृतियाँ पीठिका पर बनी हैं। यहाँ सूर्य, सोम, मंगल और बुध का अंकन नहीं हुआ है।

सम्भवनाथ

तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ का लांछन अश्व है और उनके यक्ष-यक्षी त्रिमुख और दुरितारि (या प्रज्ञप्ति) हैं। खजुराहो में सम्भवनाथ की पाँच मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ ११वीं-१२वीं शती ई० की हैं और इनमें यक्ष-यक्षी पारम्परिक लक्षणों वाले नहीं हैं। मन्दिर १२ की मूर्ति पर ११५८ ई० का एक लेख भी है। सभी उदाहरणों में मूलनायक ध्यानमुद्रा में आसीन हैं और मूर्ति पीठिकाओं पर अश्व लांछन उत्कीर्ण है। ल० १०वीं शती ई० की एक विशाल मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप के भीतर की उत्तरी दीवार के समीप रखी है। मयूर वाहन वाले चतुर्भुज यक्ष की केश-रचना लम्बी जटा जैसी है और उनके हाथों में फल, पद्म, शूल और पुस्तक हैं। यक्ष स्पष्टतः कार्तिकेय के लक्षणों वाले हैं। उल्लेखनीय है कि दिगम्बर परम्परा में सम्भवनाथ के त्रिमुख यक्ष का वाहन मयूर बताया गया है। सम्भवतः मयूर वाहन के कारण ही यक्ष के साथ यहाँ कार्तिकेय के अन्य लक्षण भी दिखाए गये। जटा-मुकुट से शोभित अश्ववाहना चतुर्भुजा यक्षी के हाथों में अभय-मुद्रा, पद्म, पद्म और कलश प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की इस मूर्ति के अतिरिक्त चार अन्य मूर्तियों में से केवल तीन में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। एक उदाहरण में (सा० शां० जै० क० सं०, क्रमांक के० ५०) सिंहासन के दोनों ओर द्विभुज यक्षियों की आकृतियाँ बनी हैं जिनके एक हाथ में खड्ग है। पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १७१५) की मूर्ति में द्विभुज यक्ष कुबेर हैं और उनके हाथों में कपाल और धन का थैला प्रदर्शित है। द्विभुज यक्षी के एक हाथ में पद्म है जब कि दूसरे से अभय-मुद्रा व्यक्त है। यह मूर्ति लगभग ११वीं शती ई० की है। एक उदाहरण में द्विभुज यक्ष के सुरक्षित बायें हाथ में फल है जबकि यक्षी के करों में अभय-मुद्रा और पद्म प्रदर्शित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनन्दन

अभिनन्दन इस अवसर्पिणी के चौथे तीर्थंकर हैं। उनका लांछन कपि और यक्ष-यक्षी यक्षेश्वर (या ईश्वर) और कालिका (या काली या वज्रशृंखला) हैं। खजुराहो में इनकी कुल दो मूर्तियाँ हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की इन मूर्तियों में अभिनन्दन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और पीठिका पर कपि लांछन भी बना है। एक मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भ-गृह की पश्चिमी भित्ति पर है। इस उदाहरण में द्विभुज यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा और फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। दूसरी मूर्ति (मन्दिर ३) में भी द्विभुज यक्ष-यक्षी अभयमुद्रा और फल से युक्त हैं।

सुमतिनाथ

पाँचवें जिन सुमतिनाथ का लांछन क्रौंच पक्षी है तथा उनके यक्ष-यक्षी तुंबरू और महाकाली (या नरदत्ता) हैं। खजुराहो में सुमतिनाथ की केवल दो ही मूर्तियाँ हैं। पहली मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की उत्तरी भित्ति पर है। दूसरी मूर्ति मन्दिर ३ में है। दोनों ही उदाहरणों में मूलनायक ध्यान-मुद्रा में आसीन हैं और उनके साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं, जिनके हाथों में अभयमुद्रा और फल (या पुष्प) हैं।

पद्मप्रभ

पद्मप्रभ इस अवसर्पिणी के छठे जिन हैं, जिनका लांछन पद्म और यक्ष-यक्षी कुसुम एवं अच्युता (या मनोवेगा) हैं। खजुराहो में पद्मप्रभ की केवल एक ही मूर्ति है। १०वीं शती ई० की यह मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में सुरक्षित है। पद्म लांछन से युक्त इस ध्यानस्थ मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष-यक्षी आकारित हैं जिनके लक्षण परम्परा सम्मत नहीं हैं। परिकर में वीणा-वादन करती सरस्वती तथा जिनों की लघु आकृतियाँ भी बनी हैं।

सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के ७वें जिन हैं जिनका लांछन स्वस्तिक है। सुपार्श्वनाथ के सिर पर एक, पाँच या नौ सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित होते हैं। स्वतन्त्र मूर्तियों में कुछ अप-वादों के अतिरिक्त सुपार्श्वनाथ के साथ स्वस्तिक लांछन का उत्कीर्णन नहीं हुआ है। मूर्तियों में सामान्यतः पाँच या नौ सर्पफणों के छत्र के आधार पर ही सुपार्श्वनाथ की पहचान की गई है। सुपार्श्वनाथ के यक्ष-यक्षी मातंग और शान्ता (या काली) हैं। खजुराहो में ल० १२वीं शती ई० की दो मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ क्रमशः मन्दिर ६ और १३ में हैं। इनमें सुपार्श्वनाथ कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनके सिर के ऊपर पाँच सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। दोनों उदाहरणों में यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं। मन्दिर १३ की मूर्ति में पीठिका पर स्वस्तिक लांछन भी बना है। पीठिका के मध्य में पद्म धारण करने वाली शान्ति देवी की मूर्ति बनी है। सुपार्श्वनाथ से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से देवी के सिर पर सर्पफणों का छत्र भी दिखाया गया है। चतुर्भुज देवी के हाथों में अभय-मुद्रा, चक्राकर सनाल पद्म, पुस्तक-पद्म और जलपात्र हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभ

चन्द्रप्रभ इस अवसर्पिणी के आठवें जिन हैं। इनका लांछन शशि और यक्ष-यक्षी विजय (या श्याम) एवं भृकुटि (या ज्वाला) हैं। खजुराहो में चन्द्रप्रभ की कुल तीन मूर्तियां हैं, जिनमें से एक पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति पर है। दो मूर्तियां (क्रमशः १/१३ एवं १/१५) में हैं। तीनों ही उदाहरणों में चन्द्रप्रभ ध्यान-मुद्रा में आसीन हैं। पार्श्वनाथ मंदिर की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी के हाथों में अभय-मुद्रा (या पद्म) और फल हैं। दूसरे उदाहरण में यक्ष द्विभुज हैं, किन्तु यक्षी चतुर्भुजा हैं। फल और धन के थैले से युक्त यक्ष कुबेर के लक्षणों वाला है। चतुर्भुजा यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पुस्तक और कमण्डलु हैं। इन स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त सा० शां० जै० क० सं० की एक द्वितीर्थी मूर्ति (के० ६०) में भी एक जिन आकृति के नीचे लांछन के रूप में अर्द्धचन्द्र उत्कीर्ण है।

शांतिनाथ

शांतिनाथ इस अवसर्पिणी के १६वें जिन हैं। उनका लांछन मृग और यक्ष-यक्षी, गरुड (या वाराह) एवं निर्वाणी (या महामानसी) हैं। २४ जिनों में ऋषभ, नेमि, पार्श्व और महावीर के बाद शांतिनाथ की ही सर्वाधिक मूर्तियां मिलती हैं। देवगढ़, अहार, बानपुर, चाँदपुर, खजुराहो एवं मध्य भारत के अन्य दिगम्बर स्थलों पर शांतिनाथ का निरूपण विशेष लोकप्रिय रहा है। इन स्थलों पर शांतिनाथ की अतिमानवाकार विशाल मूर्तियां भी बनीं। ये मूर्तियां १२ से १५ फीट ऊँची हैं। खजुराहो में शांतिनाथ की कुल चार मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां ११वीं–१२वीं शती ई० की हैं। दो उदाहरणों में मूलनायक को ध्यानस्थ और दो में कायोत्सर्ग में निरूपित किया गया है। शांतिनाथ मंदिर में शांतिनाथ को १२ फीट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा (१०२८ ई०) प्रतिष्ठित है। चमकदार आलेप से युक्त यह विशाल प्रतिमा मनोज्ञ, एक योगी के गंभीर चिंतन के भाव से युक्त तथा आनुपातिक अंग योजना वाली है। इस विशाल प्रतिमा में शांतिनाथ को सिंहासन के स्थान पर पद्म पर खड़ा दिखाया गया है। इस मूर्ति के दोनों ओर की स्वतंत्र यक्ष-यक्षी मूर्तियां बाद में दीवार में लगाई गई प्रतीत होती हैं। अन्य तीन मूर्तियों में से दो सा० शां० जै० क० और एक जार्डिन संग्रहालयों में हैं। एक उदाहरण (सा० शां० जै० क० सं० के० ३९) के अतिरिक्त अन्य सभी में पार्श्ववर्ती चामरधरों की आकृतियाँ बनी हैं। शांतिनाथ के यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। यक्ष के हाथों में फल और धन का थैला उसके कुबेर होने का संकेत देता है। यक्षी के हाथों में अभय-मुद्रा एवं धनुष प्रदर्शित हैं। मृग लांछन शांतिनाथ मंदिर की प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणों में स्पष्ट है।

कुंथुनाथ

कुंथुनाथ इस अवसर्पिणी के १७वें जिन हैं जिनका लांछन छाग (या बकरा) है और उनके यक्ष-यक्षी गन्धर्व एवं बला (या अच्युता या गांधारी) हैं। खजुराहो में अज लांछन वाले कुंथुनाथ की ल० ११वीं शती ई० की केवल एक मूर्ति है। यह मूर्ति मंदिर–१२ (१२/१) में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरक्षित है। अष्टप्रातिहार्यों से युक्त ध्यानस्थ तीर्थंकर के साथ यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है। सिंहासन के मध्य में जैन युगल की भी एक आकृति बनी है जो निश्चित ही कुंथुनाथ के माता-पिता की मूर्तियां हैं। पीठिका पर सात ग्रहों की भी मूर्तियां हैं।

मुनिसुव्रत

मुनिसुव्रत इस अवसर्पिणी के २०वें जिन हैं। इनका लांछन कूर्म और यक्ष-यक्षी वरुण एवं नरदत्ता (या बहुरूपिणी) हैं। खजुराहो में मुनिसुव्रत की केवल एक ही मूर्ति है। ल० ११वीं शती ई० की इस मूर्ति में पीठिका पर कूर्म लांछन बना है। यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ नहीं बनी हैं।

नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)

नेमिनाथ या अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी के २२ वें तीर्थंकर हैं। द्वारावती के हरिवंशी शासक समुद्रविजय उनके पिता और शिवा देवी उनकी माता हैं। समुद्रविजय के अनुज वसुदेव की दो पत्नियाँ, रोहिणी और देवकी थीं जिनसे बलराम और कृष्ण उत्पन्न हुए। इस प्रकार कृष्ण एवं बलराम नेमिनाथ के चचेरे भाई हुए। नेमिनाथ का बलराम और कृष्ण से जुड़ना ब्राह्मण और जैन धर्मों के बीच सामंजस्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मूर्त अंकनों में भी मथुरा, देवगढ़, कुंभारिया, विमलवसही एव लूणवसही में नेमिनाथ के साथ बलराम और कृष्ण की आकृतियाँ बनी हैं। खजुराहो की मूर्तियों में नेमिनाथ के साथ इस परंपरा का निर्वाह नहीं हुआ है, यद्यपि विष्णु और बलराम की कई स्वतंत्र और शक्ति सहित आलिंगन मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मन्दिर पर हैं।

नेमिनाथ का लांछन शंख है और उनके यक्ष-यक्षी गोमेध एवं अंबिका (या कुष्माण्डी) हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि नेमिनाथ की मूर्तियों में यक्षी के रूप में सर्वदा अंबिका ही निरूपित हैं, पर यक्ष के रूप में त्रिमुख और षड्भुज गोमेध के स्थान पर सर्वानुभूति (या कुबेर) का अंकन हुआ है। खजुराहो में नेमिनाथ की तीन स्वतन्त्र मूर्तियाँ हैं। दो मूर्तियाँ क्रमशः मन्दिर १/१० और १२ में तथा एक सा० शां० जै० क० संग्रहालय (के० १४) में हैं। ११ वीं-१२ वीं शती ई० की ये मूर्तियाँ ध्यानमुद्रा में हैं। मन्दिर—१/१० की मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणों में शंख लांछन स्पष्ट है। मन्दिर—१/१० की मूर्ति में यद्यपि लांछन स्पष्ट नहीं है, किन्तु सिंहासन पर अंबिका की मूर्ति है जिसके आधार पर नेमिनाथ से पहचान सम्भव है। यहाँ अंबिका की गोद में बालक प्रदर्शित है। द्विभुज यक्ष का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में है और बायां जांघ पर स्थित है। पीठिका पर नवग्रहों का भी अंकन हुआ है। सा० शां० जै० क० संग्रहालय (के० १४) की मूर्ति में यक्ष के हाथ में धन का थैला है और द्विभुजा अम्बिका के हाथों में आम्रलुम्बि और बालक हैं। मन्दिर–१/८ की एक त्रितीर्थी जिन मूर्ति में पार्श्वनाथ और महावीर के साथ ही शंख-लांछन से युक्त नेमिनाथ की भी कायोत्सर्ग आकृति बनी है।

पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के २३वें जिन हैं। इन्हें जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक भी माना जाता है। पार्श्वनाथ के चातुर्याम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह) में महावीर ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्र ब्रह्मचर्य को जोड़कर पंचमहाव्रतों का उपदेश दिया था। स्वयं महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के अनुयायी थे। वाराणसी के महाराज अश्वसेन उनके पिता और वामा (या वर्मिला) उनकी माता थीं। पार्श्वनाथ का लांछन सर्प है और उनके यक्ष-यक्षी पार्श्व (या धरण) और पद्मावती हैं। मूर्तियों में यद्यपि पीठिका पर सर्प लांछन का अंकन नहीं हुआ है, किन्तु पार्श्वनाथ के सिर के ऊपर ३ या ७ सर्पफणों का छत्र दिखाया गया है और सर्पफणों के छत्र के आधार पर ही मूर्तियों में पार्श्वनाथ की पहचान की गई है। जैन ग्रन्थों में पार्श्वनाथ के सिर पर तीन, सात या ११ सर्पफणों का वितान मिलता है। अधिकांश उदाहरणों में पार्श्वनाथ के सिर पर सात सर्पफणों का छत्र दिखाया गया है जिसकी परम्परा ई० पू० में ही प्रारम्भ हो गयी थी। जैन परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ को तपस्या में उनके पूर्वजन्म के वैरी मेघमाली नाम के असुर ने तरह-तरह के उपसर्ग उपस्थित किए थे जिनका उद्देश्य तपस्या भंग करना था। अन्त में उसने भयंकर वृष्टि द्वारा पार्श्वनाथ को पूरी तरह जल में डुबो देना चाहा। ऐसे ही क्षणों में पद्मावती एवं वैरोट्या जैसी नाग देवियों के साथ नागराज धरणेन्द्र पार्श्वनाथ के समक्ष उपस्थित हुए। धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ के चरणों के नीचे दीर्घनाल युक्त पद्म की रचना कर उन्हें अपनी कुण्डलियों पर उठा लिया और साथ ही उनके सम्पूर्ण शरीर को ढँककर उनके सिर के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र फैला दिया। पद्मावती ने एक लम्बे वज्रमय छत्र द्वारा शीर्ष भाग में छाया की जिसका छत्र भाग सर्पफणों के ऊपर प्रदर्शित हुआ।[1] उपर्युक्त परंपरा के कारण ही पार्श्वनाथ की मूर्तियों में सिर पर सात सर्पफणों का छत्र और दोनों ओर सर्पफणों वाले धरणेन्द्र और पद्मावती की आकृतियां बनीं। मूर्तियों में पद्मावती के हाथों में सामान्यतः एक लंबा छत्र दिखाया गया है। दोनों पार्श्वों में धरणेन्द्र-पद्मावती की उपर्युक्त मूर्तियों के कारण ही सिंहासन छोरों पर अधिकांशतः उनका अंकन नहीं हुआ है। दिगम्बर ग्रंथों में धरणेन्द्र यक्ष चतुर्भुज और सर्पफणों के छत्र सहित निरूपित है। यक्ष का वाहन कूर्म है और उनके दो हाथों में सर्प तथा अन्य में नागपाश एवं वरदमुद्रा हैं।[2] ग्रंथों में पद्म (या कुक्कुटसर्प) वाहना पद्मावती के चतुर्भुज, षड्भुज एवं चतुर्विंशतिभुज रूपों का ध्यान किया गया है और उसके हाथों में मुख्यतः पाश, अंकुश, पद्म, आदि के प्रदर्शन का विधान किया गया है।[3]

खजुराहो में पार्श्वनाथ की लगभग २० मूर्तियां हैं जिनमें से केवल ११ ही अध्ययन की दृष्टि से पूर्णतः सुरक्षित हैं। इस मूर्ति संख्या में अन्य जिनों के साथ उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की मूर्तियां नहीं सम्मिलित हैं। खजुराहो में ऋषभनाथ के बाद पार्श्वनाथ की ही सर्वाधिक मूर्तियां बनीं। ये मूर्तियां १०वीं–१२वीं शती ई० के मध्य की हैं। अधिकांश उदाहरणों में पार्श्वनाथ को कायोत्सर्ग-मुद्रा में दिखलाया गया है। खजुराहो की सभी मूर्तियां सात सर्पफणों के छत्र

१. **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र**, गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२ खण्ड–५, पृ० ३९४–९६, **पार्श्वनाथ चरित्र** ६.१९२–९३; **उत्तरपुराण** ७३.१३९–४०।

२. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५१, **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६७, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२३।

३. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६७–७१, **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७४, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाली हैं। कभी-कभी मूलनायक के सिर से चरणों तक सर्प की कुंडलियां फैली हुई दिखाई गई हैं। किसी भी उदाहरण में सर्प लांछन नहीं बना है। पार्श्वनाथ के साथ प्रभामण्डल के अतिरिक्त अन्य सभी प्रातिहार्य बने हैं। शीर्ष भाग के सर्पफणों के कारण ही प्रभामण्डल नहीं दिखाया गया है। तीन ध्यानस्थ मूर्तियों में मूलनायक सर्प की कुण्डलियों से बने आसन पर विराजमान हैं, जब कि सा० शां० जै० क० संग्रहालय (के० १००) की मूर्ति में पद्मासन के नीचे सर्प की कुण्डलियां उत्कीर्ण हैं। ६ कायोत्सर्ग मूर्तियों में से केवल एक में और पांच ध्यानस्थ मूर्तियों में से केवल तीन में ही सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी की आकृतियां बनीं हैं। अन्य उदाहरणों में पार्श्वनाथ के समीप ही नागफणों के छत्र वाले चामरधारी धरणेन्द्र और छत्रधारिणी पद्मावती की स्थानक मूर्तियाँ उकेरी हैं। दो उदाहरणों (मंदिर १/१, जार्डिन संग्रहालय–१६६८) में शीर्षभाग में त्रिछत्र के स्थान पर केवल पद्मावती द्वारा धारण किया हुआ छत्र ही दिखलाया गया है। इन दोनों ही मनोज्ञ उदाहरणों में चामरधारी धरणेन्द्र और छत्रधारिणी पद्मावती की मूर्तियाँ उकेरी हैं। मन्दिर १/१ की मूर्ति में परिकर में बाहुबली की आकृति भी उकेरी है। पार्श्वों में धरणेन्द्र और पद्मावती के निरूपण के कारण कभी-कभी सामान्य चामरधारी सेवकों की आकृतियाँ नहीं बनाई गई हैं। सा० शां० जै० क० संग्रहालय (के० ९) की एक खड्गासन मूर्ति में पीठिका पर चार ग्रहों तथा चामर और पद्म से युक्त सेवकों की आकृतियाँ बनीं हैं। सा० शा० जै० क० संग्रहालय की ही एक दूसरी कायोत्सर्ग मूर्ति में सिंहासन के बायें छोर पर चतुर्भुज यक्ष आकृति उत्कीर्ण है जिसके दो अवशिष्ट करों में पद्म और फल हैं। द्विभुजा यक्षी के सिर पर तीन सर्पफणों का छत्र है और उसकी एक भुजा में पद्म प्रदर्शित है।

कायोत्सर्ग मूर्तियों की अपेक्षा पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ मूर्तियाँ कुछ बाद में बननी प्रारंभ हुई। कायोत्सर्ग मूर्ति पार्श्वनाथ की तपस्या की स्थिति को प्रकट करती है जबकि ध्यानस्थ मूर्ति कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् की स्थिति को। सम्भवतः इसी कारण ध्यानस्थ मूर्तियों में सिंहासन छोरों पर यक्ष और यक्षी का अंकन अधिक लोकप्रिय था। ज्ञातव्य है कि शासनदेवताओं के रूप में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की नियुक्ति इन्द्र ने कैवल्य प्राप्ति के बाद ही की थी। पुरातात्त्विक संग्रहालय, ख़जुराहो की एक मूर्ति (क्रमांक १६१८, ११वीं शती ई०) में सर्पफणों के छत्रवाली यक्ष आकृति नमस्कारमुद्रा में है जबकि द्विभुजा यक्षी के बायें हाथ में फल प्रदर्शित है। सा० शा० जै० क० संग्रहालय की ११ वीं शती ई० की एक मूर्ति (के० १००) में सर्पफणों के छत्र वाले यक्ष-यक्षी क्रमशः द्विभुज और चतुर्भुज हैं। यक्ष के दो हाथों में फल और जलपात्र हैं जबकि चतुर्भुजा यक्षी के अवशिष्ट दक्षिण करों में पद्म और अभय-मुद्रा हैं। सा० शां० जै० क० संग्रहालय की १२ वीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (के० ६८) में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज और पाँच सर्पफणों के छत्र वाले हैं। ध्यानमुद्रा में आसीन यक्षी के तीन हाथों में अभय-मुद्रा, सर्प और जलपात्र स्पष्ट हैं। दाहिने पार्श्व की ललितासीन यक्ष आकृति के हाथों में अभयमुद्रा, शक्ति, सर्प और जलपात्र हैं। परिकर में २० अन्य छोटी जिन मूर्तियाँ भी बनी हैं। यह मूर्ति प्रतिमालक्षण की दृष्टि से अत्यन्त विकसित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो में पार्श्वनाथ के यक्ष-यक्षी का स्वरूप पूरी तरह उपलब्ध परम्परा से मेल नहीं खाता। साथ ही उनके मूर्ति लक्षणों में एकरूपता भी नहीं दृष्टिगत होती।

महावीर

महावीर या वर्धमान इस अवसर्पिणी के अन्तिम जिन हैं। सिद्धार्थ उनके पिता और त्रिशला उनकी माता थीं। महावीर बुद्ध के समकालीन और एक ऐतिहासिक पुरुष थे। महावीर का जन्म ५९९ ई० पू० और निर्वाण ल० ५२७ ई० पू० में हुआ। पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित जैन धर्म को महावीर ने और आगे बढ़ाया। महावीर का लांछन सिंह और यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका हैं। यह आश्चर्य की बात है कि वर्तमान अवसर्पिणी का अन्तिम जिन होने के बाद भी महावीर की मूर्तियाँ ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की तुलना में कम हैं। खजुराहो में भी ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की अपेक्षा महावीर की कम मूर्तियाँ हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में मस्तक पर धर्मचक्र से चिह्नित द्विभुज मातंग को गजारूढ़ बताया गया है। मातंग का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में होगा जबकि बायें में मातुलिंग होगा।[1] द्विभुजा सिद्धायिका सिंहवाहना है और उसके हाथों में वरदमुद्रा और पुस्तक प्रदर्शित हैं।[2]

खजुराहो में महावीर की नौ मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ १०वीं से १२वीं शती ई० के मध्य की हैं। सबसे प्राचीन मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर है। आठ उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। कायोत्सर्ग मूर्ति मन्दिर–१६ में है। यक्ष-यक्षी युगलों का अंकन केवल ६ मूर्तियों में हुआ किन्तु सिंह लांछन सभी उदाहरणों में बना है। खजुराहो की महावीर मूर्तियों की एक विशेषता यह है कि इनमें अधिकांश उदाहरणों में सिंह लांछन को सिंहासन के मध्य से बाहर की ओर झाँकते हुए दिखलाया गया है। इन मूर्तियों में सिंह की पूरी आकृति के स्थान पर केवल समक्ष भाग ही दिखलाया गया है। यद्यपि महावीर के साथ यक्ष-यक्षी का निरूपण १०वीं शती ई० में प्रारम्भ हो गया, किन्तु स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी ११वीं शती ई० में ही निरूपित हुए। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। इनके हाथों में अभयमुद्रा और फल प्रदर्शित हैं। मन्दिर–७ (१०९१ ई०) की मूर्ति में महावीर के यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। यक्ष का वाहन सिंह है और उसके हाथों में धन का थैला, शूल, पद्म और दण्ड प्रदर्शित हैं। सिंहवाहना यक्षी के हाथों में फल, चक्र, पद्म और शंख हैं। अन्य उदाहरणों में भी यक्ष और यक्षी दोनों के साथ सिंह वाहन की आकृति उत्कीर्ण है। यद्यपि यक्ष के हाथों में आयुध परिवर्तित होते रहे हैं, किन्तु यक्षी के हाथों में अधिकांश उदाहरणों में चक्र और शंख प्रदर्शित हैं। एक उदाहरण में (सा० शां० जै० क० संग्रहालय; के १३) चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है और उसके हाथों में अभय-मुद्रा, परशु, पुस्तक और फल हैं। एक अन्य मूर्ति में सिंह पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के तीन हाथों में गदा, पद्म और धन का थैला स्पष्ट हैं। एक दूसरी मूर्ति (सा० शां० जै० क० संग्रहालय, २३१) में मातंग द्विभुज तथा मेष वाहन वाले है। उनके एक हाथ में शक्ति है, जबकि दूसरा

१. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.७२-७३; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५२; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२४।

२. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.७३-७४; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७८; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ नीचे लटक रहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो में मातंग यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप नियत नहीं हो सका। साथ ही ये मूर्तियाँ उपलब्ध शास्त्रीय विवरण से भी मेल नहीं खाती हैं। यद्यपि सिद्धायिका के निरूपण में भी दिगम्बर परम्परा का पालन नहीं हुआ है किन्तु उसके स्वतन्त्र स्वरूप के निर्धारण की चेष्टा अवश्य की गयी है। सिद्धायिका के निरूपण में चक्र एवं शंख जैसे आयुधों का प्रदर्शन चक्रेश्वरी या वैष्णवी का प्रभाव दर्शाता है।

द्वितीर्थी जिन मूर्ति

द्वितीर्थी या त्रितीर्थी जिन मूर्तियों से आशय ऐसी मूर्तियों से है, जिनमें दो या तीन जिनों को एक साथ दिखलाया गया है। जैन ग्रन्थों में हमें यद्यपि इस प्रकार की मूर्तियों के उल्लेख नहीं मिलते किन्तु ९ वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य सभी क्षेत्रों में, विशेषतः उत्तर भारत के दिगम्बर स्थलों (देवगढ़, खजुराहो) पर ऐसी मूर्तियों के अनेक उदाहरण हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ खजुराहो और देवगढ़ में हैं। इस वर्ग में ऐसी मूर्तियों को नहीं रखा गया है, जिनमें ध्यानस्थ तीर्थंकर के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियाँ बनी हैं जैसे पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति। वस्तुतः इस वर्ग में केवल उन्हीं मूर्तियों को रखा गया है, जिनमें समान विवरणों वाली दो या तीन जिनों की मूर्तियां एक साथ और एक ही मुद्रा में बनी हैं। इन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ अलग-अलग अष्टप्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी युगल एवं इसी प्रकार अन्य आकृतियां प्रदर्शित की गई हैं। द्वितीर्थी और त्रितीर्थी मूर्तियों में या तो एक ही जिन की या फिर अलग-अलग जिनों की दो या तीन मूर्तियां बनी हैं। अलग-अलग जिनों वाली मूर्तियों का उद्देश्य निश्चितरूप से विभिन्न जिनों को एक साथ और समान प्रतिष्ठा के साथ निरूपित करना रहा है। इस प्रकार इन मूर्तियों को जैन संघाट या संयुक्त मूर्तियों की कोटि में भी रखा जा सकता है।

खजुराहो में द्वितीर्थी मूर्तियों के ९ उदाहरण हैं। एक मूर्ति शांतिनाथ मंदिर के अहाते में और शेष खजुराहो के ही सा० शां० जै० क० एवं पुरातात्त्विक संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। १०वीं से १२वीं शती ई० के मध्य की इन मूर्तियों में अष्टप्रातिहार्य प्रदर्शित हैं। शांतिनाथ मंदिर के अहाते की मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी भी उदाहरण में लांछन नहीं दिखाया गया है। शांतिनाथ मंदिर की मूर्ति में भी केवल एक ही जिन के आसन पर गज लांछन (अजितनाथ) स्पष्ट है। सभी उदाहरणों में जिन कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं। जिन मूर्तियों में अलग-अलग लांछनों के अंकन की परंपरा के बाद भी द्वितीर्थी मूर्तियों में लांछनों का न उत्कीर्ण किया जाना आश्चर्यजनक है। आठ उदाहरणों में जिनों के साथ द्विभुज या चतुर्भुज यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। द्वितीर्थी मूर्तियों में दोनों जिनों के साथ समान लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी का निरूपण हुआ है। द्विभुज यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या पद्म) और जलपात्र (या फल) प्रदर्शित हैं। ५ उदाहरणों में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं और उनके हाथों में अभयमुद्रा, पद्म (या शक्ति), पद्म (या पद्म से लिपटी पुस्तिका) एवं फल (या जलपात्र) हैं। इन मूर्तियों के परिकर में कभी-कभी छोटी जिन आकृतियां भी बनी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रितीर्थी जिन मूर्ति

खजुराहो में केवल एक ही त्रितीर्थी जिन मूर्ति है। लगभग ११वीं शती ई० की यह मूर्ति मंदिर १५ में है। इस मूर्ति में नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की कायोत्सर्ग मूर्तियां बनी हैं। नेमिनाथ और महावीर को सिंहासन के स्थान पर सामान्य पीठिका पर क्रमशः शंख और सिंह लांछन के साथ उत्कीर्ण किया गया है। पार्श्वनाथ के सिर पर सात सर्पफणों का छत्र है। सिंहासन के अतिरिक्त अन्य सभी प्रातिहार्य तीनों ही जिनों के साथ उत्कीर्ण हैं।

जिन चौमुखी या प्रतिमा सर्वतोभद्रिका

प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र प्रतिमा का अर्थ ऐसी प्रतिमा है जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है। ऐसी मूर्तियों को जिन चौमुखी या चतुर्मुख भी कहा गया है।[1] जिन चौमुखी मूर्तियों में एक ही शिलाखंड में चारों ओर चार जिन मूर्तियाँ बनी होती हैं। पहली शती ई० में मथुरा में इनका निर्माण प्रारम्भ हुआ। कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियों में चारों दिशाओं में चार अलग-अलग जिनों की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ल० ७ वीं-८ वीं शती ई० में ऐसी चौमुखी मूर्तियों का अंकन भी प्रारम्भ हुआ जिनमें चारों ओर एक ही जिन की चार आकृतियां बनी हैं। ऐसी मूर्तियों में सामान्यतः जिनों के लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग की १०२३ ई० की एक मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है। पीठिका लेख में इस मूर्ति को वर्धमान (महावीर) का चतुर्बिम्ब कहा गया है। जिन चौमुखी मूर्तियों में अधिकांशतः कुषाण कालीन मूर्तियों की विशेषताओं को ही प्रदर्शित किया गया है। २४ जिनों के लांछनों के निर्धारण के बाद भी चार में से केवल दो ही जिनों के साथ क्रमशः जटाओं (ऋषभनाथ) और सिर पर सात सर्पफणों के छत्र (पार्श्वनाथ) के प्रदर्शन की कुषाण कालीन परम्परा प्रचलित रही। ल० आठवीं-नवीं शती ई० में चौमुखी मूर्तियों में परिकर में लघु जिन आकृतियों, प्रातिहार्यों और कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलों और नवग्रहों को भी दिखाया जाने लगा। साथ ही चौमुखी मूर्तियों का शीर्षभाग छोटे जिनालयों के रूप में भी बनने लगा जिनमें ऊपर की ओर आमलक और कलश भी उत्कीर्ण हुए। चतुर्मुख जिनालय के प्रमुख उदाहरण पहाड़पुर (बंगाल, ल० ९ वीं शती ई०) और गुना (मध्य प्रदेश, ११ वीं शती ई०) में हैं।

खजुराहो में चौमुखी मूर्ति का केवल एक ही उदाहरण है जो स्थानीय पुरातात्त्विक संग्रहालय (क्रमांक १५८८) में है। इस चौमुखी मूर्ति में चारों ओर जिनों की चार ध्यानस्थ मूर्तियाँ बनीं हैं। अष्टप्रातिहार्यों से युक्त चार जिनों में से केवल दो की पहचान जटाओं और सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर क्रमशः ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ से सम्भव है। इस प्रकार यह चौमुखी स्पष्टतः मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियों के अनुकरण पर बनी है। प्रत्येक जिन के साथ परिकर में १२ लघु जिन आकृतियाँ बनी हैं। इस प्रकार चार

---

१. **एपिग्राफिया इण्डिका,** खं० २, पृ० २०२–०३, २१०, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पूर्वनिर्दिष्ट,** पृ० ४८; अग्रवाल, वी० एस०, **पूर्वनिर्दिष्ट,** पृ० २७, दे, सुधीन, "चौमुख ए सिम्बालिक जैन आर्ट", **जैन जर्नल,** खं० ६, अं० १, पृ० २७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य जिनों सहित परिकर की ४८ छोटी जिन आकृतियों को मिलाकर इस चौमुखी में कुल ५२ जिन आकृतियाँ हैं। चौमुखी की ५२ जिन मूर्तियाँ नन्दीश्वर पट्ट पर ५२ जिनालयों या जिन आकृतियों के अंकन की परम्परा से प्रभावित प्रतीत होती हैं।[1] चौमुखी मूर्ति का ऊपरी भाग मन्दिर के शिखर के रूप में निर्मित है।

जीवन-दृश्य

१०वीं-१२वीं शती ई० के मध्य श्वेताम्बर स्थलों पर विभिन्न जिनों के पंच-कल्याणकों एवं जीवन की कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का अंकन विशेष लोकप्रिय था। ओसियाँ, कुंभारिया और दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों में ऋषभनाथ, शांतिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के जीवन से सम्बन्धित पर्याप्त दृश्यांकन हैं, किन्तु दिगम्बर स्थलों पर पता नहीं किन कारणों से जिनों के जीवन की घटनाओं के अंकन के उदाहरण नहीं मिलते। मथुरा, देवगढ़ और खजुराहो जैसे समृद्ध जैन पुरास्थलों पर भी केवल जिनों के जन्म या दीक्षा अभिषेक से सम्बन्धित एकाध दृश्य ही उत्कीर्ण हैं। खजुराहो का अकेला उदाहरण मन्दिर–४ के उत्तरंग पर है, जिसमें किसी जिन के दीक्षा-कल्याणक का प्रसंग दर्शाया गया है। फलक के दाहिने छोर पर ध्यानमुद्रा में एक जिन आकृति बनी है जिसके समीप ही दो पुरुष आकृतियाँ खड़ी हैं जिनमें से एक के हाथ की सामग्री वस्त्र जैसी है। समीप ही सात अन्य आकृतियाँ घट और माला के साथ खड़ी हैं; एक आकृति शंख भी बजा रही है।

---

१. शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, पृ० १२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–५

यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ

सामान्य विकास

जैन देवकुल में २४ जिनों के पश्चात् उनके यक्ष-यक्षियों को ही सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। जिनों के साथ और स्वतंत्र रूप में इनका अनेकशः अंकन हुआ है। जैन ग्रंथों में इनका यक्ष और यक्षियों के अतिरिक्त जिनों के शासन तथा उपासक देवों के रूप में भी उल्लेख हुआ है।[1] प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गयी जो उनके चतुर्विध संघ के शासक और रक्षक देव होते हैं। जैन मान्यता के अनुसार समवसरण में जिनों के धर्मोपदेश के पश्चात् इन्द्र ने प्रत्येक जिन के साथ सेवक देवों के रूप में एक यक्ष और एक यक्षी को नियुक्त किया। शासनदेवताओं के रूप में सर्वदा जिनों के समीप रहने के कारण ही जैन देवकुल में जिनों के बाद यक्ष और यक्षियों को सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। जिन मूर्तियों में यक्ष और यक्षी सिंहासन या पीठिका के क्रमशः दाहिने ओर बायें छोरों पर निरूपित हैं। इन्हें अधिकांशतः ललितमुद्रा में दिखाया गया है। ल० छठी शती ई० में जिन मूर्तियों में और ल० नवीं शती ई० में स्वतंत्र मूर्तियों के रूप में यक्ष-यक्षियों का अंकन प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्र मूर्तियों में यक्ष और यक्षियों के शीर्ष भाग में छोटी जिन आकृतियाँ भी बनी हैं जिनसे जिनों की यक्ष-यक्षियों पर श्रेष्ठता और साथ ही उनके जैन देवकुल से संबधित होने का भाव व्यक्त किया गया है। २४ यक्ष एवं यक्षियों की सूची में अधिकांश के नाम एवं उनकी लाक्षणिक विशेषतायें ब्राह्मण और कुछ उदाहरणों में बौद्ध देवकुल के देवताओं से प्रभावित हैं। जैन धर्म में ब्राह्मण देवकुल के विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, स्कन्दकार्त्तिकेय, काली, गौरी, सरस्वती, चामुण्डा और बौद्ध देवकुल की तारा, वज्रशृंखला, वज्रतारा एवं वज्रांकुशी के नामों और लक्षणों को ग्रहण किया गया।[2] ऋषभनाथ के यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं जो शैव एवं वैष्णव धर्मों के प्रतिनिधि देवताओं शिव और वैष्णवी से संबंधित प्रतीत होते हैं।

---

१. प्रशासनाः शासनदेवताश्च या जिनांश्चतुर्विंशतिमाश्रिताः सदा।
हिताः सतामप्रतिचक्रयान्विताः प्रयाचिताः सन्निहिता भवन्तु ताः॥
हरिवंशपुराण ६६. ४३–४४

२. शाह, यू० पी०, "इन्ट्रोडक्शन आफ शासनदेवताज इन जैन वर्शिप", **प्रोसीडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शंस आफ ओरियन्टल कान्फ्रेंस**, बीसवाँ अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्टूबर १९६८, पृ० १५१–५२; बनर्जी, जे० एन०, **दि डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६१–६३; भट्टाचार्य, बी०, **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकनोग्राफी**, कलकत्ता, १९६८, पृ० ५६, २३५, २४०, २४२, २९७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन ग्रंथों में ल० छठी-सातवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी युगल के रूप में सर्वप्रथम सर्वानुभूति (सर्वाह्न या यक्षेश्वर) और अंबिका का उल्लेख हुआ है। यही यक्ष-यक्षी युगल मूर्तियों में सबसे पहले निरूपित हुए। मूर्त अंकनों में भी सर्वत्र यही युगल सबसे अधिक लोकप्रिय थे। ल० छठी से नवीं शती ई० के मध्य की मूर्तियों में सभी जिनों के साथ यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अंबिका ही निरूपित हैं। **हरिवंश पुराण** (७८३ ई०) और **महापुराण** (९६० ई०) में सिंहवाहिनी अंबिका तथा अप्रतिचक्रा एवं सिद्धायिका आदि यक्षियों के नामोल्लेख हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० में यद्यपि चौबीस यक्ष और यक्षियों के नामों की सूची बनी[1] किन्तु उनके स्वतंत्र लक्षण ११वीं-१२वीं शती ई० में ही निर्धारित हुए।[2] शिल्प में ल० १०वीं शती ई० में ऋषभनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति और अंबिका के स्थान पर पारंपरिक या स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण प्रारंभ हुआ। अधिकांश उदाहरणों में ऋषभनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के साथ गोमुख-चक्रेश्वरी, सर्वानुभूति-अंबिका एवं धरणेन्द्र-पद्मावती का अंकन हुआ है। देवगढ़ और खजुराहो की कुछ मूर्तियों में महावीर के साथ स्वतंत्र लक्षणों वाले मातंग और सिद्धायिका की आकृतियाँ बनी हैं। स्वतंत्र मूर्तियों में भी गोमुख-चक्रेश्वरी एवं सर्वाह्न (या सर्वानुभूति या कुबेर)–अंबिका की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। यक्षों की अपेक्षा यक्षियों की मूर्तियाँ अधिक हैं जो संभवतः जैन धर्म में शक्ति उपासना के विशेष प्रभावी होने का संकेत है। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के तीन उदाहरण मिलते हैं, पर यक्षों के सामूहिक अंकन का प्रयास नहीं किया गया। २४ यक्षियों की सामूहिक मूर्तियाँ देवगढ़ (ललितपुर, उ०प्र० मंदिर–१२, ८६२ ई०), पतियानदाई (अंबिका मूर्ति, सतना, मध्य प्रदेश, ११वीं शती ई०) एवं बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, पुरी, उड़ीसा, ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) में हैं।

खजुराहो की यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ : सामान्य निरूपण

खजुराहो में जिनों के पश्चात् यक्ष और यक्षियों की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। जिन मूर्तियों के सिंहासन छोरों पर अंकन के साथ ही इनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ भी बनीं। स्वतंत्र मूर्तियों में इन्हें सामान्यतः ललितमुद्रा में और शीर्ष भाग में एक छोटी जिन आकृति के साथ दिखाया गया। खजुराहो में सभी २४ यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ नहीं हैं। सामान्यतः इनके निरूपण में, विशेषतः विशिष्ट लक्षणों के सन्दर्भ में, उपलब्ध दिगम्बर ग्रंथों के निर्देशों का पालन हुआ है। किन्तु स्वतंत्र लक्षणों वाली यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ भी हैं जो किसी स्थानीय परंपरा से निर्देशित प्रतीत होती हैं। यक्षों की अपेक्षा यक्षियों की मूर्तियाँ अधिक हैं और उनके निरूपण में स्वरूपगत वैविध्य भी दृष्टिगत होता है। यक्षों में केवल सर्वानुभूति (या कुबेर) की ही स्वतंत्र मूर्तियाँ मिली हैं। ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ के गोमुख और धरणेन्द्र यक्षों का निरूपण केवल जिनसंयुक्त मूर्तियों में ही हुआ है। दूसरी ओर यक्षियों में जैन धर्म के चारों प्रमुख जिनों,

---

१. **तिलोयपण्णत्ति** ४. ९३४–३९; **प्रवचनसारोद्धार** ३७५–७८।

२. **निर्वाणकलिका** (ल० ११वीं शती ई०); **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (१२वीं शती ई०); **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (१२वीं शती ई०); **प्रतिष्ठासारोद्धार** एवं **प्रतिष्ठातिलकम्**।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर) की यक्षियों की स्वतंत्र मूर्तियाँ मिलती हैं। ये यक्षियाँ क्रमशः चक्रेश्वरी, अंबिका, पद्मावती और सिद्धायिका हैं। पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो में मनोवेगा यक्षी की भी एक मूर्ति है।

खजुराहो में अजितनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्तियों में कभी-कभी यक्ष और यक्षी आकृतियों के स्थान पर पीठिका छोरों पर लघु जिन आकृतियाँ बनी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि खजुराहो का कलाकार केवल ऋषभनाथ के गोमुख-चक्रेश्वरी, नेमिनाथ के कुबेर-अंबिका और पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र-पद्मावती के ही पारंपरिक स्वरूपों से परिचित था। महावीर की मूर्तियों में यद्यपि मातंग और सिद्धायिका स्वतंत्र लक्षणों वाले हैं किन्तु उनका स्वरूप न तो परंपरासम्मत है और न ही किसी स्थानीय परंपरा के आधार पर निर्धारित। सिद्धायिका के रूप में वैष्णवी के लक्षणों वाली देवी निरूपित हैं। अब हम खजुराहो की स्वतंत्र मूर्तियों के आधार पर सर्वानुभूति यक्ष तथा चक्रेश्वरी, मनोवेगा, अंबिका, पद्मावती और सिद्धायिका यक्षियों की मूर्तियों का अध्ययन करेंगे।

सर्वाह्न या सर्वानुभूति (या कुबेर) यक्ष

सर्वानुभूति या कुबेर २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के यक्ष हैं।[1] यहाँ उल्लेखनीय है कि मूर्तियों में परंपरा के अनुरूप नेमिनाथ के साथ नर पर आरूढ़ त्रिमुख गोमेध यक्ष के स्थान पर सर्वदा धन के थैले से युक्त गजारूढ़ सर्वानुभूति यक्ष को ही आमूर्तित किया गया है। सर्वानुभूति के हाथ में धन के थैले (नकुलक) का प्रदर्शन सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय था, पर गजवाहन एवं करों में पाश एवं अंकुश केवल श्वेताम्बर स्थलों पर ही दृष्टिगत होते हैं। ल० छठी शती ई० में सर्वानुभूति की मूर्तियाँ बननी प्रारंभ हुईं।[2]

खजुराहो में सर्वानुभूति की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ हैं। सर्वानुभूति निःसन्देह खजुराहो में सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष था। यही कारण है कि पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी तीर्थंकरों के साथ या तो द्विभुज सर्वानुभूति की आकृति बनी है या फिर उन पर सर्वानुभूति के लक्षणों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ऋषभनाथ तथा महावीर की मूर्तियों में भी यक्ष निधि के थैले से युक्त हैं जो सर्वानुभूति का ही प्रभाव दर्शाते हैं। जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो की शान्तिनाथ एवं पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो की संभवनाथ (क्रमांक १७१५) मूर्तियों में भी यक्ष के रूप में फल और निधि-थैले से युक्त सर्वानुभूति ही आकारित हैं।

---

१. नेमिनाथ के यक्ष को त्रिमुख एवं षड्भुज तथा गोमेध संज्ञा और नर या पुष्प वाहन वाला बताया गया है। गोमेध के हाथों में मुद्गर, परशु, दण्ड, फल, धन, वज्र एवं वरद-मुद्रा का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रन्थों में कुबेर १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के यक्ष के रूप में निरूपित हैं।

प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५०; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२२

२. तिवारी, मारुति नन्दनप्रसाद, **जैन प्रतिमाविज्ञान**, वाराणसी, १९८१, पृ० २१८–२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो में सर्वानुभूति की कुल चार स्वतन्त्र मूर्तियाँ (१०वीं-११वीं शती ई०) हैं। इनमें चतुर्भुज सर्वानुभूति ललितमुद्रा में विराजमान हैं। शांतिनाथ मंदिर एवं मन्दिर ४ की दो मूर्तियों में सर्वानुभूति के ऊपरी करों में पद्म और निचले में फल और निधि-थैला हैं। अन्य दो मूर्तियाँ शांतिनाथ मंदिर के समीप के स्तंभों पर उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण में तीन सुरक्षित हाथों में अभयमुद्रा, पद्म एवं निधि-थैला प्रदर्शित है। चरणों के समीप दो घट भी उत्कीर्ण हैं जो संभवतः निधि-पात्र हैं। नेमिनाथ की जिन-संयुक्त मूर्तियों में द्विभुज यक्ष के दाहिने हाथ से या तो अभयमुद्रा व्यक्त है या फिर फल प्रदर्शित है और बायें हाथ में निधि-थैला दिखाया गया है। खजुराहो की मूर्तियाँ मूर्तिलक्षण की दृष्टि से अन्य दिगम्बर स्थलों की मूर्तियों के समान हैं।

चक्रेश्वरी यक्षी

चक्रेश्वरी ऋषभनाथ की यक्षी है। दिगम्बर ग्रन्थों में उसके केवल चतुर्भुज और द्वादशभुज स्वरूपों का ध्यान किया गया है। चतुर्भुज स्वरूप में यक्षी के दो हाथों में चक्र और शेष में मातुलिंग और वरद-मुद्रा के उल्लेख हैं। द्वादशभुजी यक्षी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और अन्य दो में मातुलिंग और वरदमुद्रा के प्रदर्शन का विधान है।[1]

खजुराहो में अंबिका के बाद चक्रेश्वरी की ही सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियाँ हैं। गरुड-वाहना (मानव रूप में) चक्रेश्वरी सामान्यतः किरीटमुकुट से सज्जित हैं। खजुराहो में चक्रेश्वरी की द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज और दशभुज मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार चक्रेश्वरी के निरूपण में स्वरूपगत विविधता स्पष्ट है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि किसी स्थानीय परंपरा के अन्तर्गत विभिन्न रूपों में यक्षी का अंकन हुआ। मूर्तियों में गरुडवाहन तथा चक्र का प्रदर्शन परंपरासम्मत है, किन्तु करों में शंख और गदा का प्रदर्शन वैष्णवी का प्रभाव है।

खजुराहो में चक्रेश्वरी की १०वीं से १२वीं शती ई० की ३२ जिनसंयुक्त मूर्तियाँ हैं। ऋषभनाथ के साथ यद्यपि कभी-कभी यक्ष वृषानन नहीं भी है, किन्तु यक्षी सदा चक्रेश्वरी ही है। केवल दो उदाहरणों में यक्षी द्विभुजा हैं और उसके हाथों में अभयमुद्रा और चक्र हैं। अन्य सभी उदाहरणों में यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में सामान्यतः अभयमुद्रा, गदा (या पद्म), चक्र एवं शंख हैं। खजुराहो में चक्रेश्वरी की १३ स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी हैं जिनमें से नौ उत्तरंगों पर हैं। इनमें चक्रेश्वरी चार से १० हाथों वाली हैं। पार्श्वनाथ, घण्टई एवं आदिनाथ मंदिरों के ललाटबिम्ब में चक्रेश्वरी की आकृति बनी है। खजुराहो में १०वीं शती ई० में ही चक्रेश्वरी की आठ और १० हाथों वाली मूर्तियाँ बनीं जो प्रतिमालक्षण की दृष्टि से चक्रेश्वरी मूर्तियों के तीव्र विकास को स्पष्ट करती

१. वामे चक्रेश्वरीदेवी स्थाप्यद्वादशसद्भुजा।
धत्ते हस्तद्वयेवज्रे चक्राणि च तथाष्टसु॥
एकेन बीजपूरं तु वरदा कमलासना।
चतुर्भुजाथवा चक्रं द्वयोर्गरुडवाहनम्॥
प्रतिष्ठासारसंग्रह ५. १५–१६; प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। घण्टई मंदिर के ललाटबिम्ब की अष्टभुजा चक्रेश्वरी के हाथों में फल, घण्टा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र, धनुष और कलश हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के ललाटबिम्ब की दशभुजा चक्रेश्वरी के दो हाथों में चक्र और शेष में वरदमुद्रा, खड्ग, गदा, पद्म, कार्मुक, फलक, गदा और शंख हैं। मन्दिर १/१४ के उत्तरंग की षड्भुजी मूर्ति (११वीं शती ई०) में चक्रेश्वरी के चार हाथों में चक्र और दो में वरदमुद्रा और शंख हैं। १०वीं–११वीं शती ई० के अन्य ६ उदाहरणों में चक्रेश्वरी चतुर्भुजा हैं और उसके हाथों में अभय (या वरद)–मुद्रा, गदा, चक्र और शंख हैं।

उत्तरंगों के अतिरिक्त चार अन्य स्वतन्त्र मूर्तियाँ (११वीं शती ई०) भी हैं। इनमें से एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य में यक्षी चतुर्भुजा हैं। षड्भुजी मूर्ति में चक्रेश्वरी के हाथों में अभयमुद्रा, गदा, छल्ला, चक्र, पद्म एवं शंख हैं। चतुर्भुजी मूर्तियों में यक्षी के करों में अभय या वरद-मुद्रा, गदा (या चक्र), चक्र एवं शंख (या फल) प्रदर्शित हैं।

मनोवेगा

दिगम्बर ग्रन्थों में अश्ववाहना मनोवेगा को चतुर्भुजा और करों में वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग और मातुलिंग से युक्त बताया गया है।[1] खजुराहो के पुरातात्त्विक संग्रहालय में ऐसी एक मूर्ति (क्रमांक ९४०) है जिसकी पहचान अश्ववाहन के आधार पर छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ की यक्षी मनोवेगा से की जा सकती है। चतुर्भुजा देवी के तीन हाथ खण्डित हैं और एक में चक्राकार पद्म है। त्रिभंग में अवस्थित देवी की पीठिका पर अश्ववाहन की आकृति बनी है। ११वीं शती ई० की इस मूर्ति में दोनों पार्श्वों में सेविकाओं और परिकर में ललितासीन देवियों की मूर्तियाँ हैं। परिकर की चतुर्भुजा देवी के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म-पुस्तक और जलपात्र हैं। इन देवियों की पहचान सरस्वती से की जा सकती है।

अंबिका या कुष्मांडिनी

अंबिका या कुष्माण्डी २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी हैं जिसे आम्रादेवी भी कहा गया है। जैन धर्म की प्राचीनतम यक्षी होने के कारण ही यक्षियों में अंबिका सबसे अधिक लोकप्रिय रही हैं। इस लोकप्रियता के कारण ही श्वेताम्बर स्थलों पर २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र धारणा के विकास के बाद भी सभी जिनों के साथ यक्षी के रूप में अंबिका का ही निरूपण हुआ है। दिगम्बर ग्रन्थों में यक्षी का यद्यपि द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही रूपों में ध्यान किया गया है, किन्तु आयुध केवल दो ही हाथों के निर्दिष्ट किये गये हैं। अंबिका का वाहन सिंह है और उसके दाहिने हाथ में आम्रलुंबि तथा बायें में बालक (प्रियंकर) का उल्लेख है। यक्षी आम्र वृक्ष की छाया में आसीन होगी और उसके समीप ही दूसरे पुत्र (शुभंकर) की भी आकृति बनी होगी।[2]

---

१. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५. २८; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६१

२. देवी कुष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा।
चतुर्हस्तजिनेन्द्रस्य महाभक्तिर्विराजितः॥
द्विभुजा सिंहमारूढा आम्रोदवी हरित्प्रभा॥

प्रतिष्ठासारसंग्रह ५. ६४, ६६; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो में अंबिका की सर्वाधिक स्वतंत्र मूर्तियाँ हैं जिनकी संख्या ११ है। ये मूर्तियाँ १०वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य की हैं। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त जैन मंदिरों के उत्तरंगों पर भी अंबिका की मूर्तियाँ हैं। एक उदाहरण (पार्श्वनाथ मंदिर) के अतिरिक्त अन्य सभी मूर्तियों में अंबिका चतुर्भुजा हैं। अंबिका के साथ सिंह वाहन तथा शीर्ष भाग में आम्र वृक्ष और करों में आम्रलुंबि और बालक के प्रदर्शन में परंपरा का पालन किया गया है। खजुराहो में द्विभुज के स्थान पर अंबिका का चतुर्भुजा स्वरूप विशेष लोकप्रिय था। यहाँ उल्लेखनीय है कि खजुराहो के अतिरिक्त अन्य सभी दिगम्बर स्थलों पर परंपरा के अनुरूप अंबिका की द्विभुज मूर्तियाँ ही बनीं।

११ स्वतंत्र मूर्तियों में से दो-दो क्रमशः पार्श्वनाथ और आदिनाथ मंदिरों पर हैं। अन्य उदाहरण स्थानीय संग्रहालयों एवं अन्य जैन मंदिरों में हैं। सात उदाहरणों में अंबिका त्रिभंग में और अन्य में ललितमुद्रा में हैं। अंबिका की द्विभुजी मूर्ति पार्श्वनाथ मंदिर के दक्षिणी भित्ति पर है। इस मूर्ति में त्रिभंग में खड़ी अंबिका के दाहिने हाथ में आम्रलुंबि और बायें में बालक हैं। इस उदाहरण में सिंह वाहन की आकृति नहीं बनी है। अंबिका की चतुर्भुज मूर्तियों में नीचे के दो हाथों में आम्रलुंबि एवं बालक और ऊपरी हाथों में फल (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं। केवल मंदिर १३ की एक मूर्ति ही इसका अपवाद है जिसमें ऊर्ध्व करों में पद्म के स्थान पर अंकुश और पाश प्रदर्शित हैं। श्वेताम्बर परंपरा के ग्रंथों में अंबिका को चतुर्भुजा और दो हाथों में आम्रलुंबि एवं पुत्र तथा अन्य दो में पाश और अंकुश से युक्त निरूपित किया गया है।[1] ११ वीं शती ई० की चार मूर्तियों में दक्षिण पार्श्व में दूसरा पुत्र भी निरूपित हुआ है। स्वतंत्र मूर्तियों में अंबिका के साथ दो पार्श्ववर्ती सेविकाओं की आकृतियाँ भी दिखाई गई हैं जिनके एक हाथ में चामर (या पद्म) है। परिकर में उपासकों, गन्धर्वों एवं मालाधरों का भी अंकन हुआ है। पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति (११वीं शती ई०, क्रमांक १६०८) में अंबिका के प्रतिमालक्षण के विकास की उस स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है जहाँ अंबिका जिन के समान प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती हैं। इस मूर्ति की पीठिका पर जिन मूर्तियों के सामान ही द्विभुज यक्ष-यक्षी की भी आकृतियाँ बनी हैं। धन के थैले से युक्त यक्ष कुबेर हैं किन्तु यक्षी सामान्य लक्षणों वाली हैं जिसके हाथों में अभय-मुद्रा एवं जलपात्र हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सिंह वाहन, आम्र वृक्ष तथा करों में आम्रलुंबि एवं पुत्र के प्रदर्शन में खजुराहो के कलाकारों ने परंपरा के प्रति प्रतिबद्धता दिखलाई है। किन्तु यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप और दो ऊर्ध्व करों में पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) और अंकुश एवं पाश का प्रदर्शन खजुराहो की अंबिका मूर्तियों की स्थानीय विशेषता है।

---

१. **निर्वाणकलिका** १८.२२; **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** ८.९.३८५–८६।

अम्बादेवी कनककान्तिरुचिः सिंहवाहना चतुर्भुजा।
आम्रलुंबिपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया पुत्रांकुशासक्तवामकरद्वया च ॥

प्रवचनसारोद्धार २२, पृ० ९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मावती यक्षी

पद्मावती पार्श्वनाथ की यक्षी हैं। अंबिका और चक्रेश्वरी के बाद खजुराहो में पद्मावती की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। जिन-संयुक्त मूर्तियों के अतिरिक्त पद्मावती की तीन स्वतंत्र मूर्तियाँ भी हैं। दिगम्बर परंपरा के ग्रंथों में कुक्कुट-सर्प (या पद्म)-वाहना पद्मावती का चतुर्भुज, षड्भुज एवं चतुर्विंशतिभुज रूपों में ध्यान किया गया है। चतुर्भुजा पद्मावती के तीन हाथों में अंकुश, अक्षसूत्र एवं पद्म; तथा षड्भुजा यक्षी के करों में पाश, खड्ग, शूल, बालेन्दु, गदा एवं मूसल के उल्लेख हैं।[1] इस प्रकार पद्मावती के हाथों में मुख्यतः पद्म, पाश, अंकुश तथा वाहन के रूप में कुक्कुट या कुक्कुटसर्प और शीर्ष भाग में तीन, पाँच, या सात सर्पफणों के छत्र के प्रदर्शन की परंपरा थी। सर्प से सम्बद्ध होने के कारण ही मूर्त उदाहरणों में यक्षी के करों में सामान्यतः सर्प भी दिखाया गया है।

खजुराहो की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्षी अधिकांशतः सर्पफणों के छत्र से युक्त सामान्य लक्षणों वाली हैं। ११वीं शती ई० की सा० शा० जे० क० संग्रहालय की दो मूर्तियों (के० १००, के० ६८) में यक्षी चतुर्भुजा और पाँच सर्पफणों के छत्र से शोभित हैं। यक्षी के करों में अभयमुद्रा, सर्प, पद्म और जलपात्र प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में पद्मावती की तीन स्वतंत्र मूर्तियाँ हैं। ११वीं शती ई० की ये मूर्तियाँ विभिन्न उत्तरंगों पर हैं। आदिनाथ मंदिर एवं मन्दिर-८ के उदाहरणों में यक्षी का वाहन कुक्कुट है और उसके सिर पाँच सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। आदिनाथ मंदिर की मूर्ति में ललितासीन पद्मावती के करों में अभयमुद्रा, पाश, पद्म-कलिका एवं जलपात्र हैं। मंदिर-८ की मूर्ति में देवी खड़ी हैं और उनके दो अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा और पद्म हैं। जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो की तीसरी मूर्ति (क्रमांक १४६७) में यक्षी ललित-मुद्रा में विराजमान है और उसका वाहन कुक्कुट है तथा उसके सिर पर सात सर्पफणों का छत्र है। यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पाश और अंकुश प्रदर्शित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो में पद्मावती के निरूपण में कुक्कुट वाहन तथा करों में पद्म, पाश और अंकुश के संदर्भ में दिगम्बर परंपरा का पालन किया गया है। अंतिम मूर्ति पूरी तरह से **अपराजितपृच्छा** के विवरणों के अनुरूप है।[2]

सिद्धायिका यक्षी

सिद्धायिका या सिद्धायिनी महावीर की यक्षी है। महावीर की यक्षी होने के बाद भी सिद्धायिका की स्वतंत्र मूर्तियाँ नहीं बनीं और महावीर की मूर्तियों में भी यक्षी का पारंपरिक स्वरूप नहीं अभिव्यक्त हुआ। केवल देवगढ़ एवं खजुराहो में ही सिद्धायिका की

१. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५. ६७-७८; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १७४।

२. पाशांकुशौ पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीति च॥
अपराजितपृच्छा २२१. ३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ स्वतंत्र मूर्तियाँ मिली हैं और जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी का स्वतंत्र स्वरूप प्रकट हुआ है। दिगम्बर परंपरा में सिद्धायिनी को सिंहवाहना, द्विभुजी तथा वरद-मुद्रा और पुस्तक धारण किये हुए निरूपित किया गया है।[१] दिगम्बर परंपरा में यक्षी के साथ पुस्तक और श्वेताम्बर परंपरा में पुस्तक और वीणा दोनों का प्रदर्शन, यक्षी के निरूपण में सरस्वती का प्रभाव दर्शाता है।

खजुराहो में महावीर की मूर्तियों में यक्षी के रूप में सिंह वाहन और करों में फल, चक्र, पद्म एवं शंख धारण करने वाली यक्षी निरूपित है, जो यक्षी के निरूपण में वैष्णवी का प्रभाव दिखलाती हैं। खजुराहो में सिद्धायिका की केवल एक स्वतंत्र मूर्ति है। यह मूर्ति मंदिर १० के उत्तरंग पर है। ११वीं शती ई० की इस मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी ललितमुद्रा में आसीन है। यक्षी के समीप ही सिंह वाहन की आकृति बनी है। यक्षी के करों में वरद-मुद्रा, खड्ग, खेटक एवं जलपात्र हैं। पूरी तरह समान लक्षणों वाली दूसरी मूर्ति देवगढ़ के मंदिर ५ के उत्तरंग पर देखी जा सकती है। यह मूर्ति दिगम्बर परंपरा से मेल नहीं खाती। संभवतः किसी स्थानीय परंपरा के आधार पर इसका निर्माण हुआ था।[२]

—: ० :—

१. सिद्धायिनी तथा देवी द्विभुजा कनकप्रभा।
वरदा पुस्तकं धत्ते सुभद्रासनमाश्रिता॥
प्रतिष्ठासारसंग्रह ५. ७३–७४; प्रतिष्ठासारोद्धार ३. १७८।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, एलिमेन्ट्स आफ जैन आइकनोग्राफी, पृ० ५८–६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–६

विद्यादेवी या महाविद्या मूर्तियाँ

जैन धर्म में विद्यादेवियों की कल्पना पर्याप्त प्राचीन है, जिसके उल्लेख प्रारंभिक जैन ग्रंथों : **स्थानांगसूत्र, सूत्रकृतांग, औपपातिक सूत्र, नायाधम्मकहाओ** एवं **पउमचरिय** में प्राप्त होते हैं। **हरिवंशपुराण** (७८३ ई०), **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (१२वीं शती ई०) तथा अन्य परवर्ती ग्रंथों में भी विद्यादेवियों के अनेक उल्लेख हैं। जैन परम्परा में इन विद्याओं की संख्या ४८००० तक बताई गई है।[1] विद्यादेवियों की इस संख्या में से १६ प्रमुख विद्यादेवियों का चयन कर ल० ९वीं शती ई० के अन्त में १६ महाविद्याओं की एक सूची नियत हुई। सर्वप्रथम इन महाविद्याओं का विस्तृत निरूपण **चतुर्विंशतिका** (बप्पभट्टिसूरिकृत, ७४३–८३८ ई०) में हुआ है, किन्तु यहाँ १६ के स्थान पर केवल १५ महाविद्यायें ही निरूपित हैं।[2] १६ महाविद्याओं का प्रारम्भिक निरूपण **स्तुतिचतुर्विंशतिका** (शोभनमुनिकृत, ल० ९७३ ई०) एवं **निर्वाणकलिका** (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) में हुआ है।

जैन शिल्प में इन महाविद्याओं के उकेरन के प्राचीनतम उदाहरण ओसियाँ (जोधपुर, राजस्थान) के महावीर मंदिर (ल० ८वीं-९वीं शती ई०) में हैं। ९वीं शती ई० के बाद गुजरात एवं राजस्थान के जैन मन्दिरों पर इन महाविद्याओं का अनेकशः अंकन हुआ है। १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण के प्रमुख उदाहरण कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात) के शांतिनाथ मंदिर (११वीं शती ई०) तथा दिलवाड़ा के विमल वसही (सिरोही, राजस्थान– दो समूह : रंगमण्डप एवं देवकुलिका ४१, १२वीं शती ई०) एवं लूण वसही (सिरोही, राजस्थान, रंगमण्डप, १२३० ई०) में हैं।

जैन ग्रंथों में १६ महाविद्याओं की सूची में निम्नलिखित नाम मिलते हैं : १–रोहिणी, २–प्रज्ञप्ति, ३–वज्रशृंखला, ४–वज्रांकुशा, ५–अप्रतिचक्रा या चक्रेश्वरी (श्वे०), जांबूनदा (दि०), ६–नरदत्ता या पुरुषदत्ता, ७–काली या कालिका, ८–महाकाली, ९–गौरी, १०–गांधारी, ११–सर्वास्त्रमहाज्वाला या ज्वाला (श्वे०), ज्वालामालिनी (दि०), १२–मानवी, १३–वैरोट्या (श्वे०), वैरोटी (दि०), १४–अच्छुप्ता (श्वे०), अच्युता (दि०), १५–मानसी, १६–महामानसी।

---

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, "आइकनोग्रफी आव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज", **जर्नल इण्डियन सोसायटी आफ ओरियंटल आर्ट**, खंड–१५, १९४७, पृ० ११४–७७।

२. ग्रंथ में महाज्वाला नाम की महाविद्या का अनुल्लेख है और मानसी नाम से वर्णित महविद्या संयुक्त रूप से मानसी और महाज्वाला दोनों की विशेषताओं से युक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खजुराहो के आदिनाथ मंदिर के मंडोवर की १६ रथिकाओं (७९ × ६४ से० मी०) में ऐसी देवियाँ आकारित हैं जिनकी पहचान संख्या और लक्षणों के आधार पर महाविद्याओं से की जा सकती है।[1] दिगम्बर स्थल पर महाविद्याओं के अंकन का यह एकमात्र ज्ञात उदाहरण है। रथिकाबिंबों की १६ देवियों को विशेष सम्मानजनक स्थिति में आकारित किया गया है। इन देवियों के साथ चतुर्भुजी देवियों की लघु आकृतियों, चामरधारिणी सेविकाओं, उपासिकाओं और तीर्थंकर मूर्तियों का भी अंकन हुआ है। यहाँ दिगम्बर ग्रंथ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (१२वीं शती ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (१३वीं शती ई०) और **प्रतिष्ठातिलकम्** (१५४३ ई०) के आधार पर इन देवियों को पहचानने का यत्न किया गया है। ये देवियाँ चार, छः या आठ हाथों वाली तथा अलंकृत मुकुट, हार, स्तनहार, भुजबंध, वलय, नूपुर, कर्णपुर एवं धोती आदि से सुशोभित हैं। दो उदाहरणों के अतिरिक्त जिनमें देवियाँ त्रिभंग में हैं, अन्य में उन्हें पद्म पर ललितमुद्रा में आसीन दिखाया गया है। इन देवियों के शीर्ष-भाग में एक जिन आकृति और दोनों पार्श्वों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र से युक्त चतुर्भुज देवियाँ आकारित हैं। मंडोवर पर उत्तर और दक्षिण की ओर सात-सात और पश्चिम की ओर दो मूर्तियाँ हैं। यहाँ इनका विवरण दक्षिणी भित्ति की मूर्तियों से (क्रमशः ऊपर से नीचे) प्रारम्भ किया गया है।

पहली मूर्ति में चतुर्भुजा देवी त्रिभंग में हैं और उनके अवशिष्ट वाम करों में चक्र तथा जलपात्र हैं। वाहन की आकृति अस्पष्ट होने के कारण देवी की पहचान संभव नहीं है। दूसरी मूर्ति में पद्मासीन अष्टभुजी देवी अश्व वाहन के साथ निरूपित हैं। देवी के अवशिष्ट हाथों में अभयमुद्रा, एक लम्बी वस्तु, शर, धनुष, दण्ड और जलपात्र स्पष्ट हैं। अश्ववाहन के आधार पर देवी की पहचान प्रज्ञप्ति[2] या अच्युता[3] (या अच्छुप्ता) से संभव है। ग्रंथों में अश्ववाहना चतुर्भुजा अच्छुप्ता के करों में धनुष (या शर), खेटक, खड्ग और बाण के प्रदर्शन का विधान है।[4]

तीसरी मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान षड्भुजा देवी के सिर के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। देवी के दो अवशिष्ट दक्षिण करों में पद्म और पाश हैं तथा वाहन के रूप में कूर्म आकारित है। वाहन के आधार पर देवी की पहचान गांधारी से संभव है।[5] सर्प से सम्बद्ध होने के आधार पर इसे वैरोटी से भी पहचाना जा सकता है।[6] चौथी ललितासीन मूर्ति में अष्टभुजा देवी का वाहन सिंह है और उनके सुरक्षित हाथों में अभयमुद्रा, गदा, त्रिशूल, नकुलक, परशु और शक्ति हैं। उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर इस देवी की पहचान संभव नहीं

---

१. सम्प्रति दो रथिकाओं की प्रतिमायें पूर्णतया नष्ट हो गई हैं।
२. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ३८।
३. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ५०।
४. **निर्वाणकलिका**, पृ० ३७।
५. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ४६।
६. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ४९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उल्लेख्य है कि कुछ ग्रन्थों में महामानसी को सिंह वाहना बताया गया है।[1] पाँचवीं मूर्ति में ललितमुद्रा में पद्मासीन अष्टभुजा देवी का वाहन मकर है। देवी के अवशिष्ट करों में शूल, वज्र, खड्ग, फलक और पुस्तक प्रदर्शित हैं। **आचारदिनकर** में महामानसी को मकरवाहना और खड्ग, खेटक, रत्न तथा वरदमुद्रा से युक्त बताया गया है।[2] शीर्ष भाग की लघु देवी आकृतियों को यहाँ अभय, स्रुक, पुस्तक और जलपात्र तथा हंस वाहन के साथ दिखाया गया है। ये सरस्वती की मूर्तियाँ हैं।

छठी अष्टभुजी देवी ललितासन में पद्मासीन हैं। जटामुकुट तथा वृषभ वाहन वाली देवी के सुरक्षित हाथों में त्रिशूल, पद्म और पाश स्पष्ट हैं। देवी की पहचान गौरी से की जा सकती है। **मन्त्राधिराजकल्प** में वृषभवाहना देवी के हाथों में पद्म, अक्षमाला, वरदमुद्रा और दण्ड का उल्लेख हुआ है।[3] सातवीं मूर्ति में चतुर्भुजा और ललितासीन देवी का वाहन सिंह है और उनके एक अवशिष्ट पाणि में पद्म-पुस्तक प्रदर्शित है। देवी की पहचान संभव नहीं है। आठवीं मूर्ति अत्यन्त खंडित रूप में है जिसमें देवी का वाहन हंस है और एक हाथ में खेटक प्रदर्शित है। वाहन के आधार पर देवी की पहचान पुरुषदत्ता से की जा सकती है जिसका दिगम्बर परंपरा में वज्र, पद्म, शंख और फल के साथ ध्यान किया गया है।[4] नवीं देवी की आकृति पूर्णतः खंडित है। गरुडवाहना (मानवाकार) अष्टभुजा देवी के सभी हाथ नष्ट हो चुके हैं। किन्तु गरुड वाहन के आधार पर देवी को अप्रतिचक्रा से पहचाना जा सकता है।[5] दसवीं देवी चतुर्भुजा और त्रिभंग में हैं। उनके तीन अवशिष्ट करों में से एक से वरदमुद्रा व्यक्त है तथा अन्य दो में पद्म हैं। वाहन की आकृति स्पष्ट नहीं है। अगली देवी अष्टभुजा और ललितासन में पद्मासीन हैं। खंडित भुजाओं वाली देवी का वाहन गज है जिसके आधार पर इनकी पहचान वज्रांकुशा या वज्रशृंखला से की जा सकती है।[6]

१२वीं अष्टभुजी देवी ललितासीन और मृगवाहना हैं। देवी के दो अवशिष्ट करों में अभयमुद्रा और खेटक है। इस देवी की पहचान काली से संभव है जिसे दिगम्बर ग्रन्थों में मृगवाहना तथा करों में मूसल, खड्ग, पद्म और फल से युक्त बताया गया है।[7] अगली चतुर्भुजा देवी ध्यानमुद्रा में पद्म पर आसीन हैं। देवी के सभी हाथ टूटे हैं और वाहन भी अनुपस्थित है। चौदहवीं अष्टभुजा देवी पद्म पर ललितासीन और मयूरवाहन वाली हैं। देवी के आठ हाथों में से केवल एक सुरक्षित है जिससे अभयमुद्रा व्यक्त है। मयूर वाहन

१. **निर्वाणकलिका**, पृ० ३७।
२. **आचारदिनकर**, भाग–२, प्रतिष्ठाधिकार ३४. १६।
३. **मन्त्राधिराजकल्प** ३. ११।
४. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ४२; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७. ६।
५. **निर्वाणकलिका**, पृ० ३७।
६. शाह, यू० पी०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १२७–३२।
७. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. ४३; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७. ७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आधार पर देवी की पहचान जांबूनदा से की जा सकती है जिसे मयूर पर आरूढ़ और करों में खड्ग, शूल, पद्म और फल से युक्त निरूपित किया गया है।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त देवियाँ स्पष्टतः १६ महाविद्याओं का निरूपण हैं। ये मूर्तियाँ अधिकांशतः उपलब्ध दिगम्बर ग्रन्थों के विवरणों से किंचित् भिन्न किसी स्थानीय परम्परा के आधार पर उकेरी गई प्रतीत होती हैं, जो सम्प्रति हमें उपलब्ध नहीं है।

—: ० :—

१. प्रतिष्ठासारोद्धार ३. ४१; प्रतिष्ठातिलकम् ७. ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय—७

अन्य देव मूर्तियाँ

बाहुबली

जैन ग्रन्थों में ऋषभनाथ के १०० पुत्रों के उल्लेख हैं जिनमें भरत चक्रवर्ती सबसे बड़े और बाहुबली दूसरे क्रम पर हैं। बाहुबली को दक्षिण भारत में गोम्मटेश्वर भी कहा गया है। भरत की राजधानी विनीता और बाहुबली की राजधानी तक्षशिला या पोदनपुर थी। भरत चक्रवर्ती ने बाहुबली से सत्ता स्वीकार करने को कहा जिसे बाहुबली ने अस्वीकार कर दिया। फलतः दोनों भाइयों के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। यह युद्ध दोनों की सेनाओं का युद्ध नहीं था। बाहुबली के प्रस्ताव पर भीषण नरसंहार बचाने की दृष्टि से दोनों ने द्वन्द्व-युद्ध का निश्चय किया। इस द्वन्द्व-युद्ध में अंततः बाहुबली विजयी हुए। विजय के तत्काल पश्चात् ही बाहुबली के मन में संसार के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होंने तत्क्षण संसार त्याग कर कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दी। सफलता के उच्चतम क्षणों में इस प्रकार की विरक्ति की अनुभूति बाहुबली के चरित्र की अद्‌भुत विशेषता है। अन्ततः बाहुबली ने एक वर्ष तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहकर कठिन तपस्या द्वारा कैवल्य प्राप्त किया। जैन साहित्य और शिल्प दोनों में भरत-बाहुबली के द्वन्द्व तथा बाहुबली की कठिन तपस्या का निरूपण मिलता है।[1]

भरत और बाहुबली के द्वन्द्व से संबंधित चित्रण कुंभारिया के शांतिनाथ मंदिर (११वीं शती ई०) और विमलवसही (१२वीं शती ई०) में हैं। ९वीं से १२वीं शती ई० के मध्य बाहुबली की पर्याप्त स्वतंत्र मूर्तियाँ बनीं। ये मूर्तियाँ प्रभासपाटण (गुजरात, सम्प्रति जूनागढ़ संग्रहालय, ल० ९वीं शती ई०), देवगढ़ (मंदिर २, ११ एवं साहू जैन संग्रहालय, १०वीं से १२वीं शती ई०), खजुराहो (पार्श्वनाथ मंदिर), बिल्हरी (मध्य प्रदेश), एलोरा (महाराष्ट्र), श्रवणबेलगोल, बेलूर, कारकल (कर्नाटक) एवं मथुरा (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, क्रमांक ९४०) में हैं।[2] कठिन तपस्या के समय बाहुबली के हाथों और पैरों में लता-वल्लरियाँ

---

१. **पउमचरिय** ४. ५४–५५; **हरिवंशपुराण** ११. ९८-१०२; **आदिपुराण** ३६. १०६–८५; **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र** ५. ७४०–९८; शाह, यू० पी०, "बाहुबली : ए यूनीक ब्रोन्ज इन दि म्यूजियम", **बुलेटिन आव दि प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम**, बम्बई, अंक–४, १९५३–५४, पृ० ३२–३९; तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, **एलिमेण्ट्स आव जैन आइकनोग्राफी**, वाराणसी, १९८३, पृ० ९७–१०३।

२. एलोरा की जैन गुफाओं में बाहुबली की कई मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भारत में कर्नाटक का क्षेत्र बाहुबली गोम्मटेश्वर की मूर्तियों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। कर्नाटक स्थित श्रवणबेलगोल (हसन) की ५७ फीट ऊँची गोम्मटेश्वर मूर्ति भारत की विशालतम् धार्मिक प्रतिमा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपट गयीं तथा उनके शरीर पर सर्प, वृश्चिक् और छिपकली जैसे जन्तु निश्चिन्त भाव से विचरण करने लगे थे। किन्तु बाहुबली इन सबसे विचलित हुए बिना कठिन तपस्या में रत रहे। बाहुबली की कायोत्सर्ग-मुद्रा उनके आत्मनियंत्रण तथा नग्नता पूर्ण विरक्ति और मनोभावों पर उनके पूर्ण नियंत्रण का भाव व्यक्त करती हैं। दिगम्बर परम्परा में बाहुबली के दोनों पार्श्वों में दो विद्याधरियों की उपस्थिति के सन्दर्भ हैं। दिगम्बर पुराणों के अनुसार इन विद्याधरियों ने बाहुबली के शरीर से लिपटी हुई लता-वल्लरियों को हटाया था।[1]

मूर्तियों में बाहुबली को कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र तथा लता-वल्लरियों एवं शरीर पर सर्प, वृश्चिक, छिपकलियों आदि से सुशोभित दर्शाया गया है। उत्तर भारत की बाहुबली की मूर्तियों में प्रतिमालक्षण की दृष्टि से दक्षिण भारत की अपेक्षा अधिक विकास दृष्टिगत होता है। खजुराहो, बिल्हरी और देवगढ़ की मूर्तियों में बाहुबली को श्रीवत्स से युक्त तथा सिंहासन, धर्मचक्र, चामरधारी सेवकों एवं उड्डीयमान मालाधरों तथा कभी-कभी एक और कभी तीन छत्रों से युक्त दिखाया गया है। ये सभी विशेषतायें जिन मूर्तियों से संबद्ध रही हैं। इस प्रकार उत्तर भारत में बाहुबली को जिनों के समकक्ष प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया। देवगढ़ के मंदिर ११ तथा खजुराहो की दो मूर्तियों में (१२वीं शती ई०) जिन मूर्तियों के समान बाहुबली के साथ द्विभुज यक्ष और यक्षी भी आकारित हैं।

खजुराहो में बाहुबली की कुल पाँच मूर्तियाँ हैं। एक उदाहरण पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर है। यह मूर्ति संभवतः उत्तर भारत में बाहुबली की प्राचीनतम मूर्तियों में दूसरी है। खजुराहो की अन्य तीन मूर्तियाँ (११वीं शती ई०) बाहुबली की लघु मूर्तियाँ हैं, जो क्रमशः मंदिर संख्या १७ की आदिनाथ एवं मंदिर संख्या १/१ की पार्श्वनाथ मूर्तियों के परिकर तथा पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो के उत्तरंग (क्रमांक १७२४) पर हैं। इन उदाहरणों में बाहुबली को निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में लता-वल्लरियों से सुशोभित दर्शाया गया है। चौथी मूर्ति स्थानीय सा० शां० जै० क० संग्रहालय में है।

पार्श्वनाथ मंदिर की मूर्ति (७४×६१ से० मी०) प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विकसित कोटि की है। मूर्ति पर संभवतः 'गोमट' भी उत्कीर्ण है। बाहुबली निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में सामान्य पीठिका पर निरूपित हैं। पीठिका के मध्य में धर्मचक्र एवं छोरों पर सिंहासन के सूचक दो सिंहों की आकृतियाँ बनी हैं। बाहुबली के हाथों और पैरों से लता-वल्लरियाँ लिपटी हुई हैं और वक्षस्थल पर वृश्चिक् तथा छिपकली की आकृतियाँ बनी हैं। तपस्यारत बाहुबली के केश गुच्छकों के रूप से प्रदर्शित हैं। उनके पार्श्वों में दो विद्याधरियों को लता-वल्लरियों को शरीर से हटाते हुए दर्शाया गया है। विद्याधरियों के समीप ही चामरधारी सेवकों की भी दो आकृतियाँ उकेरी हैं। सिर के ऊपर त्रिछत्र के स्थान पर केवल एक ही छत्र है जो इस बात का संकेत है कि बाहुबली तीर्थंकर न होकर केवली मात्र हैं। परिकर के ऊपरी भाग में दो उड्डीयमान मालाधरों और गजों की आकृतियाँ बनी हैं। इस प्रकार यह मूर्ति एक ओर तीर्थंकर मूर्तियों (श्रीवत्स, सिंहासन,

१. हरिवंशपुराण ११. १०१; आदिपुराण, खण्ड–२, ३६. १८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चामरधर सेवक, गन्धर्व) के लक्षणों से युक्त है और वहीं दूसरी ओर दिगम्बर परम्परा के अनुरूप इसमें विद्याधरियों की आकृतियाँ भी बनी हैं।

सा० शां० जै० क० संग्रहालय की चौथी मूर्ति (१२वीं शती ई०) प्रतिमालक्षण की दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण है। इस उदाहरण में बाहुबली के साथ विद्याधरियों एवं अष्टप्रातिहार्यों के साथ ही यक्ष-यक्षी युगल भी आकारित हैं। यक्ष-यक्षी ऋषभनाथ के यक्ष-यक्षी गोमुख-चक्रेश्वरी हैं।

जैन युगल

जैन धर्म में तीर्थंकरों के माता-पिता को विशेष सम्मानजनक स्थिति प्रदान की गई है और विभिन्न प्रसंगों में २४ तीर्थंकरों के माता-पिता के नामों एवं पूजन से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते हैं।[१] लगभग नवीं शती ई० के बाद इनका मूर्त अंकन भी प्रारम्भ हुआ। मूर्तियों एवं चित्रों में माताओं का निरूपण अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय था।

दिगम्बर स्थलों पर स्त्री-पुरुष युगल मूर्तियों का निर्माण लगभग छठी शती ई० के बाद प्रारम्भ हुआ। देवगढ़, खजुराहो, राजगिर, लच्छागिरि, गुर्गी तथा अन्य अनेक स्थलों पर जैन युगलों की प्रचुर मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों में स्त्री-पुरुष युगल को ललितमुद्रा में एक वृक्ष के नीचे आसीन और एक हाथ से अभय या वरद-मुद्रा अभिव्यक्त करते हुए दिखाया गया है। स्त्री की बायीं गोद में सामान्यतः एक बालक प्रदर्शित है जिसे स्त्री अपने एक हाथ से सहारा देते हुए दिखाई गई है। स्त्री की गोद में बालक का अंकन उसके मातृ पक्ष को उजागर करता है। पुरुष का बायाँ हाथ या तो घुटनों पर है या फिर उसमें फल या पद्म प्रदर्शित है। कभी-कभी पुरुष के इस हाथ में एक बालक भी दिखाया गया है। इन मूर्तियों के शीर्ष भाग में एक वृक्ष और उसके मध्य तीर्थंकर की बिना लांछन वाली एक ध्यानस्थ मूर्ति बनी होती है। इन मूर्तियों को सामान्यतः जैन युगल नाम से अभिहित किया गया है। यद्यपि इन्हें तीर्थंकरों के माता-पिता से पहचानने में विद्वानों ने संकोच का अनुभव किया है,[२] किन्तु खजुराहो के दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये मूर्तियाँ तीर्थंकरों के माता-पिता की ही हैं। एक उदाहरण में (मन्दिर १३) की कुंथुनाथ मूर्ति (ल० ११वीं शती ई०) में पीठिका के ऊपरी भाग में कुंथुनाथ का अज-लांछन तथा नीचे उपर्युक्त विवरणों वाली स्त्री-पुरुष युगल आकृतियाँ उकेरी हैं जो निश्चित ही कुंथुनाथ के माता-पिता की आकृतियाँ हैं। आर्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १५९५) की एक मूर्ति में युगल आकृतियों के नीचे वृषभ अंकित है जो उनके ऋषभनाथ के माता-पिता होने का भाव व्यक्त करता है। दिगम्बर स्थलों की युगल मूर्तियों में शीर्षभाग में अलग-अलग वृक्षों का अंकन हुआ है जो

---

१. शाह, यू० पी०, 'पेरेन्ट्स आव दि तीर्थंकरज', **बुलेटिन आव दि प्रिंस आव वेल्स म्यूज़ियम, बम्बई**, अंक ५, १९५५–५७, पृ० २४।

२. यू० पी० शाह ने इन मूर्तियों की पहचान तीर्थंकरों के माता-पिता से की है। शाह, यू० पी०, **पूर्व निर्दिष्ट**, २८–३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरों के कैवल्यवृक्ष प्रतीत होते हैं, किन्तु आलंकारिक बनावट के कारण इन वृक्षों को निश्चित रूप से पहचान पाना कठिन है।

खजुराहो में जैन युगल मूर्तियों के आठ उदाहरण हैं। प्रारम्भिकतम मूर्ति (१०वीं शती ई०) पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप की भीतरी भित्ति के समीप रखी है। अन्यत्र की भाँति यहाँ भी द्विभुज युगल मूर्त्तियों को सामान्य अलंकरणों से सज्जित और ललितमुद्रा में अलंकृत आसन पर विराजमान दर्शाया गया है। शीर्षभाग में अलग-अलग प्रकार के वृक्षों और उनके मध्य में तीर्थंकर की ध्यानस्थ मूर्ति बनी है। वाम पार्श्व की स्त्री आकृति की बायीं गोद में सदैव बालक दिखाया गया है। दो उदाहरणों में पुरुष आकृति के साथ भी बालक (बायें गोद में) अंकित है।[1] अन्य उदाहरणों में पुरुष आकृति के बायें हाथ में सनाल पद्म (या पद्म) दिखाया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों की दाहिनी भुजा में फल या अभयमुद्रा प्रदर्शित है। पुरुष सामान्यतः करण्डमुकुट तथा स्त्री धम्मिल्ल से शोभित है। खजुराहो में जैन युगल मूर्ति का सर्वाधिक मनोज्ञ उदाहरण (१०वीं शती ई०) शान्तिनाथ मन्दिर क्रमांक ११० में है। जार्डिन संग्रहालय (क्रमांक १६०६) की एक मूर्ति (१०वीं शती ई०) में पीठिका छोरों पर चतुर्भुज यक्ष और यक्षी की आकृतियाँ भी उकेरी हैं जो जैन युगल के रूप में तीर्थंकारों के माता-पिता की विशेष प्रतिष्ठा के सूचक हैं। ललितमुद्रा में आसीन यक्ष और यक्षी के करों में अभयमुद्रा, पद्म और जलपात्र प्रदर्शित हैं। परिकर में स्तुतिमुद्रा में आराधकों एवं चामरधारी सेवकों को भी आमूर्तित किया गया है।

इनमें पीठिका के नीचले भाग में सामान्यतः एक पंक्ति में पाँच, छः या सात श्रावकों एवं जैन आचार्यों की आकृतियाँ आकारित हैं जिनमें से कुछ को व्याख्यानमुद्रा में या वार्तालाप करते हुए और कुछ को स्तुतिमुद्रा में दिखाया गया है। पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६०९) की एक मूर्ति में पीठिका की तीन आकृतियों के हाथों में अभय-मुद्रा और फल प्रदर्शित हैं। सा० शां० जै० क० संग्रहालय की एक मूर्ति में वृक्ष के तने पर एक मानव आकृति को ऊपर चढ़ते हुए भी दिखाया गया है। पार्श्वनाथ एवं शान्तिनाथ मन्दिरों तथा कुछ अन्य उदाहरणों में उड्डीयमान मालाधारों को भी प्रदर्शित किया गया है।

जैन आचार्य

जैन देवकुल में पंच परमेष्ठियों को विशेष सम्मानजनक स्थिति प्राप्त है। अर्हत्, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु को मिलाकर पंच परमेष्ठियों की कल्पना की गयी।[2] पंच परमेष्ठियों में अर्हत् और सिद्ध मुक्त आत्मायें हैं। इनमें केवल सिद्ध निराकार और अन्य

---

१. पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६००) एवं साहू शान्तिप्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो (के० ३२)।

२. शाह, यू० पी०, "बिगिनिग्स आव जैन आइकनोग्राफी", **संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका**, अंक ९, १९७२, पृ० ८-९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी साकार हैं। पंच परमेष्ठियों के पूजन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन रही है। अर्हतों या जिनों के अलावा आचार्य, उपाध्याय और साधु की भी स्वतन्त्र मूर्तियों के अनेक उदाहरण विमल वसही, लूणवसही, कुंभारिया, ओसियाँ, देवगढ़, ग्वालियर और खजुराहो जैसे स्थलों पर हैं। ये मूर्तियाँ अधिकांशतः १०वीं से १२वीं शती ई० के मध्य की हैं। जैन आचार्यों को सामान्यतः स्थापना के साथ उपदेश या व्याख्यान की मुद्रा में अकेले या दूसरे आचार्य के साथ शास्त्रार्थ करते हुए दिखाने की परम्परा रही है। मूर्तियों में एक हाथ व्याख्यान की मुद्रा में है और दूसरे में पुस्तक है। जैन साधुओं की आकृतियाँ मुखपट्टिका, ओघा तथा मयूरपिच्छिका से युक्त बनाई गई[1]। जैन ग्रन्थों में साधुओं के साथ स्थापना, मुखपट्टिका, दण्ड, प्रोंचनक (मयूरपिच्छिका या रजोहरण), जपमालिका आदि के प्रदर्शन के उल्लेख हैं।[1]

खजुराहो की मूर्तियों में जैन आचार्यों एवं साधुओं दोनों का अंकन हुआ है। समकालीन जैन आचार्यों के नामों के अध्ययन की दृष्टि से खजुराहो के लेख विशेष महत्व के हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के विक्रम संवत् १०११ (९५४ ई०) के लेख में वासवचंद्र का नामोल्लेख है जो चन्देल शासक धंग के महाराजगुरू थे। इसके अतिरिक्त पार्श्वनाथ मंदिर के अन्य लेखों में आचार्य श्री देवचंद्र, श्री कुमुदचंद्र[2] तथा संवत् १२१५ (११५८ ई०) के एक मूर्ति लेख (मंदिर १३) में चारुकीर्ति मुनि और उनके शिष्य कुमार नन्दी के नामोल्लेख हैं।[3] देवचन्द्र संभवतः वासवचन्द्र के शिष्य या प्रशिष्य थे। शांतिनाथ मंदिर की विशाल शांतिनाथ प्रतिमा (१०२८ ई०) के पीठिका लेख में आचार्य-पुत्र ठाकुर देवधर तथा उनके पुत्रों शिवचन्द्र एवं चन्द्रदेव के उल्लेख हैं। मंदिर ७ के प्रवेश-द्वार की बड़ेरी की सुपार्श्वनाथ मूर्ति के दोनों ओर कुल २६ आकृतियाँ बनी हैं। इनमें से १८ आकृतियाँ जैन साधुओं की हैं। मुण्डितमस्तक साधुओं के हाथों के बीच मयूरपिच्छिका प्रदर्शित है तथा उनके दोनों हाथ स्तुतिमुद्रा में हैं। इन आकृतियों के नीचे उनके नामों का उत्कीर्ण होना विशेष महत्त्वपूर्ण है। लेख यद्यपि काफी धूमिल है किन्तु फिर भी इसमें योगनन्दी, मेष (या मेघसिंह), अरचन्द्र, योगचंद्र, यक्षदेव, सरूपदेव एवं विशालकीर्ति के नाम स्पष्ट हैं।

पार्श्वनाथ एवं घण्टई मंदिरों पर जैन आचार्यों एवं साधुओं की पर्याप्त मूर्तियाँ हैं। इनमें जैन साधुओं की अपेक्षाकृत अधिक मूर्तियाँ हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के अर्धमण्डप एवं गर्भगृह के प्रवेशद्वारों पर मुण्डितमस्तक वाले निर्वस्त्र जैन साधुओं की कई स्थानक मूर्तियाँ हैं। अर्धमण्डप के उदाहरणों में इन जैन साधुओं को जिन मूर्ति की पूजा करते हुए दिखाया गया है। एक उदाहरण में दो जैन साधुओं को एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर वार्तालाप की मुद्रा में तथा मयूरपीच्छिका के साथ आकारित किया गया है। पार्श्वनाथ मंदिर के पश्चिमी शिखर पर जैन आचार्य और ब्राह्मण साधु के बीच के शास्त्रार्थ को भी दिखाया गया है।

१. शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, पृ० ११३–१५.

२. मंदिर ११ के एक स्तंभ-लेख में भी देवचन्द्र और कुमुदचन्द्र के नाम उत्कीर्ण हैं।

३. **एपिग्राफिया इण्डिका**, खंड १, कलकत्ता, १८९२, पृ० १३५–३६, १५२–५३; जैन, ज्योतिप्रसाद, **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें**, दिल्ली, पृ० २२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मण साधु श्मश्रु से युक्त है। दक्षिणी शिखर के एक उदाहरण में किसी जैन आचार्य के समक्ष कुछ आचार्यों को उपदेशों का श्रवण करते हुए दिखाया गया है। खजुराहो में अन्यत्र की भाँति दो जैन आचार्यों को आमने-सामने बैठकर शास्त्रार्थ करते हुए भी आकारित किया गया है। साथ ही स्थापना पर पुस्तक के साथ उनका उपदेश की मुद्रा में भी अंकन हुआ है।

घण्टई मंदिर में अर्धमण्डप के स्तंभों एवं वितान पर जैन आचार्यों की अनेक आकृतियाँ हैं। इनमें उन्हें स्थापना तथा पुस्तिका के साथ व्याख्यान देते या दूसरे जैन आचार्य के साथ शास्त्रार्थ करते हुए दिखाया गया है। जैन आचार्यों के शास्त्रार्थ से सम्बन्धित एक विशिष्ट उदाहरण शांतिनाथ मंदिर में है। इसमें दो जैन आचार्यों को आसने-सामने बैठे तथा एक हाथ में पुस्तिका लिए और दूसरे हाथ से व्याख्यान देते हुए दिखाया गया है। मध्य में एक स्थापना भी उत्कीर्ण है जिस पर एक पुस्तक रखी है। स्थापना के ऊपर के भाग में दो कायोत्सर्ग तथा एक ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हैं। पीठिका पर चार कलश और चार साधुओं की आकृतियाँ भी हैं, जो जैन आचार्यों के शास्त्रार्थ का श्रवण कर रही हैं। मयूरपिच्छिका से युक्त इन जैन साधुओं के हाथ नमस्कारमुद्रा में हैं।

सरस्वती

विद्या और संगीत की देवी के रूप में सरस्वती की आराधना अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में सरस्वती का देवी के रूप में उल्लेख हुआ है। बौद्ध एवं जैन धर्मों में भी सरस्वती को सम्मानजनक स्थिति प्रदान की गयी। बौद्ध धर्म में सरस्वती का प्रज्ञापारमिता के रूप में उल्लेख है और उसके हाथों में पुस्तक के प्रदर्शन का विधान है। पुस्तक को बुद्ध के उपदेशों का मूर्त रूप माना गया। प्रारम्भिक जैन ग्रंथों में सरस्वती का श्रुतदेवता के रूप में उल्लेख है और उन्हें मेधा एवं बुद्धि का देवता बताया गया है।[1] **भगवतीसूत्र** एवं **पउमचरिय** में श्री, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी के साथ बुद्धि की देवी का उल्लेख आया है।[2] जिन वाणी को आगम या श्रुत कहा गया और संभवतः इसी कारण जैन आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के हाथ में पुस्तक प्रदर्शित किया गया।[3] देवगढ़ के मंदिर १ की त्रितीर्थी जिन मूर्ति (११वीं शती ई०) में जिनों के साथ चतुर्भुजा सरस्वती का अंकन संभवतः इसी भाव की मूर्त अभिव्यक्ति है।

सरस्वती की प्राचीनतम स्वतंत्र मूर्ति कुषाणकाल (१३२ ई०) में मथुरा में बनी। यह जैन सरस्वती की मूर्ति है। इस मूर्ति में देवी के एक हाथ में पुस्तक है और दूसरे में अक्षमाला का कुछ भाग शेष है।[4] जैन ग्रंथों में यद्यपि सरस्वती का लाक्षणिक स्वरूप

१. **अंगविज्जा**, अ० ५८, पृ० २२३, २८२।

२. **भगवतीसूत्र** ११. ११. ४३०; **पउमचरिय** ३.५९।

३. जैन, ज्योतिप्रसाद, "जेनेसिस आव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेन्ट", **संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका**, अंक ९, जून १९७२, पृ० ३०–३३।

४. राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे० २४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवीं शती ई० के बाद निरूपित हुआ, पर सरस्वती की मूर्तियाँ उसके पूर्व ही बनने लगी थीं। श्वेताम्बर और दिगम्बर स्थलों पर आठवीं से १२वीं शती ई० के मध्य सरस्वती की प्रभूत मूर्तियाँ बनीं। जैन शिल्पशास्त्रों में हंसवाहना सरस्वती को चतुर्भुजा और वरदमुद्रा (या वीणा), पद्म, पुस्तक और अक्षमाला के साथ निरूपित किया गया है।[1] दिगम्बर ग्रंथों (**प्रतिष्ठासारोद्धार**) में वाहन के रूप में हंस के स्थान पर मयूर का उल्लेख है।[2] इस प्रकार जैन सरस्वती की लाक्षणिक विशेषतायें पूरी तरह ब्राह्मण सरस्वती से प्रभावित हैं। सरस्वती-मूर्तियों के प्रमुख उदाहरण खजुराहो के अतिरिक्त देवगढ़, कुंभारिया, दिलवाड़ा जैसे स्थलों से ज्ञात हैं। जैन सरस्वती की उत्कृष्टतम कलात्मक मूर्तियां राजस्थान में पल्लू ग्राम (बीकानेर) से मिली हैं।[3] वाहन के संदर्भ में सर्वदा परम्परा के प्रति प्रतिबद्धता नहीं दर्शायी गई है। कुंभारिया के नेमिनाथ मंदिर (श्वेताम्बर) की एक मूर्ति में वाहन मयूर है, जबकि खजुराहो की दिगम्बर परम्परा की मूर्तियों में वाहन के रूप में हंस का अंकन हुआ है। देवगढ़ की मूर्तियों में वाहन के रूप में हंस और मयूर दोनों का अंकन देखा जा सकता है। इन मूर्तियों में सरस्वती के करों में परम्परा के अनुरूप ही पुस्तक, पद्म, अक्षमाला और जलपात्र तथा कभी-कभी वीणा प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में सरस्वती की कुल आठ मूर्तियाँ हैं जिनमें से पाँच पार्श्वनाथ मंदिर पर हैं।[4] अन्य मूर्तियाँ मंदिर तथा स्वतन्त्र उत्तरंगों पर हैं।[5] एक उदाहरण के अतिरिक्त यहाँ सरस्वती को सर्वदा चतुर्भुजा दिखाया गया है और उनके हाथों के आयुध भी लगभग समान हैं। ललितमुद्रा में विराजमान सरस्वती के करों में पुस्तक, वीणा और पद्म प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के मंडप के दक्षिणी अधिष्ठान की रथिकामूर्ति में सरस्वती षड्भुजा हैं। षड्भुजा सरस्वती के ऊपर हाथों में क्रमशः पद्म और पुस्तक हैं, मध्य के दोनों हाथ वीणा वादन में रत हैं तथा नीचे के हाथों में वरदमुद्रा और जलपात्र प्रदर्शित हैं। सरस्वती के पार्श्वों में चामरधारी सेवकों, चरणों के समीप उपासकों तथा ऊपर की ओर लघु जिन आकृति

१. तथा श्रुतदेवतां शुक्लवर्णां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदकमलान्वित-दक्षिणकरां पुस्तकाक्षमालान्वितवामकरां चेति। **निर्वाणकलिका**, श्रुतदेवता, पृ० ३७; **आचारदिनकर**, भाग २, प्रतिष्ठाधिकार, पृ० १५८।

२. शाह, यू० पी०, "दि आइकनोग्राफी आव दि जैन गाडेस सरस्वती", **जर्नल यूनिवर्सिटी आव बाम्बे**, खंड १० (न्यू सिरीज), भाग २, सितम्बर १९४१, पृ० २०५–०६।

३. १२वीं शती ई० की इन मूर्तियों में त्रिभंग में खड़ी चतुर्भुजा सरस्वती हंसवाहना हैं और उनके करों में वरदमुद्रा, नालयुक्त पद्म, पुस्तक और कमण्डलु हैं। द्रष्टव्य, शर्मा, बी० एन०, **जैन प्रतिमायें**, दिल्ली, १९७९, पृ० १५–१६।

४. तीन उदाहरण गर्भगृह और पश्चिमी देवकुलिका के उत्तरंगों पर हैं तथा शेष दो उदाहरण मंडप के उत्तरी और दक्षिणी अधिष्ठान पर हैं।

५. सरस्वती की एक छोटी आकृति पार्श्वनाथ मंदिर के मंडप की दक्षिणी भित्ति की लक्ष्मी मूर्ति के परिकर में आकारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं गंधर्वों की मूर्तियाँ बनी हैं। सरस्वती के साथ हंस वाहन केवल एक उदाहरण में ही आकारित है।[1]

पार्श्वनाथ मंदिर के उत्तरी अधिष्ठान (७९ × ६३.५ से० मी०) की चतुर्भुज मूर्ति में सरस्वती के ऊर्ध्व करों में चक्राकार पद्म हैं और नीचे के दोनों हाथ खंडित हैं। आसन के समीप ही हंस आकारित है। देवी के शीर्ष भाग में तीन लघु जिन आकृतियाँ तथा दोनों पार्श्वों में स्तुतिमुद्रा में तीन उपासकों की आकृतियाँ बनी हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश-द्वार की दो मूर्तियों में सरस्वती के ऊपरी हाथों में चक्राकार पद्म और पुस्तक (या अक्षमाला) हैं तथा निचले हाथों से देवी वीणा वादन कर रही हैं। इस मंदिर की पश्चिमी देवकुलिका के उत्तरंग की मूर्ति भी इन्हीं विशेषताओं वाली है। पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह की दूसरी मूर्ति में निचले हाथों में वीणा के स्थान पर वरदमुद्रा और कमण्डलु हैं। अन्य सभी उदाहरणों में सरस्वती के ऊपरी हाथों में पद्म और पुस्तक तथा नीचले में वीणा (या वरदमुद्रा और कमण्डलु) प्रदर्शित हैं। केवल एक उदाहरण में (पार्श्वनाथ मंदिर की लक्ष्मी मूर्ति) सरस्वती के निचले हाथों में अभयमुद्रा और मातुलिंग हैं।

लक्ष्मी या श्रीदेवी

समृद्धि की देवी लक्ष्मी या श्रीदेवी का जैन ग्रंथों में अनेकशः उल्लेख हुआ है। श्वेताम्बर ग्रन्थों में गजारूढ़ महालक्ष्मी के दोनों हाथों में पद्म का उल्लेख है। पर दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुजा श्रीदेवी का एक हाथ पुष्प तथा दूसरा पद्म से युक्त बताया गया है। लक्ष्मी के साथ वाहन के रूप में गज का उल्लेख जैन परम्परा की विशिष्टता है।[2] लक्ष्मी का एक प्रचलित रूप अभिषेक या गजलक्ष्मी है जिसकी चर्चा **कल्पसूत्र** में महावीर के जन्म के पूर्व उनकी माता त्रिशला द्वारा देखे गये १४ मांगलिक स्वप्नों की सूची में मिलती है। शीर्ष भाग में दो गजों से अभिषिक्त लक्ष्मी को पद्मासीन और दोनों करों में पद्म धारण किए हुए निरूपित किया गया है।[3] **भगवतीसूत्र** में भी एक स्थल पर लक्ष्मी मूर्ति का उल्लेख है।[4] जैन परम्परा की लक्ष्मी (या श्रीलक्ष्मी) तथा गजलक्ष्मी पूरी तरह ब्राह्मण परम्परा से प्रभावित हैं। जैन कला में लक्ष्मी तथा गजलक्ष्मी दोनों की मूर्तियों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। नवीं शती ई० के बाद लक्ष्मी का शिल्पांकन प्रारम्भ हुआ जिसके प्रमुख उदाहरण खजुराहो, देवगढ़, ओसियाँ, कुंभारिया, दिलवाड़ा जैसे स्थलों पर हैं।

खजुराहो में लक्ष्मी की कुल आठ मूर्तियाँ हैं। इनमें से तीन मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मंदिर के मण्डप की उत्तर और दक्षिण की भित्तियों पर तथा शेष मंदिरों के उत्तरंगों पर हैं। पार्श्वनाथ मंदिर की तीन खड़ी मूर्तियों में चतुर्भुजा लक्ष्मी के ऊपरी हाथों में पद्म प्रदर्शित हैं

१. पार्श्वनाथ मंदिर के उत्तरी अधिष्ठान की मूर्ति।

२. भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकनोग्राफी**, दिल्ली, १९७४, (पु० मु०) पृ० १३६।

३. **कल्पसूत्र** ३७।

४. **भगवतीसूत्र**, ११. ११. ४३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और नीचे के हाथों में वरदमुद्रा और शंख (या जलपात्र) हैं। तीनों ही उदाहरणों में दोनों पार्श्वों में सेविकाओं, उपासकों तथा तीर्थंकरों की लघु आकृतियाँ उकेरी हैं। दक्षिणी भित्ति की एक मूर्ति में लक्ष्मी के कंधों के ऊपर सरस्वती और चक्रेश्वरी की भी आकृतियाँ बनी हैं जिनके समीप दो तीर्थंकरों की दो निर्वस्त्र कायोत्सर्ग मूर्तियाँ आकारित हैं। उत्तरंगों पर लक्ष्मी तथा गजलक्ष्मी दोनों ही की आकृतियाँ बनी हैं। एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य में देवी ललितमुद्रा में आसीन है और उनके करों में वरद-या-अभयमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह के प्रवेशद्वार तथा मंदिर १·१४ के उदाहरणों में शीर्षभाग में दो गज आकृतियों को देवी का अभिषेक करते हुए दिखाया गया है।

क्षेत्रपाल

तान्त्रिक प्रभाव के फलस्वरूप जैन धर्म और कला में जिन देवी-देवताओं को प्रवेश मिला उनमें ६४ योगिनियाँ और क्षेत्रपाल मुख्य हैं। जैन साहित्य में यद्यपि ६४ योगिनियों (**आचारदिनकर**) और क्षेत्रपाल दोनों के उल्लेख हैं, किन्तु मूर्त अंकनों में केवल क्षेत्रपाल को ही अभिव्यक्ति मिली। जैन देवकुल में क्षेत्रपाल को ल० १०वीं-११वीं शती ई० में सम्मिलित किया गया। खजुराहो तथा देवगढ़ जैसे दिगम्बर स्थलों पर क्षेत्रपालों का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। गुजरात में तारंगा (मेहसाणा) स्थित अजितनाथ मंदिर (श्वेताम्बर) की पश्चिमी भित्ति पर भी क्षेत्रपाल की एक मूर्ति है। खजुराहो की क्षेत्रपाल मूर्तियाँ प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस स्थल पर न केवल इनकी विविधतापूर्ण स्वतंत्र मूर्तियाँ ही बनीं, बल्कि एक लेखयुक्त उदाहरण में क्षेत्रपाल का नाम भी उत्कीर्ण है। शांतिनाथ मंदिर (१/१) के प्रवेशद्वार के समीप की मूर्ति (के० १/३) में क्षेत्रपाल का नाम "चन्दकाम" अभिलिखित है।

क्षेत्रपाल के प्रतिमानिरूपण से संबन्धित प्रारम्भिक उल्लेख **निर्वाणकलिका** में है। इस ग्रन्थ में अपने-अपने क्षेत्र के नाम वाले बर्बरकेश, विरूप और बड़े-बड़े दाँतों वाले तथा विकराल दर्शन वाले क्षेत्रपाल को निर्वस्त्र और छः हाथों वाला तथा पादुका पर आसीन बताया गया है। क्षेत्रपाल के दक्षिण करों में मुद्गर, पाश और डमरू तथा वाम में शृंखलाबद्ध श्वान्, अंकुश तथा गेडिका (दण्ड) प्रदर्शित हैं।[1] **आचारदिनकर** में बर्बरकेश और लम्बी जटाओं वाले तथा वासुकी नाग के यज्ञोपवीत एवं सिंहचर्म से युक्त क्षेत्रपाल को विंशतिभुज बताया गया है। श्वान् वाहन वाले त्रिनेत्र क्षेत्रपाल प्रेतासन तथा अनेक प्रकार के शस्त्र से सज्जित होंगे। उन्हें आनन्द भैरव आदि ८ भैरवों तथा ६४ योगिनियों से वेष्टित दिखाया जाना चाहिए, यह भी उल्लेख है।[2]

---

१. क्षेत्रपालं क्षेत्रानुरूपनामानं श्यामवर्णं बर्बरकेशमावृत्तपिङ्गनयनं विकृतदंष्ट्रम् पादुकाधिरूढं नग्नं कामचारिणं षट्भुजं मुद्गरपाशडमरूकान्वितदक्षिणपार्णि श्वानाङ्कुशगेडिकायुत्तवाम-पार्णि ·····। **निर्वाणकलिका** २१, पृ० ३८।

२. **आचारदिनकर भाग** २, प्रतिष्ठाधिकार, पृ० १८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ल० ११वीं शती ई० में जैन स्थलों पर क्षेत्रपाल का मूर्त अंकन प्रारम्भ हुआ। खजुराहो में क्षेत्रपाल की कुल ४ मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ ११वीं शती ई० की हैं। एक मूर्ति आदिनाथ मंदिर (११वीं शती ई०) के दक्षिणी अधिष्ठान पर है और अन्य तीन उदाहरणों में एक शान्तिनाथ मंदिर (१/१) में है तथा दो सा० शां जै० क० संग्रहालय (क्र० २३७) में हैं। आदिनाथ मंदिर के उदाहरण में ललितासीन क्षेत्रपाल चतुर्भुज हैं जब कि अन्य उदाहरणों में अष्टभुज क्षेत्रपाल खड़े दिखाये गये हैं। सा० शां० जै० क० सं० की एक मूर्ति में क्षेत्रपाल दस हाथों और सौम्य दर्शन वाले हैं।

आदिनाथ मंदिर की मूर्ति में क्षेत्रपाल के हाथों में गदा, नकुलक, सर्प और फल प्रदर्शित हैं। वाहन के रूप में श्वान् आकारित है जिसे क्षेत्रपाल की ओर देखते हुए बनाया गया है। अन्य उदाहरणों में वाहन के रूप में श्वान् के स्थान पर सिंह का अंकन हुआ है तथा ऊर्ध्व केश क्षेत्रपाल की आकृतियाँ विकराल न होकर सौम्य दर्शन वाली हैं। शांतिनाथ मंदिर के उदाहरण में "चन्दकाम" नाम वाले क्षेत्रपाल की आकृति नृत्य की मुद्रा में उकेरी है। आठ हाथों में से अधिकांश खंडित हैं, किन्तु एक हाथ में खेटक है तथा कुछ हाथों से नृत्य की मुद्रा व्यक्त है। शिव की नटराज मूर्तियों के समान ही यहाँ भी वामपार्श्व में एक नगाड़ा वादक की आकृति बनी है। विभिन्न आभूषणों से अलंकृत इस मूर्ति में नृत्य की गतिशीलता के कारण दुपट्टे को सुन्दर ढंग से लहराते हुए दिखाया गया है। शीर्षभाग में ध्यानस्थ तीर्थंकरों की दो मूर्तियाँ भी बनी हैं। सिंह वाहन की आकृति यहाँ अत्यन्त उग्ररूप में उत्कीर्ण है।

सा० शां० जै० क० सं० की मूर्तियों में क्षेत्रपाल त्रिभंग में सप्तरथ पीठिका पर खड़े हैं। उनके एक अवशिष्ट पाणि में गदा और दूसरे में शृंखला (या तर्जनीमुद्रा) हैं। शीर्षभाग में ध्यानस्थ तीर्थंकरों की ३ लघु मूर्तियाँ, दो उड्डीयमान मालाधर और पार्श्वों में सेवक-सेविकाओं की आकृतियाँ बनी हैं। सिंहवाहन के गले में बँधी शृंखला का ऊपरी सिरा क्षेत्रपाल के हाथ में था, जो वर्तमान में टूटा है। क्षेत्रपाल यहाँ वनमाला, धोती, हार, कुण्डल आदि से शोभित हैं।

खजुराहो की उपर्युक्त क्षेत्रपाल मूर्तियाँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं; जिनमें से एक में वाहन के रूप में श्वान् और दूसरे में सिंह का अंकन हुआ है। क्षेत्रपाल का नृत्यरत रूप में अंकन और साथ ही उसका नामोल्लेख क्षेत्रीय परम्परा के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व का है। एक ओर श्वेताम्बर ग्रन्थों में क्षेत्रपाल के निर्वस्त्र निरूपण का निर्देश और दूसरी ओर खजुराहो की दिगम्बर परम्परा की मूर्तियों में उनका वस्त्र सज्जित होना विशेष महत्त्वपूर्ण है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से यहाँ देवगढ़ के मन्दिर सं० १ और ४ के स्तम्भों की १२वीं शती ई० की क्षेत्रपाल मूर्तियों का उल्लेख भी प्रासंगिक होगा। दोनों उदाहरणों में शृंखला से बँधा श्वान् प्रदर्शित है। शृंखला का ऊपरी छोर क्षेत्रपाल के एक हाथ में है। देवगढ़ के मन्दिर सं० ४ की मूर्ति में अन्य तीन हाथों में गदा, दण्ड और जलपात्र तथा मन्दिर सं० १ की मूर्ति में गदा, सर्प और डमरू दिखाये गये हैं। मंदिर सं० १ की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानक मूर्ति निर्वस्त्र है जबकि मंदिर सं० ४ की मूर्ति में क्षेत्रपाल ललितमुद्रा में पीठिका पर आसीन हैं। खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति विवरण की दृष्टि से देवगढ़ की उपर्युक्त मूर्तियों के समान है। किन्तु खजुराहो की अन्य अष्टभुजी क्षेत्रपाल मूर्तियाँ किसी स्वतन्त्र क्षेत्रीय परम्परा से निर्दिष्ट प्रतीत होती हैं।

अष्ट-दिक्पाल

दिशाओं के स्वामी के रूप में दिक्पालों या लोकपालों की कल्पना अत्यन्त प्राचीन है। ब्राह्मण धर्म के साथ ही जैन धर्म और कला में भी इन्हें ल० आठवीं–नवीं शती ई० में मान्यता मिली। जैन ग्रन्थों में वर्णित दिक्पालों के नाम और लक्षण पूरी तरह ब्राह्मण परम्परा से प्रभावित हैं। ल० आठवीं शती में जैन मंदिरों पर इन दिक्पालों का अंकन प्रारम्भ हुआ। ओसियाँ के महावीर मंदिर पर अष्ट-दिक्पालों का प्रारम्भिकतम (८वीं–९वीं शतीई०) अंकन हुआ है। ब्राह्मण धर्म में सामान्यतः आठ और कभी-कभी दस दिक्पालों का उल्लेख हुआ है किन्तु जैन ग्रन्थों में सर्वदा दस दिक्पालों के ही नाम वर्णित हैं। **निर्वाण-कलिका, मन्त्राधिराजकल्प** (ल० १२वीं–१३वीं शती ई०), **आचारदिनकर** (१४११ ई०), **प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार** एवं **प्रतिष्ठातिलकम्** में पूर्व दिशा के स्वामी के रूप में इन्द्र, दक्षिण-पूर्व के अग्नि, दक्षिण के यम, दक्षिण-पश्चिम के निर्ऋति (या नैर्ऋत), पश्चिम के वरुण, उत्तर-पश्चिम के वायु, उत्तर के कुबेर, उत्तर-पूर्व के ईशान, आकाश के ब्रह्मा (या सोम) और पाताल के धरणेन्द्र (या नागदेव) के उल्लेख हैं। इन ग्रन्थों में इनकी लाक्षणिक विशेषतायें भी विस्तार से वर्णित हैं।[1] यद्यपि जैन ग्रन्थों में सर्वदा दस दिक्पालों का ही निरूपण हुआ है, किन्तु जैन मन्दिरों पर अष्टदिक्पालों का अंकन ही लोकप्रिय था। दस दिक्पालों के अंकन का एकमात्र ज्ञात उदाहरण धणेराव (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (१०वीं शती ई०) पर है। इस मन्दिर में ब्रह्मा और धरणेन्द्र की आकृतियाँ गूढ़मण्डप के प्रवेशद्वार पर बनी हैं।[2] विमल वसही में अष्ट-दिक्पालों के पाँच समूह हैं।

खजुराहो के पार्श्वनाथ एवं आदिनाथ जैन मन्दिरों में अष्ट-दिक्पालों के तीन समूह आकारित हैं।[3] इनमें दिक्पालों की चतुर्भुज आकृतियाँ पारम्परिक वाहनों के साथ त्रिभंग में खड़ी हैं। जैन मन्दिरों की दिक्पाल मूर्तियाँ खजुराहो के ब्राह्मण मन्दिरों की दिक्पाल मूर्तियों से पूरा साम्य रखती हैं। यहाँ इन मूर्तियों का स्वतन्त्र वर्णन भी अपेक्षित है।

इन्द्र—करण्डमुकुट से शोभित इन्द्र का वाहन गज है और उनके हाथों में पद्म, अंकुश,

---

१. शाह, यू० पी०, "सम माइनर जैन डीटीज-मातृकाज ऐण्ड दिक्पालज," **जर्नल एम० एस० यूनिवर्सिटी आव बड़ौदा,** खण्ड ३०, अंक १, १९८१, पृ० ८४–१००।

२. तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद एवं गिरि, कमल, "अष्टदिक्पालज ऐट विमल वसही", **जैन जर्नल** (कलकत्ता), खण्ड १७, अंक ३, जनवरी १९८३, पृ० १०३–०८।

३. पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप तथा गर्भगृह की भित्तियों पर अष्टदिक्पालों के दो समूह आकारित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्म (या सर्प) और वज्र हैं।[1] दिगम्बर ग्रन्थों में इन्द्र के साथ केवल गज वाहन और करों में वज्र और हेति का उल्लेख हुआ है।[2]

अग्नि—उदरबंध, ज्वालामय प्रभामण्डल, श्मश्रु, मूछों तथा जटामुकुट से शोभित अग्नि घटोदर हैं और उनका वाहन मेष है। अग्नि के हाथों में वरद (या अभय)—अक्षमाला, स्रुक, पुस्तक और जलपात्र हैं।[3] दिगम्बर ग्रन्थों में अग्नि को मेष वाहन के साथ जलपात्र और अक्षमाला लिए निरूपित किया गया है।[4]

यम—छोटे श्मश्रु तथा मूँछों से युक्त भयंकर दर्शन वाले यम के दो दाँत बाहर की ओर निकले दिखाए गए हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप की मूर्ति में यम का मस्तक कपाल और सर्प से अलंकृत है। इस उदाहरण में महिष वाहन वाले यम के तीन हाथों में खट्वांग, पद्म और पुस्तक हैं तथा चौथा हाथ कटि पर स्थित है जिस पर कुक्कुट की आकृति बनी है। पार्श्वनाथ मंदिर की गर्भगृह-भित्ति की मूर्ति में वाहन महिष की अपेक्षा मेष जैसा दिखता है। यम की निचली दाहिनी भुजा कटि पर है तथा शेष में पुस्तक, सर्प और खट्वांग हैं। आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में भी वाहन मेष जैसा ही है और दो अवशिष्ट वाम करों में घण्टा और पद्म दिखाये गये हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में महिषारूढ़ यम के हाथों में दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है।[5] उल्लेखनीय है कि खजुराहो में यम के निरूपण में पर्याप्त स्वरूपगत भेद प्राप्त होता है। यह तथ्य ब्राह्मण मन्दिरों की यम मूर्तियों के अध्ययन से भी स्पष्ट है जिनमें खट्वांग, कपाल और पुस्तक के साथ सर्प, कुक्कुट, डमरू, घण्टा, पद्म आदि भी प्रदर्शित हैं।

निर्ऋति—लम्बीमाला तथा जटाजूट से शोभित निर्ऋति निर्वस्त्र हैं। उनके गर्दन और हाथ सर्पालंकृत हैं। वाहन के रूप में श्वान् तथा हाथों में खड्ग, चक्राकार पद्म, सर्प और शिरस् प्रदर्शित हैं। आदिनाथ मंदिर की मूर्ति में ऊपर के दाहिने हाथ में सर्प के स्थान पर पद्म है। दिगम्बर ग्रन्थों में निर्ऋति का वाहन रीछ (?) बताया गया है और हाथों में मुद्गर और वज्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[6]

वरुण—किरीटमुकुट से अलंकृत वरुण के समीप ही मकर वाहन की आकृति भी उकेरी है। उनके तीन हाथों में पुस्तक (या पाश), चक्राकार पद्म और जलपात्र (या

---

१. पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति में निचला दाहिना हाथ कटि पर स्थित है और आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में केवल एक ही हाथ शेष है, जिससे वरदमुद्रा व्यक्त है।

२. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ६. ६५; **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १८७।

३. आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में केवल दो दाहिने हाथ ही शेष हैं, जिनमें स्रुक और वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं।

४. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १८८।

५. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १८९।

६. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १९०; शाह, यू० पी०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० ९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नकुलक) तथा एक हाथ कटयवलंबित है।[1] दिगम्बर ग्रन्थों में मकरगाह या करिमकर वाहन वाले वरुण के हाथ में केवल पाश (या नागपाश) का उल्लेख हुआ है।[2]

वायु

करण्डमुकुट और मृग वाहन वाले वायु के करों में वरदमुद्रा, अंकुश, ध्वज और जलपात्र दिखाया गया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह-भित्ति की मूर्ति के हाथों में गदा, ध्वज, दण्ड और जलपात्र प्रदर्शित हैं।[3] दिगम्बर ग्रन्थों में वायु को मृगारूढ़ बताया गया है।[4]

कुबेर

बृहदजठर कुबेर करण्डमुकुट से युक्त हैं। उनके वाहन के रूप में घट का अंकन विशेष महत्व का है क्योंकि अन्यत्र वाहन के रूप में गज का अंकन हुआ है। कुबेर की भुजाओं में बीजपूरक (या कट्यवलंबित), चक्राकार पद्म, पद्म (या पुस्तक) और धन का थैला प्रदर्शित हैं।[5] जैन ग्रन्थों में शक्तिपाणि कुबेर का वाहन गज (?) या पुष्पक विमान बताया गया है।[6]

ईशान्

जटामुकुट से शोभित ईशान् का वाहन नन्दी है। पार्श्वनाथ मंदिर के मण्डप के उदाहरण में उनके हाथों में वरदाक्ष, शक्ति सर्प एवं जलपात्र तथा गर्भगृह के उदाहरण में त्रिशूल-सर्प और पद्म हैं।[7] दिगम्बर शिल्पशास्त्रों में वृषभारूढ़ ईशान् को सर्पालंकृत और उमा सहित निरूपित किया गया है और उनके करों में त्रिशूल (या शूल) और कपाल के प्रदर्शन का उल्लेख किया गया है।[8]

इस प्रकार उपर्युक्त दिक्पाल मूर्तियाँ यद्यपि वाहनों तथा मुख्य आयुधों के सन्दर्भ में दिगम्बर ग्रन्थों के निर्देशों का पालन करती हैं किन्तु उनकी अन्य विशेषताएँ पूरी तरह खजुराहो के ब्राह्मण मंदिरों की दिक्पाल मूर्तियों से प्रभावित हैं।[9]

---

१. आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में चारों हाथ खण्डित हैं।
२. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १९१।
३. आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में केवल एक हाथ अवशिष्ट है जो वरदमुद्रा में है।
४. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १९२।
५. आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में चारों हाथ खण्डित हैं।
६. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १९३; शाह, यू० पी०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० ९७।
७. देवता का एक हाथ खंडित है। आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में दो अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा और त्रिशूल प्रदर्शित हैं।
८. **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३. १९४; प्रतिष्ठासारसंग्रह ६. ९; शाह, यू०पी०, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० ९८।
९. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, अवस्थी, रामाश्रय, **खजुराहो की देव प्रतिमायें**, आगरा, १९६७, पृ० २०७–३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवग्रह

भारत के विभिन्न भागों में नवग्रह पूजन की परम्परा प्राचीन काल से लोकप्रिय रही है। याज्ञवल्क्य स्मृति में समृद्धि, शांति, कृषि, दीर्घायु एवं शत्रु विनाश के लिए ग्रह यज्ञ करने तथा नवग्रह प्रतिमाओं के पूजन का विधान दिया गया है। नवग्रहों में सूर्य प्रधान हैं; अन्य ग्रह चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु हैं। ज्योतिष्क देवों के रूप में ग्रहों का उल्लेख जैन धर्म में पर्याप्त प्राचीन है। ल० ११वीं-१२वीं शती ई० में जैन ग्रन्थों में नवग्रहों के निरूपण से संबंधित उल्लेख प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन ग्रहों की स्वतंत्र मूर्तियाँ नहीं बनीं किन्तु जैन मंदिरों के प्रवेश-द्वारों पर नवग्रहों का सामूहिक अंकन आठवीं-नवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। नवीं शती ई० के बाद जिन मूर्तियों के परिकर में भी नवग्रहों का अंकन हुआ है। श्वेताम्बर स्थलों की अपेक्षा दिगम्बर स्थलों पर इनका अंकन अधिक लोकप्रिय था। जैन स्थलों पर नवग्रहों का निरूपण पूरी तरह ब्राह्मण परम्परा से प्रभावित रहा है। खजुराहो में पार्श्वनाथ और घण्टई मंदिरों के प्रवेश-द्वारों के अतिरिक्त आठ अन्य स्वतंत्र उत्तरंगों[1] पर भी द्विभुज नवग्रहों का अंकन हुआ है।

पार्श्वनाथ मंदिर के मण्डप, गर्भगृह और पश्चिम के संयुक्त जिनालय के उत्तरंगों पर नवग्रहों के तीन समूह हैं। तीनों उदाहरणों में नवग्रहों की खड़ी आकृतियाँ द्विभुज हैं। समभंग में अवस्थित सूर्य के दोनों हाथों में सनाल पद्म प्रदर्शित हैं। बाद की छः आकृतियाँ (चन्द्र से शनि) त्रिभंग में हैं और उनके दाहिने हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है जबकि बाँयें में जलपात्र है। राहु ऊर्ध्वकाय तथा बिखरी केशराशि वाले हैं। केतु अंजलि-मुद्रा में हैं और उसके कटि के नीचे का भाग सर्पाकार है तथा मस्तक पर तीन सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है। उल्लेखनीय है कि अन्य उदाहरणों में भी नवग्रहों के साथ यही विशेषतायें प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के अतिरिक्त तीन अन्य उदाहरणों में भी नवग्रहों की खड़ी मूर्तियाँ बनी हैं। शेष में सूर्य को उत्कूटिकासन तथा अन्य ग्रहों को ललितमुद्रा में निरूपित किया गया है। ऊर्ध्वकाय राहु सभी में विस्फारित नेत्र, ऊर्ध्वकेश और विकराल दर्शन वाले हैं तथा उनके दोनों हाथ तर्पण-मुद्रा में दिखाए गए हैं। केतु की आकृति सदैव सर्पाकार है। किरीटमुकुट से शोभित सूर्य को कुछ उदाहरणों में उपानह से युक्त दिखाया गया है और उनके चरणों के समीप कभी-कभी छाया की लघु आकृति भी बनी है। यहाँ उल्लेखनीय है कि यद्यपि नवग्रह फलकों पर सूर्य का अंकन खजुराहो सहित देवगढ़ तथा आस-पास के अन्य दिगम्बर स्थलों पर हुआ है, किन्तु सूर्य को स्वतंत्र देवता के रूप में जैन देवकुल में स्थान नहीं प्राप्त हुआ, जबकि विष्णु, शिव, कार्त्तिकेय, ब्रह्मा तथा अन्य कई ब्राह्मण देवों को जैन देवकुल में शासन-देवताओं एवं स्वतंत्र देवों (ब्रह्मशांति एवं कपर्दि यक्षों) के रूप में मान्यता मिली। बहुत संभव है सूर्य के अब्यंग, वर्म और उपानह जैसे विदेशी तत्वों से युक्त होने के कारण ही उन्हें जैन धर्म में स्वतंत्र देवता के रूप में प्रवेश नहीं मिला। सूर्य के अतिरिक्त छः ग्रहों (चन्द्र

१. नवग्रहों की आकृतियों से युक्त दो स्वतंत्र उत्तरंग क्रमशः जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १४६७) तथा जैन धर्मशाला के अहाते में हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से शनि) को पूर्ववत् अन्य उदाहरणों में भी अभयमुद्रा और जलपात्र के साथ दिखाया गया है। राहु और केतु की आकृतियाँ पार्श्वनाथ मंदिर की मूर्तियों के सदृश्य हैं। केवल जैन धर्मशाला के आहाते की मूर्ति में केतु के हाथ अंजलिमुद्रा में न होकर अभयमुद्रा और फल से युक्त हैं।

खजुराहो के ब्राह्मण देव मंदिरों के उदाहरणों में भी सूर्य के दोनों हाथों में सनाल पद्म और राहु तथा केतु के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के हाथों में अभयमुद्रा और जलपात्र हैं। ऊर्ध्वकाय राहु के हाथ तर्पणमुद्रा में और केतु के अंजलिमुद्रा में हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन मंदिरों पर नवग्रहों का अंकन ब्राह्मण मंदिरों के उदाहरणों से प्रभावित है। साथ ही खजुराहो-शिल्पी ने नवग्रहों के निरूपण में सूर्य, राहु और केतु के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में शास्त्रीय विवरणों का पालन नहीं किया, यह भी स्पष्ट है।[1] उल्लेखनीय है कि नवग्रहों का स्वतंत्र और पारम्परिक लक्षणों के साथ निरूपण कोणार्क के सूर्य मंदिर (पुरी, उड़ीसा) के समीप के नवग्रह मंदिर मूर्तियों (१३वीं शती ई०) में हुआ है।

जैन ग्रन्थों में सूर्य को दोनों हाथों में पद्म से युक्त और सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ बताया गया है।[2] अन्य छः ग्रहों (चन्द्र से शनि) को अक्षमाला और जलपात्र धारण किये निरूपित किया गया है।[3] पर कुछ ग्रंथों में इनके लिए अलग-अलग लक्षणों का भी विधान है: चन्द्र के हाथ में अमृतघट (या शूल), मंगल के हाथ में शूल, बुध के हाथ में पुस्तक (वाहन हंस या पद्म), बृहस्पति के हाथ में पुस्तक (वाहन हंस या पद्म), शुक्र के हाथ में त्रिशूल, सर्प, पाश और अक्षमाला (वाहन अश्व)[4] तथा शनि के हाथ में परशु (वाहन कमठ)[5] के उल्लेख हैं। राहु का दो रूपों में उल्लेख हुआ है, एक में सिंह वाहन वाले तथा परशुपाणि हैं और दूसरे में ऊर्ध्वकाय और दोनों हाथ अर्धमुद्रा (तर्पणमुद्रा) में किए हैं।[6] केतु को धूम्रवर्ण और सर्पवाहन वाला तथा हाथों में अक्षमाला और जलपात्र (या सर्प) से युक्त निरूपित किया गया है।[7] इस प्रकार जैन ग्रन्थों के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नवग्रहों के निरूपण में स्वरूपगत भेद की बात स्वीकार की गई थी।[8] किन्तु खजुराहो, देवगढ़ तथा अन्यत्र से प्राप्त मूर्त अभिव्यक्तियों में केवल सूर्य, राहु और केतु के प्रसंग में ही स्वरूपगत भेद प्रकट हुआ है।

---

१. अवस्थी, रामाश्रय, **पूर्वनिर्दिष्ट**, पृ० १९४–९६।

२. **आचारदिनकर**, भाग २; **प्रतिष्ठाधिकार**, पृ० १७९।

३. **निर्वाणकलिका** २०. २–७।

४. **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ६. ६।

५. **आचारदिनकर**, भाग २, पृ० १८०।

६. **निर्वाणकलिका** २०. ८; **आचारदिनकर**, भाग २, पृ० १८०।

७. **निर्वाणकलिका** २०. ९; **आचारदिनकर**, भाग २, पृ० १८०।

८. **निर्वाणकलिका** में चन्द्र से शनि तक ६ ग्रहों को समान लक्षणों वाला निरूपित किया गया है और उनके करों में अक्षमाला और जलपात्र का उल्लेख हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगा-यमुना

गुप्तकाल में मंदिरों की द्वारशाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना का निरूपण प्रारम्भ हुआ और उसके बाद सभी क्षेत्रों में मंदिरों की द्वारशाखाओं पर इनका नियमित अंकन हुआ। खजुराहो एवं अन्य क्षेत्रों के जैन मंदिरों पर भी गंगा और यमुना की मूर्तियाँ निरूपित हुईं। खजुराहो में घण्टई, आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ मंदिरों के प्रवेश-द्वारों पर इनकी मूर्तियाँ हैं। घण्टई मंदिर के उदाहरण में द्विभुज मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की खड़ी आकृतियों के दोनों हाथ नष्ट हो चुके हैं। पार्श्वनाथ मंदिर में गंगा और यमुना की तीन-तीन आकृतियाँ हैं जो क्रमशः अर्धमण्डप, गर्भगृह और पश्चिमी देवकुलिका पर हैं। इनमें मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना विभिन्न आभूषणों से सज्जित एवं द्विभुज हैं। अर्धमण्डप के उदाहरणों में उनके दोनों हाथ खंडित हैं जबकि गर्भगृह के उदाहरण में एक अवशिष्ट भुजा नीचे लटकती हुई दिखाई गई है। पश्चिमी देवकुलिका के उदाहरण में केवल यमुना का एक हाथ सुरक्षित है जिसमें चक्राकार पद्म प्रदर्शित है। आदिनाथ मंदिर के उदाहरण में गंगा (बायें) और यमुना (दाहिने) चतुर्भुजा हैं। यमुना के चारों हाथ खंडित हैं किन्तु गंगा के एक अवशिष्ट कर में पद्म प्रदर्शित है। इनके समीप ही मकर और कूर्म वाहनों की आकृतियाँ भी बनी हैं।

अष्टवसु या गोमुख यक्ष (?)

आदिनाथ मंदिर के मंडोवर के दिक्पाल कोणों पर अष्टवसुओं या गोमुख यक्ष की आठ स्थानक मूर्तियाँ बनी हैं। इन आकृतियों के गोमुख होने के कारण इन्हें ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष का अंकन भी माना जा सकता है। खजुराहो में १०वीं शती ई० के बाद के ब्राह्मण मंदिरों पर भी इसी प्रकार आठ कोणों पर वृषमुख अष्टवसुओं का अंकन हुआ है जिसके उदाहरण चतुर्भुज एवं दूलादेव मंदिरों तथा वराह मंदिर के विशाल वराह प्रतिमा के शरीर पर देखे जा सकते हैं। ब्राह्मण मंदिरों की मूर्तियों में चतुर्भुज अवष्टसुओं को आदिनाथ मंदिर के समान ही त्रिभंग में खड़ा, वृषमुख और वृषभवाहन वाला दिखाया गया है तथा उनके करों में वरदमुद्रा (या वरदाक्ष), त्रिशूल (या स्रुक या परशु), पुस्तक-पद्म और जलपात्र हैं। आदिनाथ मंदिर की वृषमुख चतुर्भुज मूर्तियाँ त्रिभंग में वृषभवाहन के साथ निरूपित हैं। उनके हाथों में वरदमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म (या परशु), चक्राकार सनाल पद्म और जलपात्र प्रदर्शित हैं। ये आकृतियाँ तीन हारों, उपवीत, लम्बी माला, मेखला तथा धोती आदि से सुशोभित हैं। दिगम्बर ग्रंथों में ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष का वाहन वृषभ बताया गया है, और उनके हाथों में परशु, फल, अक्षमाला और वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं।

—; ० ;—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–८

साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो

[सा० शां० जै० क० सं०]

जैन मन्दिर समूह एवं धर्मशाला के प्रवेश-द्वार के समीप ही कुछ समय पूर्व साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय का निर्माण हुआ है। संग्रहालय में खजुराहो से मिली १०वीं से १३वीं शती ई० के मध्य की शताधिक जैन मूर्तियाँ हैं। संग्रहालय की विविधतापूर्ण जैन मूर्तियों में विभिन्न तीर्थंकरों (ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुपार्श्वनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ और महावीर), यक्ष एवं यक्षियों (कुबेर यक्ष एवं चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती यक्षी) तथा बाहुबली, क्षेत्रपाल, दिक्पाल एवं जैन आचार्यों आदि की मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

संग्रहालय का प्रवेश-द्वार ११वीं शती ई० के प्राचीन जैन मन्दिर के प्रवेशद्वार से अलंकृत है। प्रवेश-द्वार के दोनों ओर दो विशाल मकरमुख देखे जा सकते हैं। प्राचीन मन्दिर के प्रवेश-द्वार के ललाटबिम्ब में चतुर्भुजा चक्रेश्वरी (गरुडवाहना) और उत्तरंग के दाहिने छोर पर अम्बिका (आम्रलुम्बि, पद्म, पुस्तक एवं बालक से युक्त) और बायें छोर पर लक्ष्मी (तीन हाथों में अभयमुद्रा, पद्म और पद्म) की आकृतियाँ निरूपित हैं। उत्तरंग पर ही गोमुख यक्ष सहित नवग्रहों, मालाधारी विद्याधरों, गन्धर्वों तथा द्वारशाखाओं पर आलिंगनबद्ध युगलों एवं गंगा और यमुना की अत्यन्त अलंकृत और भव्य मूर्तियाँ उकेरी हैं।

प्रवेश-द्वार के भीतरी भाग में भी किसी प्राचीन जैन मन्दिर का उत्तरंग (११वीं शतीई०) लगाया गया है। उत्तरंग के मध्य में सुपार्श्वनाथ की ध्यानस्थ तथा दोनों छोरों पर पद्मावती एवं सिंहवाहना अम्बिका की आकृतियाँ बनी हैं। उत्तरंग पर ६ तीर्थंकरों तथा नवग्रहों की द्विभुज और स्थानक आकृतियाँ भी देखी जा सकती हैं।

संग्रहालय के प्रवेश-द्वार के दोनों ओर (भीतर की ओर) क्षेत्रपाल की ११वीं शती ई० की दो मूर्तियाँ हैं। दाहिनी ओर की मूर्ति (क्र० २३७, २' ६" × १' ५") त्रिभंग में अष्टभुज क्षेत्रपाल की है। भयंकर दर्शन, विस्फारित नेत्रों तथा बिखरे केश वाले क्षेत्रपाल के एक हाथ में गदा का कुछ भाग शेष है और एक हाथ में शृंखला स्पष्ट है जिससे उसका वाहन बँधा हुआ है। यह वाहन सम्भवतः सिंह है। मूर्ति के परिकर में तीन ध्यानस्थ जिन आकृतियाँ तथा चामरधर एवं मालाधर दिखाए गए हैं। क्षेत्रपाल की दूसरी मूर्ति (२' २" × १' ९') दस हाथों वाली और त्रिभंग में है और उनका वाहन सम्भवतः सिंह है। मूर्ति के केवल दो हाथ सुरक्षित हैं जिनमें से एक में गदा है और दूसरा तर्जनीमुद्रा में है। उपर्युक्त मूर्ति की भयंकरता इस मूर्ति में नहीं दिखाई देती है। इस मूर्ति में क्षेत्रपाल को सौम्य एवं शांत भाव वाला तथा मालाधारी सेविकाओं, चामरधरों एवं उपासकों से वेष्टित दिखाया गया है।

कक्ष १ : ऋषभनाथ (क्र० १६) : इस विशाल मूर्ति में ऋषभनाथ को चन्द्रशिला के ऊपर ध्यानस्थ दिखाया गया है। मूलनायक का मुख भरा हुआ और किञ्चित् वृत्ताकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। मुख पर मन्दस्मित एवं चिन्तन का भाव स्पष्ट है। मूलनायक की केश-रचना छोटे-छोटे सुन्दर गुच्छकों के रूप में दिखायी गयी है जो जटाजूट के रूप में (उष्णीष) बँधी है। इस मूर्ति में वृषभ-लांछन और अष्टप्रातिहार्यों के अतिरिक्त परिकर में १९ अन्य तीर्थंकर आकृतियाँ भी सुन्दर ढंग से संयोजित हैं। मूलनायक के दाहिनी ओर पार्श्वनाथ और बायीं ओर सुपार्श्वनाथ तथा ऊपरी भाग में ३१ तीर्थंकरों की आकृतियाँ अलग से रखी गयी हैं जो ऋषभनाथ की मूर्ति की भव्यता और विशालता में वृद्धि करती है। यक्ष और यक्षी के रूप में चार हाथों वाले गोमुख और चक्रेश्वरी आमूर्तित हैं। यह मूर्ति लगभग १०वीं-११वीं शती ई० की है।

पार्श्वनाथ (क्र० ५४१) : १०वीं शती ई० की इस मूर्ति में पार्श्वनाथ को कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है।

पार्श्वनाथ (क्र० ५४२, १०वीं शती ई०) : इस उदाहरण में भी पार्श्वनाथ को सात सर्पफणों के छत्र से युक्त और कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है।

कक्ष २ : ऋषभनाथ (क्र० ७१, १०वीं शती ई०) : यह मूर्ति पर्याप्त खण्डित है। इस मूर्ति (३' १'' × २' ८'') में ध्यानस्थ तीर्थंकर के साथ वृषभ-लांछन एवं यक्ष-यक्षी के रूप में गोमुख और चक्रेश्वरी दिखाए गये हैं। सिंहासन पर दो चतुर्भुजा देवियाँ भी निरूपित हैं जिनमें से एक वज्रांकुशा (एक हाथ में अंकुश) और दूसरी लक्ष्मी या गान्धारी (हाथ में पद्म) हैं। परिकर में दो कायोत्सर्ग तीर्थंकर आकृतियाँ भी बनी हैं।

अजितनाथ (क्र० ३५४, ११वीं शती ई०) : यह मूर्ति भी पर्याप्त खण्डित है। सिंहासन के नीचे गज-लांछन और सिंहासन छोरों पर चतुर्भुज यक्ष और यक्षी का अंकन हुआ है। यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं धन का थैला और मकरवाहना यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं तर्जनीमुद्रा हैं। इस मूर्ति में सिंहासन के ऊपर स्थित आसन अत्यन्त अलंकृत है।

अजितनाथ (क्र० २०, ११वीं शती ई०) : इस मूर्ति (३' × २' ५') में मूलनायक का आसन अत्यन्त अलंकृत है और सिंहासन के मध्य में गज-लांछन भी उत्कीर्ण है। अष्टप्रातिहार्यों के स्थान पर पार्श्वनाथ एवं दो अन्य तीर्थंकरों की आकृतियाँ दिखायी गयी हैं जिनमें से दाहिनी ओर की तीर्थंकर आकृति को अश्व-लांछन के आधार पर सम्भवनाथ से पहचाना जा सकता है।

कक्ष ३ : सम्भवनाथ (क्र० ५०, ११वीं शती० ई०) : इस ध्यानस्थ मूर्ति में अष्टप्रातिहार्यों एवं परिकर में ६ तीर्थंकर आकृतियों का अंकन हुआ है। सिंहासन पर अश्व-लांछन भी बना हुआ है। इस मूर्ति में यक्ष-यक्षी दो हाथों वाले हैं। यक्ष के हाथों में गदा और पर्स तथा यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा और पद्म प्रदर्शित हैं।

सम्भवनाथ (क्र० १६२, ११वीं शती ई०) : इस कायोत्सर्ग मूर्ति में अश्व-लांछन सुरक्षित है।

अभिनन्दन : काले पत्थर की विक्रम सम्वत् १२१५ (११५८ ई०) की ध्यानस्थ मूर्ति में अभिनन्दन का नाम भी उत्कीर्ण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहुबली (११वीं शती ई०) : बाहुबली मूर्ति (१' १०" × १' २") में केवल घुटनों के नीचे का भाग ही अवशिष्ट है। बाहुबली के शरीर से लिपटी हुई माधवी के दोनों छोर पार्श्वों में खड़ी विद्याधरियों के हाथों में दिखाए गए हैं। परिकर में सात तीर्थंकरों की आकृतियाँ भी बनीं हैं। सिंहासन पर कायोत्सर्ग में खड़े बाहुबली के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। बाहुबली के साथ यक्ष और यक्षी का अंकन एक दुर्लभ विशेषता है। यक्ष और यक्षी के रूप में गोमुख और चक्रेश्वरी आकारित हैं जो मूलतः ऋषभनाथ के यक्ष और यक्षी हैं। द्विभुज गोमुख के हाथों में फल एवं धन का थैला तथा चतुर्भुजा गरुडवाहना चक्रेश्वरी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, चक्र और शंख हैं।

सम्भवनाथ (क्र० ३८, ११वीं शती ई०) : इस ध्यानस्थ मूर्ति (२' ८" × १' ५") में अश्व-लांछन, अष्टप्रातिहार्य एवं द्विभुज यक्ष-यक्षी का अंकन हुआ है।

कक्ष ४ : स्तम्भ भाग—इसके एक ओर अर्धचन्द्र-लांछन और दूसरी ओर स्वस्तिक-लांछन वाली चन्द्रप्रभ और सुपार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

ऋषभनाथ (१०वीं शती ई०) : इस ध्यानस्थ मूर्ति (२' ७" × १' ११") में जटा-मुकुट के रूप में ऋषभनाथ के केशों की बनावट विशेष उल्लेखनीय है। इस मूर्ति के परिकर में कई तीर्थंकर आकृतियाँ बनी हैं और दोनों ओर पाँच सर्पफणों के छत्र वाली सुपार्श्वनाथ की दो कायोत्सर्ग मूर्तियाँ अवस्थित हैं। सुपार्श्वनाथ के कन्धों पर जटाओं का अंकन उल्लेखनीय है। मूलनायक के यक्ष-यक्षी चतुर्भुज गोमुख (अभयमुद्रा, परशु, पुस्तक एवं फल) एवं चक्रेश्वरी (गरुडवाहना तथा करों में अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख) हैं।

विमलनाथ (क्र० २८६, १०वीं शती ई०) : इस ध्यानस्थ मूर्ति (२' १" × १' ३") में सिंहासन के ऊपर का आसन अत्यन्त अलंकृत है। सिंहासन पर वराह-लांछन एवं द्विभुज यक्ष और यक्षी उत्कीर्ण हैं। छोटे-छोटे घुमावदार छल्लों के रूप में प्रदर्शित मूलनायक की केश रचना अत्यन्त सुन्दर है। विशेषतः अलंकृत प्रभामण्डल एवं त्रिछत्र के अतिरिक्त परिकर में कई तीर्थंकर आकृतियाँ भी बनी हैं।

शांतिनाथ (क्र० ३९, ११वीं शती ई०) : ध्यानमुद्रा में विराजमान शांतिनाथ के दाहिने पार्श्व में अज-लांछन से युक्त कुंथनाथ और बायीं ओर पद्म-लांछन वाली पद्मप्रभ की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं (१' ११" × १' ७")।

स्तम्भ भाग (क्र० ४५३)—स्तंभ के दो ओर दो तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ उकेरी हैं।

सुपार्श्वनाथ (दो उदाहरण : एक का क्रमांक ५११) : दोनों ही उदाहरणों में पाँच सर्पफणों के छत्र वाले सुपार्श्वनाथ के केवल मस्तक अवशिष्ट हैं।

कक्ष ५ : नेमिनाथ (क्र० १४, १० वीं शती ई०) : सिंहासन पर विराजमान नेमिनाथ के साथ शंख-लांछन और यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वाह्ण एवं सिंहवाहना अम्बिका की आकृतियाँ दिखायी गयी है (४' ५" × २' ८")। इस मूर्ति में आसन, प्रभामण्डल एवं त्रिछत्र अत्यधिक अलंकृत हैं। अष्टप्रातिहार्यों के अतिरिक्त गज-व्याल-मकर अलंकरण एवं परिकर में १८ तीर्थंकर मूर्तियाँ भी बनी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभनाथ (क्र० १०३, ११वीं शती ई०) : इस ध्यानस्थ मूर्ति (५'१'' × ३'१'') में वृषभ-लांछन और चतुर्भुज गोमुख यक्ष एवं गरुडवाहना चक्रेश्वरी की आकृतियाँ बनी हैं। कन्धों को छूती हुयी लटों से शोभित ऋषभनाथ की केश रचना छोटे-छोटे गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित हैं। अत्यधिक अलंकृत प्रभामण्डल एवं आसन विशेषतः दर्शनीय हैं।

पार्श्वनाथ (क्र० १९३, प्रारम्भिक ११वीं शती ई०) : इस मूर्ति (३'५'' × २'६') में ध्यानस्थ पार्श्वनाथ को सात सर्पफणों के छत्र के नीचे आसीन दिखाया गया है। मूलनायक के दोनों ओर चामरधारी धरणेन्द्र एवं पद्मावती की आकृतियाँ उकेरी हैं। परिकर में सात तीर्थंकर मूर्तियाँ एवं अष्टप्रातिहार्य भी दिखाये गये हैं।

सुपार्श्वनाथ-मस्तक

कक्ष ६ : ऋषभनाथ (क्र० ८६, १०वीं शती ई०) : जटमुकुट से शोभित ऋषभनाथ वृषभ-लांछन एवं गोमुख-चक्रेश्वरी की आकृतियों से युक्त हैं।

महावीर (क्र० २४, ११वीं शती ई०) : यह मूर्ति पर्याप्त खण्डित है, किन्तु सिंह-लांछन के आधार पर तीर्थंकर की पहचान महावीर से की जा सकती है। इस मनोज्ञ मूर्ति में अष्टप्रातिहार्यों के अतिरिक्त चतुर्भुज यक्ष और यक्षी की आकृतियाँ भी दिखायी गयी हैं। यक्ष के आयुध स्पष्ट नहीं हैं, किन्तु यक्षी विशिष्ट लक्षणों वाली है। पाँच सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के हाथों में फल देखा जा सकता है।

ऋषभनाथ (क्र० ३, १०वीं शती ई०) : यह कायोत्सर्ग मूर्ति कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मूलनायक की शरीर रचना सुन्दर, आनुपातिक और हल्की है। वृषभ-लांछन एवं कन्धों पर लटकती जटाओं के साथ ही चतुर्भुज यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। यक्ष के तीन हाथों में फल, पुस्तक और धन का थैला है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी पारम्परिक आयुधों से युक्त है। परिकर में २३ तीर्थंकर आकृतियाँ भी बनी हैं। इनमें से दो आकृतियों की पहचान पाँच और सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ से की जा सकती है। सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की आकृतियों के समीप दो चामरधारी सेवकों का अंकन अलंकरण एवं उनकी एक ओर झुकी हुई विशेष आकर्षक मुद्रा के कारण उल्लेखनीय हैं। तीर्थंकर मूर्तियों में चामरधारी सेवकों का यह सुन्दरतम अंकन है।

कक्ष ७ : इस कक्ष में चतुर्भुजा देवियों की पाँच मूर्तियां हैं जिनकी निश्चित पहचान सम्भव नहीं है १. **गौरी या लक्ष्मी** (क्र० ५१८, ११ वीं शती ई०) त्रिभंग में खड़ी देवी के ३ हाथों में से एक में अभयमुद्रा और दो में पद्म प्रदर्शित है। २. **गौरी या लक्ष्मी** (क्र० २००, ११ वीं शती ई०) ललितासीन देवी के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र हैं। ३. **वज्रांकुशा** (?) (क्र० २८८) ललितासीन देवी का वाहन मकर है और देवी के तीन हाथों में अभय-मुद्रा, अंकुश और पद्म दिखाया गया है। मकरवाहन और पद्म के आधार पर देवी की पहचान यक्षी गान्धारी से भी की जा सकती है। ४. **गौरी या लक्ष्मी** (क्र० १८, ११वीं शती ई०) ललितासीन देवी के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और वज्र प्रदर्शित हैं। ५. **गौरी या लक्ष्मी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क्र० २९०, ११ वीं शती ई०) देवी अतिभंग में खड़ी हैं और उनके करों में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं।

कक्ष ८ : चक्रेश्वरी यक्षी (११वीं शती ई०) : यह मूर्ति बीस हाथों वाली है किन्तु वर्तमान में सभी हाथ खण्डित हैं। यक्षी के शीर्ष भाग में जटायुक्त ऋषभनाथ की मूर्ति देखी जा सकती है।

गान्धारी (११वीं शती ई०) : ललितासीन देवी के आसन के समीप मकरमुख बना है और देवी के करों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र हैं।

गान्धारी (क्र० २८४, ११वीं शती ई०) : यह मूर्ति अत्यधिक अलंकृत और भव्य है। त्रिभंग में अवस्थित देवी के दाहिने पार्श्व में मकरमुख बना हैं और उसके हाथों में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म-पुस्तक एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। इस मूर्ति के ऊपरी परिकर में पद्मधारिणी दो चतुर्भुजा देवियाँ भी दिखायी गयी हैं।

पद्मावती (१२वीं-१३वीं शती ई०) : यह मूर्ति कलात्मक स्तर पर बहुत सुन्दर न होते हुये भी प्रतिमालक्षण की दृष्टि से महत्त्व की है। पार्श्ववर्ती चामरधारिणी सेविकाओं से वेष्ठित देवी त्रिभंग में हैं और उनके सिर पर पाँच सर्पफणों का छत्र है। देवी के हाथों में वरदाक्ष, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं।

चक्रेश्वरी (क्र० ८५, १०वीं शती ई०) : वास्तव में यह किसी विशाल तीर्थंकर मूर्ति की पीठिका वाला भाग है जिस पर द्वादशभुजी चक्रेश्वरी (२'४" × २'२") का अंकन हुआ है। यद्यपि चक्रेश्वरी के सभी हाथ खण्डित हैं किन्तु गरुडवाहन एवं मस्तक पर किरीटमुकुट तथा पीठिका पर सबसे नीचे उत्कीर्ण वृषभ-लांछन के आधार पर मूल प्रतिमा का ऋषभनाथ की मूर्ति होना सर्वथा निश्चित है जिनकी यक्षी के रूप में चक्रेश्वरी का अंकन पूरी तरह परम्परासम्मत है।

यक्ष (क्र० २५१, संग्रहालय में अजितयक्ष ?) : यह ब्रैकेट मूर्ति है जिसमें चतुर्भुज यक्ष के दो हाथों में पद्म और कलश हैं।

मातंग यक्ष—ललितासीन यक्ष घटोदर एवं गजवाहन वाले हैं। इनके दो हाथों में बीजपूरक और नकुलक हैं।

कक्ष ९ : इस कक्ष में केवल नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की दसवीं से तेरहवीं ई० के मध्य की पाँच मूर्तियाँ सुरक्षित हैं—१. चतुर्भुजा अम्बिका ललितासीन और सिंहवाहन से युक्त हैं (क्र० २२३, १० वीं शती ई०)। देवी के दो हाथों में आम्रलुम्बि और बालक दिखाया गया है। २. (क्र० १९१, १३ वीं शती ई०) त्रिभंग में खड़ी यक्षी के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश एवं बालक (प्रियंकर) प्रदर्शित हैं। पीठिका पर देवी का सिंहवाहन और आम्रलुम्बि के नीचे बड़े पुत्र शुभंकर को दिखाया गया है। ३. १० वीं शती ई० की तीसरी मूर्ति (४'४" × १'३") में देवी के सभी हाथ यद्यपि खण्डित हैं किन्तु दोनों ओर बालकों की आकृति तथा बायीं ओर सिंहवाहन स्पष्टतः देखा जा सकता है। यह मूर्ति विशेष अलंकृत मूर्ति है। देवी की साड़ी तथा किरीटमुकुट अलंकरण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। शीर्ष भाग में आम्रवृक्ष तथा परिकर में चतुर्भुज चक्रेश्वरी एवं तीन तीर्थंकरों की आकृतियाँ बनी हैं। मध्य की तीर्थंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकृति शंख-लांछन से युक्त नेमिनाथ की मूर्ति है। ४. (क्र० ३३३, १३ वीं शती ई०) कलात्मक दृष्टि से यह मूर्ति आकर्षक नहीं है। अतिभंग में खड़ी यक्षी के सभी हाथ टूटे हुये हैं, किन्तु यक्षी के सिंहवाहन पर उनके बालक की आकृति देखी जा सकती है। ५. (क्र० ४२) त्रिभंग में खड़ी चतुर्भुजा यक्षी के तीन हाथों में आम्रलुम्बि, पद्म और बालक स्पष्ट हैं। यक्षी के वामपार्श्व में सिंहवाहन और दक्षिण पार्श्व में ज्येष्ठ पुत्र शुभंकर की आकृतियाँ बनी हैं।

ब्रैकेट [टोडों] की मूर्तियाँ

भट्टारक नयनन्दी—(क्र० २३३, ११वीं शती ई०)—इस मूर्ति में जैन आचार्यों की तत्त्वचर्चा का अंकन हुआ है। दो जैन आचार्य आमने-सामने बैठे हैं और दोनों के हाथों में पुस्तक दिखाया गया है। इनके मध्य में स्थापना है। शीर्ष भाग में तीर्थंकर आकृतियां और पीठिका पर चार कलश तथा मयूरपिच्छिका से युक्त मुनियों की आकृतियां दिखायी गयी हैं।

आगे चार तीर्थंकर मूर्तियों के मस्तक एवं श्मश्रुयुक्त पुरुष आकृति का मस्तक (पाहिल) तथा विक्रम सम्वत् ११८६ (११२९ ई०) के लेख से युक्त किसी तीर्थंकर प्रतिमा की पीठिका के अवशिष्ट भाग क्रम से रखे हुये हैं।

केन्द्रीय षट्कोणीय पीठिका की तीर्थंकर मूर्तियां : इस पीठिका पर ऋषभनाथ की चार तथा पार्श्वनाथ और महावीर की क्रमशः एक-एक मूर्तियां सुरक्षित हैं। १. **ऋषभनाथ** (क्र० ७, १०वीं शती ई०) लम्बी और लहराती हुई जटाओं से शोभित ऋषभनाथ की मूर्ति (४′८″×२′२″) के परिकर में पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ बनीं हैं जिनमें से एक मूर्ति सुपार्श्वनाथ की है। २. **ऋषभनाथ** (क्र० ६; १०वीं शती ई०) इकहरे बदन वाली यह मूर्ति आनुपातिक शरीर रचना एवं भावाभिव्यक्ति के स्तर पर अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्ति (४′२″×२′९″) है। मूलनायक के मुख पर मन्दस्मित और गम्भीर चिन्तन का भाव प्रदर्शित है। परिकर में २३ अन्य तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ भी बनी हैं, जिनके आधार पर यह मूर्ति चतुर्विंशति जिन मूर्ति कही जा सकती है। दोनों ओर चतुर्भुज यक्ष और यक्षी का अंकन हुआ है। यद्यपि यक्ष गोमुख नहीं है किन्तु उनके हाथों में फल, सर्प, पद्म एवं धन का थैला देखा जा सकता है। यक्षी के रूप में गरुडवाहना चक्रेश्वरी निरूपित हैं। ३. **ऋषभनाथ** (क्र० १८, ११ वीं शती ई०) : ऋषभनाथ वृषभ-लांछन एवं गोमुख और चक्रेश्वरी की आकृतियों से युक्त दिखाये गये हैं। इस मूर्ति (४′३″×२′×१०″) में चामरधारी सेवकों का अंकन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ४. **ऋषभनाथ** (क्र० १५, १२ वीं शती ई०) : इस मूर्ति में (३′११″×२′३″) में अलंकृत आसन एवं प्रभामण्डल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पार्श्वनाथ (क्र० १००, ११वीं शती ई०) : पार्श्वनाथ की यह मूर्ति कला और प्रतिमा लक्षण दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस मूर्ति (४′५″×२′९″) में पार्श्वनाथ को सात सर्पफणों के छत्र के नीचे विराजमान दिखाया गया है। मूलनायक के पद्मासन के नीचे सर्प की कुण्डलियाँ बहुत सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण हैं। अष्टप्रातिहार्यों के साथ ही सिंहासन पर सर्पफणों के छत्र वाले द्विभुज धरणेन्द्र और चतुर्भुजा पद्मावती की आकृतियाँ भी उकेरी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर (क्र० २३१, ११वीं शती ई०) : महावीर को ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर बैठे दिखाया गया है। सिंहासन के मध्य में ही सिंह-लांछन भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप में द्विभुज मातंग और चतुर्भुजा यक्षी का अंकन हुआ है।

गोमुख यक्ष : चतुर्भुज गोमुख यक्ष त्रिभंग में हैं और उनका वाहन वृषभ है। यक्ष के दो हाथों में पुस्तक और कलश प्रदर्शित हैं। गोमुख यक्ष के आगे दिक्पाल-वरुण, वायु, कुबेर, ईशान्, इन्द्र और अग्नि की आकृतियाँ बनी हैं। इनके वाहन के रूप में क्रमशः मकर, घट, वृषभ, गज और अज की आकृतियाँ बनी हैं।

जैन युगल (क्र० ४९, ११वीं शती ई०) : इस मूर्ति (२'६" × २'५") में पुरुष और स्त्री को साथ-साथ ललितमुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। पुरुष के एक हाथ में पद्म और स्त्री के हाथ में बालक है। इन आकृतियों के ऊपर तीर्थङ्कर की मूर्ति और उनके ऊपर जैन आचार्यों की तत्त्वचर्चा एवं मुनियों द्वारा उसके श्रवण के दृश्य दिखाये गये हैं। सबसे ऊपर दो गजों के युद्ध और उसके बाद अश्व, गज तथा पदाति सैनिकों का अंकन हुआ है।

द्वितीर्थी तीर्थंकर मूर्ति (क्र० ३१, ११वीं शती ई०) : दो तीर्थंकरों को बिना लांछनों के साथ-साथ कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन एवं अन्य प्रातिहार्यों के साथ दिखाया गया है। दोनों तीर्थंकरों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। इस मूर्ति में मालाधारी गन्धर्वों का अलंकरण विशेष महत्वपूर्ण है। इस मूर्ति के ऊपर किसी प्राचीन मन्दिर का उत्तरंग भाग रखा है, जिसमें मध्य में ऋषभनाथ और दोनों ओर जैन मुनियों द्वारा तीर्थंकर मूर्तियों के पूजन का दृश्य अंकित है।

तीर्थंकर मूर्ति : आगे दो-दो के समूह में कुल आठ लांछन रहित कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। ये मूर्तियाँ लगभग ११ वीं शती ई० की हैं।

ऋषभनाथ (क्र० ४८, ११वीं शती ई०) : ऋषभनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति (२'७" × १'७") में गोमुख और चक्रेश्वरी एवं परिकर में चार तीर्थंकर मूर्तियाँ भी बनी हैं। इस मूर्ति के दूसरी ओर बिना लांछन वाली तीर्थङ्कर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (क्र० ५१, ११ वीं शती ई०) रखी है। इस मूर्ति के परिकर में २४-२४ तीर्थङ्करों के दो समूह दिखाये गये हैं (४२' × १'५')।

चौमुखी मूर्ति (क्र० १९७, ११वीं शती ई०) : इस चौमुखी मूर्ति में एक ओर ध्यानस्थ सुपार्श्वनाथ, दूसरी ओर लक्ष्मी (ललितासोन और हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र से युक्त), तीसरी ओर तत्त्वचर्चा करते हुए दो जैन मुनि (पुस्तक लिए) और चौथी ओर ध्यानस्थ पार्श्वनाथ की आकृतियाँ बनी हैं।

ऋषभनाथ (क्र० ५४, १२वीं शती ई०) : अलंकृत आसन पर विराजमान ऋषभनाथ की पीठिका पर वृषभ-लांछन तथा गोमुख और चक्रेश्वरी की आकृतियाँ बनी हैं (३' × १'१०')। समीप ही ऋषभनाथ की ११वीं शती ई० की एक दूसरी लेखयुक्त मूर्ति (क्र० १०६; २'८" × २'२") भी रखी है जिसमें वृषभ-लांछन और गोमुख तथा चक्रेश्वरी के साथ ही सिंहासन के दोनों सिंह भी द्रष्टव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गान्धारी–(?) (क्र० ५१७ एवं २९१) : दोनों उदाहरणों में त्रिभंग में खड़ी चतुर्भुजा देवी के करों में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र हैं।

लक्ष्मी : ११वीं शती ई० की इस चतुर्भुजी मूर्ति में लक्ष्मी दोनों पैर मोड़कर अलंकृत आसन पर बैठी हैं और उनके समीप ही गज की आकृति बनी है। देवी के दो हाथों में पद्म और एक हाथ में कलश हैं। ११वीं शती ई० की दूसरी मूर्ति (क्र० २३८) में ललितासीन देवी वरदमुद्रा, पद्म और कलश से युक्त हैं। देवी सम्भवतः लक्ष्मी है।

जैन युगल (क्र० ३२, ११वीं शती ई०) : इस मूर्ति में पुरुष आकृति के बायें हाथ में बालक की आकृति का कुछ टूटा हुआ भाग शेष है। मूर्ति (३' २" × २' ४" पूरी तरह खण्डित है, किन्तु नीचे कुछ उपासकों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।

द्वितीर्थी मूर्ति (क्र० २८, ११वीं शती ई०) : यह मूर्ति (४ ४" × २' ४") ऊपर वर्णित द्वितीर्थी जिन मूर्ति के समान है। दो तीर्थंकरों को बिना लांछनों के कायोत्सर्गमुद्रा में सामान्य लक्षणों वाले यक्षी-यक्षी के साथ निरूपित किया गया है। इस मूर्ति में शरीर रचना अधिक सुन्दर और इकहरे बदन वाली है। मूर्ति के ऊपर किसी प्राचीन जैन मन्दिर का सिरदल भाग रखा है जिसमें तीर्थंकर के माता-पिता और सोलह मांगलिक स्वप्नों का अंकन मिलता है।

पद्मावती यक्षी (क्र० २०९, ११वीं शती ई०) : पद्म पर ललितमुद्रा में आसीन पाँच सर्पफणों के छत्र वाली पद्मावती अष्टभुजा हैं। मूर्ति (१' ७" × १' ७" में देवी का केवल एक ही हाथ सुरक्षित है जिसमें फल प्रदर्शित है। देवी के दोनों ओर वेणुवादकों की आकृतियाँ बनीं हैं।

मानसी या ज्वालामालिनी (१२वीं शती ई०, १' ८" × १' ३") : अष्टभुजा देवी का वाहन सिंह है। ललितमुद्रा में आसीन देवी के हाथों में वरदमुद्रा, घण्टा, खड्ग (सिर के पीछे प्रयोग की स्थिति में) एवं खेटक प्रदर्शित हैं। जटामुकुट के रूप में देवी की केश-रचना कुछ विशेष प्रकार से अलंकृत की गयी है।

चक्रेश्वरी (क्र० २७/५०, १२वीं शती ई०) : गरुडवाहना षट्भुजा चक्रेश्वरी किरीटमुकुट के स्थान पर करण्डमुकुट से शोभित है और उसके हाथों में गदा, चक्र (प्रयोग की स्थिति में), चक्र, पद्म और शंख दिखाए गये हैं (१' ७" × १' ३")।

ज्वालामालिनी (?) (क्र० १८७, १२वीं शती ई०) : ललितासीन देवी का वाहन महिष है। अष्टभुजा देवी के अवशिष्ट करों में वरमुद्रा, चक्र और गदा स्पष्टतः पहचाने जा सकते हैं। देवी के बायीं ओर तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मूर्ति भी बनी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

(क) आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियाँ

आदिनाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार की देवियां प्रतिमाविज्ञान परक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। इनमें लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अंबिका एवं पद्मावती के अतिरिक्त कई ऐसी देवियां भी आकारित हैं जिनकी निश्चित पहचान कठिन है। यहाँ वाहनों और कुछ प्रमुख आयुधों के आधार पर उन देवियों के पहचान की चेष्टा की गई है। ये देवियां चतुर्भुजी हैं और उनकी आकृतियां अर्द्धस्तंभों से वेष्टित रथिकाओं में स्थित हैं। ललाटबिंब में गरुडवाहना चक्रेश्वरी (अभयमुद्रा, गदा, पद्म एवं शंख से युक्त) और उत्तरंग छोरों पर सिंहवाहना अंबिका (आम्रलुंबि, पद्म, पुस्तक-पद्म एवं बालक से युक्त) एवं पाँच सर्पफणों के छत्र वाली पद्मावती (अभयमुद्रा, पाश, पद्म एवं जलपात्र से युक्त) की ललितासीन आकृतियां हैं। चक्रेश्वरी के पार्श्वों में दो स्थानक देवियां उत्कीर्ण हैं। इनके ऊपरी हाथों में सनालपद्म और निचले में वरद-मुद्रा और कमण्डलु हैं। पद्म के आधार पर इन देवियों की संभावित पहचान लक्ष्मी से की जा सकती है।

द्वारशाखाओं पर दोनों ओर क्रमशः चार-चार देवियों की ललितासीन आकृतियां उकेरी हैं। इन देवियों के निरूपण में कोई विशेष स्वरूपगत भेद नहीं परिलक्षित होता। बायीं द्वार-शाखा की पहली देवी (ऊपर से) के करों में अभयमुद्रा, स्रुक, गदा (?) और कलश हैं तथा वाहन वृषभ (?) है। वृषभ वाहन के आधार पर इस आकृति की पहचान नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त की यक्षी सुतारा से की जा सकती है। दिगम्बर परम्परा में यक्षी का नाम महाकाली है और उसका वाहन कूर्म बताया है। दूसरी मूर्ति के हाथों में अभयमुद्रा, पाश और चक्राकार पद्म है। वाहन के रूप में गौरैय्या (?) जैसा कोई छोटा पक्षी बना है जिसका जैन परम्परा में किसी देवी के वाहन के रूप में उल्लेख नहीं है। अतः इस देवी की पहचान संभव नहीं है। तीसरी देवी के तीन अवशिष्ट करों में स्रुक, पुस्तक-पद्म और फल हैं तथा वाहन के रूप में मृग आकारित है जो दिगम्बर परम्परा में सातवीं विद्यादेवी काली और ११वें तीर्थंकर श्रेयांशनाथ की यक्षी गौरी का वाहन है। चौथी मूर्ति का वाहन नष्ट हो गया है, किन्तु हाथों में अभयमुद्रा, चक्राकार पद्म (दो में) और जलपात्र सुरक्षित हैं। पद्म के आधार पर देवी को लक्ष्मी से पहचाना जा सकता है।

दाहिनी द्वारशाखा की (ऊपर से) पहली देवी अभयमुद्रा, चक्राकार पद्म, पुस्तक-पद्म और जलपात्र से अभिहित है और उसका वाहन वृषभ है। पद्म-पुस्तक और कमण्डलु के आधार पर देवी को सरस्वती से पहचाना जा सकता है। पर वृषभ वाहन इस पहचान में बाधक है। दिगम्बर परम्परा में सुपार्श्वनाथ की यक्षी काली को वृषभवाहना बतलाया गया है, पर उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करों में घण्टा, त्रिशूल (या शूल) फल और वरद-मुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है। दूसरी आकृति के तीन सुरक्षित करों में पद्म, पुस्तक-पद्म और फल हैं तथा वाहन के रूप में सिंह आकारित है। देवी की पहचान महावीर की सिद्धायिनी यक्षी से सम्भव है। तीसरी आकृति की एक अवशिष्ट भुजा में फल है और वाहन शुक है। इस देवी की पहचान सम्भव नहीं है। चौथी मूर्ति में मकरवाहना देवी के दो अवशिष्ट वाम करों में चक्राकार पद्म और फल प्रदर्शित हैं। मकर के आधार पर देवी की पहचान १६वीं विद्यादेवी महामानसी या १२वें तीर्थंकर वासुपूज्य की यक्षी गान्धारी से सम्भव है। चौखट पर बायीं ओर गजलक्ष्मी या अभिषेकलक्ष्मी की एक चतुर्भुजी मूर्ति है। पद्मासन-मुद्रा में पद्म पर आसीन देवी के ऊपरी हाथों में सनाल पद्म है जिसके ऊपर देवी का अभिषेक करती हुई दो गज आकृतियां बनी हैं। देवी की निचली भुजायें खण्डित हैं। चौखट की दूसरी पद्मासना देवी की भुजायें खण्डित हैं, पर एक हाथ में पद्म स्पष्ट है। देवी का वाहन कूर्म है। इसके आधार पर इसे नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त की यक्षी महाकाली से पहचाना जा सकता है। किन्तु देवी के सिर पर प्रदर्शित तीन सर्पफणों का छत्र इस पहचान में बाधक है।

इन देवियों के अतिरिक्त चौखट पर दो ललितासीन पुरुष आकृतियाँ भी उकेरी हैं। ये आकृतियाँ घटोदर हैं और उनके तीन अवशिष्ट हाथों में अभयमुद्रा, परशु और चक्राकार पद्म हैं। इनके साथ वाहन की आकृतियाँ नहीं बनी हैं। इनकी पहचान सर्वाह्न या सर्वानुभूति यक्ष से की जा सकती है।

(ख) मांगलिक स्वप्न

जैन ग्रन्थों में प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म के पूर्व उनकी माता द्वारा कुछ शुभ स्वप्नों के दर्शन से सम्बन्धित उल्लेख हैं। श्वेताम्बर ग्रन्थों में इन स्वप्नों की संख्या १४ और दिगम्बर ग्रन्थों में १६ बतायी गयी है। **कल्पसूत्र** में उल्लेख है कि महावीर के गर्भ में आगमन के पूर्व ब्राह्मणी देवानन्दा ने शुभ स्वप्नों का दर्शन किया था। हरिनैगमेषी द्वारा महावीर का भ्रूण देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरित किए जाने के बाद त्रिशला ने भी १४ मांगलिक स्वप्नों का दर्शन किया था।[1] ल० आठवीं शती ई० के बाद जैन मन्दिरों के प्रवेशद्वारों की बड़ेरियों पर इन मांगलिक स्वप्नों का अंकन प्रारम्भ हुआ।[2]

कल्पसूत्र, आदिपुराण एवं **हरिवंशपुराण** में इन स्वप्नों की विस्तृत सूची मिलती है। दिगम्बर ग्रन्थों में १६ मांगलिक स्वप्नों की सूची में गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी या पद्मा (पद्मा-

---

१. **कल्पसूत्र**, सूत्र ३, ३१-४६।

२. कुंभारिया एवं दिलवाड़ा के मंदिरों में तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के चित्रण के प्रसंग में जन्म कल्याणक के पूर्व १४ मांगलिक स्वप्नों का नियमित अंकन हुआ है। खजुराहो, देवगढ़ एवं अन्य दिगम्बर स्थलों पर १६ मांगलिक स्वप्नों का अंकन मन्दिरों के प्रवेशद्वारों पर हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीन, चतुर्भुजा, करों में पद्म से युक्त तथा दो गजों द्वारा अभिषिक्त), चन्द्रमा, सूर्य, मत्स्य युगल, कलशद्वय, दिव्य झील, उद्वेलित समुद्र, सिंहासन, विमान, नागेन्द्र भवन, अपार रत्न-राशि, पुष्पहार एवं निर्धूम अग्नि के उल्लेख हैं।[1] श्वेताम्बर सूची में नागेन्द्र भवन, सिंहासन तथा मत्स्य युगल के उल्लेख नहीं हैं। मत्स्य युगल के स्थान पर श्वेताम्बर ग्रन्थों के १४ मांगलिक स्वप्नों में सिंहध्वज का उल्लेख है।[2]

खजुराहो में मांगलिक स्वप्न मन्दिरों की बड़ेरियों पर बने हैं। आदिनाथ एवं घण्टई मन्दिरों के अतिरिक्त चार अन्य प्राचीन जैन मन्दिरों की स्वतन्त्र पड़ी हुई बड़ेरियों पर भी १६ मांगलिक स्वप्नों का अंकन मिलता है।[3] मन्दिर १/४ के उदाहरण में एक पंक्ति में १६ के स्थान पर केवल ११ स्वप्न अंकित हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र वृत्त के रूप में न होकर द्विभुज देवों के रूप में आकारित हैं। मत्स्य युगल के स्थान पर केवल एक ही मत्स्य की आकृति बनी है। लगभग सभी उदाहरणों में १६ मांगलिक स्वप्नों के अंकन के पूर्व तीर्थंकर की माता को सेविकाओं से सेवित शैय्या पर आराम करते हुए दिखाया गया है। यह माता द्वारा मंगल स्वप्नों का शिल्पांकन है। आगे की ओर एक पुरुष और स्त्री को वार्तालाप की मुद्रा में आसीन दिखाया गया है जो तीर्थंकर के माता-पिता के स्वप्न फलों से संबंधित वार्तालाप का शिल्पांकन है। आदिनाथ मन्दिर के उदाहरण में माता की लेटी हुई आकृति के ऊपर एक आकाशगामी विमान भी अंकित है। तीर्थंकर के पिता को साधु से प्रश्नफल पूछते हुए दिखाया गया है। इन आकृतियों के आगे (बाँये से दाहिने) क्रमशः १६ स्वप्नों का पंक्तिबद्ध अंकन हुआ है। सबसे पहले गज की आकृति बनी है जिसकी पीठ पर कभी-कभी दो आकृतियाँ भी दिखायी गयी हैं। इसके बाद वृषभ, सिंह और अभिषेक लक्ष्मी का अंकन हुआ है। अभिषेक लक्ष्मी दोनों पैर मोड़कर ध्यानमुद्रा में पद्मासीन और करों में अभय, पद्म और जलपात्र के साथ निरूपित हैं। शीर्ष भाग में दो गजों को देवी का अभिषेक करते हुए दिखाया गया है। उसके बाद पुष्पहार (दो के स्थान पर एक ही हार) उत्कीर्ण है जिसके ऊपर कीर्ति-मुख की आकृति बनी है, जिसके मुख से मोती की लड़ियाँ निकल रही हैं। आगे चन्द्रमा और सूर्य का एक वृत्त के रूप में अंकन हुआ है, जिनके मध्य में उनकी द्विभुज मानव आकृतियाँ बनीं हैं। द्विभुज चन्द्रमा का वाहन अश्व है और उनके हाथों में अभयमुद्रा और कमण्डलु हैं।

---

१. **आदिपुराण** (जिनसेन कृत) १२·५५, १०१-१९; **हरिवंशपुराण** ८·५८-७४।

२. **कल्पसूत्र** ३·३१-४६।

३. आदिनाथ एवं घण्टई मन्दिरों तथा मन्दिर ७ के उदाहरण सबसे अच्छे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ उदाहरणों में वृत्त के मध्य में केवल अश्व की ही आकृति बनी है।[1] सूर्य उदीच्य वेषधारी तथा उत्कूटिकासन में दोनों हाथों में सनाल पद्म से युक्त हैं। सूर्य के आगे मत्स्य युगल, कलशद्वय तथा पुष्पालंकृत दिव्य झील[2] एवं उद्वेलित समुद्र का अंकन हुआ है। उद्वेलित समुद्र को एक वृत्त के रूप में दर्शाया गया है जिसमें नक्र, कूर्म, मत्स्य, हंस आदि जलचरों का अंकन हुआ है। मन्दिर ७ के उदाहरण में मध्य में समुद्र की मानव आकृति भी बनी है। इनमें समुद्र अभयमुद्रा और फल (या जलपात्र) से युक्त हैं। आगे सिंहासन, दिव्यविमान, नागेन्द्र भवन, अपार रत्नराशि और निर्धूम अग्नि उकेरित हैं। धर्मचक्र और दो सिंहों से युक्त सिंहासन के समीप ही दिव्य विमान अंकित है। दिव्यविमान के ऊपर अभयमुद्रा और जलपात्र से युक्त एक आकृति बैठी है। नागेन्द्र भवन में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त नाग और नागी की युगल आकृतियाँ दिखाई गई हैं और उनके हाथों में अभयमुद्रा और जलपात्र (या फल) हैं। अपार रत्नराशि के समीप ही अग्नि की मानव आकृति बनी है। श्मश्रु तथा जटामुकुट से शोभित ललितासीन अग्नि के हाथों में अभयमुद्रा और स्रुक प्रदर्शित हैं। यह निर्धूम अग्नि का अंकन है। खजुराहो में मांगलिक स्वप्नों के अंकन की एक विशेषता यह थी कि इनमें विभिन्न स्वप्नों का प्रतीक के स्थान पर मानवरूप में अंकन अधिक लोकप्रिय था। जैनों ने मांगलिक स्वप्नों की सूची निर्धारित करते समय उनमें न केवल प्रचलित मांगलिक चिह्नों (मत्स्य युगल, कलश) एवं प्रमुख प्राकृतिक तत्वों (सूर्य, चन्द्र, जल) तथा लोकदेवों (अभिषेकलक्ष्मी, नाग, अग्नि) को ही सम्मिलित किया, वरन् पशु जगत् (गज, वृषभ, सिंह) तथा अष्टप्रातिहार्यों की सूची में से सिंहासन को भी सम्मिलित किया। इस प्रकार मांगलिक स्वप्नों की कल्पना में जैनों ने सम्पूर्ण जगत को प्रतिनिधित्व दिया। इन स्वप्नों के शिल्पांकन में खजुराहो में कलाकारों ने उनके प्रतीकात्मक अंकन के स्थान पर उनके यथार्थ रूप को दर्शाने का यत्न किया है। यह भाव समुद्र में विभिन्न जलचरों तथा दिव्य झील में पद्म के अंकन से स्पष्ट है।

(ग) जैन लेख

यहाँ का प्रारम्भिकतम जैन लेख विक्रम सम्वत् १०११ (९५४–५५ ई०) का है, जो पार्श्वनाथ मन्दिर में उत्कीर्ण है।[3] इस लेख के अतिरिक्त अन्य कई मूर्ति लेख भी हैं, जो क्रमशः विक्रम सम्वत् १०८५ (१०२८ ई०), १२०५ (११४८ ई०), १२१२ (११५५ ई०), १२१५

१. मन्दिर ७ के उदाहरण में वृत्त के मध्य में सम्भवतः मृग की आकृति बनी है।

२. मन्दिर ७ के उदाहरण में पक्षियों की दो आकृतियाँ हैं।

३. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड–१, पृ० १३५-३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११५८ई०), १२२० (११६३ ई०) एवं १२३४ (११७७ ई०) के हैं।[1] सम्वत् १०८५ का लेख शान्तिनाथ मन्दिर के विशाल शान्तिनाथ प्रतिमा तथा सम्वत् १२१५ का लेख मन्दिर १३ की सम्भवनाथ प्रतिमा पर है। इन लेखों में चन्देल शासक धंग और मदनवर्मन् के नामोल्लेख हैं। उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त मूर्तियों तथा मन्दिरों (मन्दिर ७) पर कई बिना तिथि वाले लेख भी हैं। खजुराहो के जैन लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इन लेखों में जैन धर्म और कला को समर्थन देने वाले श्रेष्ठियों, जैन आचार्यों एवं मुनियों तथा शिल्पियों (रूपकारों) के नामोल्लेख विशेष महत्त्व के हैं। ये लेख १० वीं शती ई० के उत्तरार्द्ध से ल० १२ वीं शती ई० के मध्य तक खजुराहो में जैन धर्म और संघ के प्रभावशाली रहे होने की पुष्टि करते हैं। इन लेखों में धंग के महाराज गुरु वासवचन्द्र (पार्श्वनाथ मन्दिर लेख) तथा देवचन्द्र, कुमुदचन्द्र, चारुकीर्ति, कुमारनन्दी, योगचन्द्र, योगनन्दी, यक्षदेव, विशालकीर्ति जैसे अन्य निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन आचार्यों एवं साधुओं के उल्लेख हैं। ये उल्लेख स्पष्टतः खजुराहो में संगठित जैन संघ की विद्यमानता का संकेत देते हैं। साथ ही श्रेष्ठि पाहिल, पाणिधर तथा उसके पुत्रों त्रिविक्रम, आल्हण और लक्ष्मीधर; महीपति और उसके पुत्रों साल्हू, देदू, आल्हू, बीवतसाह और उनकी पत्नी पद्मावती; श्रेष्ठि देदू एवं उनके पुत्र पाहिल[2] तथा उनके पुत्र साल्हे और उनके पुत्रों महागण, महीचन्द्र, श्रीचन्द्र, जिनचन्द्र और उदयचन्द्र आदि के नामोल्लेख उस क्षेत्र में जैन धर्मावलम्बी श्रेष्ठि परिवार के संगठन तथा जैन मन्दिर एवं मूर्ति निर्माण में उनके सहयोग को स्पष्ट करते हैं। ये श्रेष्ठि ग्रहपति (या गृहपति-गहोई) वंश के थे। इन लेखों में कुछ शिल्पियों के नामोल्लेख भी महत्व के हैं, जिनमें रामदेव, धुजु, कुमारसिंह, माहुल, गोलल, देवशर्मा, जयसिंह तथा पीषन आदि उल्लेखनीय हैं।[3]

पार्श्वनाथ मन्दिर का लेख यह भी सूचना देता है कि मन्दिरों की व्यवस्था आदि के लिए भूमि तथा वाटिकाओं के दान की परम्परा थी। पाहिल ने पार्श्वनाथ मन्दिर के पूजन तथा

---

१. **एपिग्राफिया इण्डिका**, खण्ड–१, पृ० १५२-५३; जैन, बलभद्र, **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ**, तृतीय भाग (मध्य प्रदेश), बम्बई, १९७६, पृ० १४५-४६। यहाँ के मूर्ति लेखों में अन्तिम लेख सम्वत् १२३४ का है।

२. ११५८ ई० के लेख में उल्लिखित पाहिल पार्श्वनाथ मन्दिर के पूर्वोक्त ९५४ ई० के लेख में आये पाहिल से भिन्न व्यक्ति है क्योंकि दोनों के बीच दो सौ वर्षों से अधिक का अन्तर है। जैन, ज्योति प्रसाद, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० २२७।

३. जैन, बलभद्र, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० १४२, १४६; **एपिग्राफिया इण्डिका**, खण्ड १, पृ० १५३, जैन, ज्योति प्रसाद, **पूर्व निर्दिष्ट**, पृ० २२४-२६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्था के लिए सात वाटिकाओं का दान किया था।[1] पार्श्वनाथ मन्दिर के लेख में मन्दिर के निर्माणकर्ता पाहिल के धंगराज द्वारा सम्मानित किये जाने का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में ऋषभनाथ को "जिननाथ" कहा गया है।[2]

१—पार्श्वनाथ मन्दिर लेख :

१—ओं (॥*) सम्वत् १०११ समये ॥ निजकुलधवलोयं दि–
२—व्यमूर्त्ति स्वसी (शी) ल स (श) मदमगुणयुक्त सर्व्व–
३—सत्वा (त्ता) नुकंपी (।*) स्वजनजनिततोषो धंगराजेन
४—मान्य प्रणमति जिननाथोयं भव्यपाहिल–
५—नामा। (॥) ? ॥ पाहिलवाटिका १ चन्द्रवाटिका २
६—लघुचन्द्रवाटिका ३ सं (शं) करवाटिका ४ पंचाई–
७—तलवाटिका ५ आम्रवाटिका ६ ध (धं) गवाडी ७ (॥*)
८—पाहिलवंसे (शे) तु क्षये क्षीणे अपरवंसो (शो) यः कोपि
९—तिष्ठति (।*) तस्य दासस्य दासोयं ममदत्तिस्तु पाल–
१०—येत् ॥ महाराजगुरु स्री (श्री) वासवचन्द्र (॥*) (वैसा) (शा) (ष) (ख)
११—मुदि ७ सोमदिने ॥

(**एपिग्राफिया इण्डिका**,खं १, पृ० १३५–३६)

२—अन्य लेख

(ग्र*) हपत्यन्वये श्रेष्ठि श्रीपाणिधर (॥*)

३—ओं ॥ ग्रहपत्यन्वये श्रेष्ठिपाणिधरस्तस्य सुत श्रेष्ठिति (त्रि) विक्रम तथा आल्हण। लक्ष्मीधर ॥ सम्वत् १२०५। माघवदि ५ ॥

४—ओं ॥ सम्वत् १२१५ माघसुदि ५ श्रीमन्मदनवर्म्मदेव प्रवर्द्धमानविजयराज्ये ॥ ग्रहपतिवंसे (शे) श्रेष्ठिदेवू तत्पुत्रपाहिल्लः। पाहिल्लांगरूहसाधुसाल्हे (ते) नेदं (यं) प्रतिमाकारितेति ॥ ॥ तत्पुत्राः महागण। महीचन्द्र। सि (रि) चन्द्र। जिनचन्द्र। उदयचन्द्र प्रभृति। सम्भवनाथं प्रणंमति नित्यं ॥ मंग (ल) महाश्री (:*) ॥ रूपकार रामदेव (:*) ॥

(**एपिग्राफिया इण्डिका**, खं० १, पृ० १५२–५३)

---

१. पाहिल, चन्द्र, लघुचन्द्र, शंकर, पंचाइतल (पंचायतन), आम्र एवं धंग वाटिकाएँ।

२. पार्श्वनाथ मन्दिर के लेख की लिपि बाद की है। सं० १०११ के प्राचीन लेख को १३वीं शती ई० में पुनः आलेखित किया गया था। **एपिग्राफिया इण्डिका**, खण्ड–१ (कीलहार्न-इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम खजुराहो), पृ० १३५–३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) जिन-मूर्तिविज्ञान-तालिका

क्र०सं०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१.	ऋषभनाथ या आदिनाथ	वृषभ	गोमुख	चक्रेश्वरी (श्वे०, दि०) अप्रतिचक्रा (श्वे०)
२.	अजितनाथ	गज	महायक्ष	अजिता (श्वे०), रोहिणी (दि०)
३.	सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी (श्वे०), प्रज्ञप्ति (दि०)
४.	अभिनन्दन	कपि	यक्षेश्वर (श्वे०, दि०) ईश्वर (श्वे०)	कालिका (श्वे०), वज्रशृंखला (दि०)
५.	सुमतिनाथ	क्रौंच	तुम्बरु (श्वे०, दि०), तुम्बर (दि०)	महाकाली (श्वे०), पुरुषदत्ता, नरदत्ता (दि०), सम्मोहिनी (श्वे०)
६.	पद्मप्रभ	पद्म	कुसुम (श्वे०), पुष्प (दि०)	अच्युता, मानसी (श्वे०) मनोवेगा (दि०)
७.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक (श्वे०, दि०), नंद्यावर्त (दि०)	मातंग	शान्ता (श्वे०), काली (दि०)
८.	चन्द्रप्रभ	शशि	विजय(श्वे०),श्याम(दि०)	भृकुटि, ज्वाला (श्वे०), ज्वालामालिनी, ज्वालिनी (दि०)
९.	सुविधिनाथ (श्वे०), पुष्पदंत (श्वे०, दि०)	मकर	अजित (श्वे०, दि०), जय (दि०)	सुतारा (श्वे०), महाकाली (दि०)
१०.	शीतलनाथ	श्रीवत्स (श्वे०, दि०) स्वस्तिक (दि०)	ब्रह्म	अशोका (श्वे०), मानवी (दि०)
११.	श्रेयांशनाथ	खड्गी (गेंडा)	ईश्वर (श्वे०, दि०), यक्षराज, मनुज (श्वे०)	मानवी, श्रीवत्सा (श्वे०), गौरी (दि०)
१२.	वासुपूज्य	महिष	कुमार	चण्डा, प्रचण्डा, अजिता, चन्द्रा (श्वे०), गांधारी (दि०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्र०सं०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१३.	विमलनाथ	वराह	षण्मुख (श्वे०, दि०), चतुर्मुख (दि०)	विदिता (श्वे०), वैरोटी (दि०)
१४.	अनन्तनाथ	श्येनपक्षी (श्वे०), रीछ (दि०)	पाताल	अंकुशा (श्वे०), अनन्तमती (दि०)
१५.	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	कन्दर्पा, पन्नगा (श्वे०), मानसी (दि०)
१६.	शांतिनाथ	मृग	गरुड	निर्वाणी (श्वे०), महामानसी (दि०)
१७.	कुंथुनाथ	छाग	गन्धर्व	बला, अच्युता, गान्धारिणी (श्वे०), जया (दि०)
१८.	अरनाथ	नन्द्यावर्त (श्वे०), मत्स्य (दि०)	यक्षेन्द्र, यक्षेश्वर (श्वे०), खेन्द्र (दि०)	धारणी, धारिणी (श्वे०), तारावती (दि०)
१९.	मल्लिनाथ	कलश	कुबेर	वैरोट्या, धरणप्रिया (श्वे०), अपराजिता (दि०)
२०.	मुनिसुव्रत	कूर्म	वरुण	नरदत्ता, वरदत्ता (श्वे०), बहुरूपिणी (दि०)
२१.	नमिनाथ	नीलोत्पल	भृकुटि	गांधारी (श्वे०), चामुण्डा (दि०)
२२.	नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)	शंख	गोमेध	अम्बिका (श्वे०, दि०), कुष्माण्डी (श्वे०), कुष्माण्डिनी (दि०)
२३.	पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्व, वामन (श्वे०), धरण (दि०)	पद्मावती
२४.	महावीर (या वर्धमान)	सिंह	मातंग	सिद्धायिका (श्वे०, दि०), सिद्धायिनी (दि०)

श्वे० = श्वेतांबर, दि० = दिगम्बर

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

(ङ) यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

२४ यक्ष

संख्या	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१.	गोमुख (क) श्वे०	गज (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, मातुलिंग, पाश	गोमुख, पार्श्वों में गज एवं वृषभ का अंकन
	(ख) दि०	वृषभ	चार	परशु, फल, अक्षमाला, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में धर्मचक्र
२.	महायक्ष (क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश (दक्षिण); मातुलिंग, अभयमुद्रा, अंकुश, शक्ति (वाम)	चतुर्मुख
	(ख) दि०	गज	आठ	खड्ग (निस्त्रिंस), दण्ड, परशु, वरदमुद्रा (दक्षिण); चक्र, त्रिशूल, पद्म, अंकुश (वाम)	चतुर्मुख
३.	त्रिमुख (क) श्वे०	मयूर (या सर्प)	छह	नकुल, गदा, अभयमुद्रा (दक्षिण); फल, सर्प, अक्षमाला (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र (या नवाक्ष)
	(ख) दि०	मयूर	छह	दण्ड, त्रिशूल, कटार (दक्षिण); चक्र, खड्ग, अंकुश (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र
४.	ईश्वर — श्वे०	गज	चार	फल, अक्षमाला, नकुल, अंकुश	
	यक्षेश्वर — दि०	गज (या हंस)	चार	संकपत्र (या बाण), खड्ग, कार्मुक, खेटक सर्प, पाश, वज्र, अंकुश (अपराजितपृच्छा)	चतुरानन
५.	तुम्बरू (क) श्वे०	गरुड	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, नाग, (या गदा), पाश	
	(ख) दि०	गरुड	चार	सर्प, सर्प, वरदमुद्रा, फल	नागयज्ञोपवीत
६.	कुसुम (या पुष्प)—				
	(क) श्वे०	मृग (या मयूर) या अश्व	चार	फल, अभयमुद्रा, नकुल, अक्षमाला	
	(ख) दि०	मृग	दो या	(i) गदा, अक्षमाला	
			चार	(ii) शूल, मुद्रा, खेटक, अभयमुद्रा (या खेटक)	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
७.	मातंग (क) श्वे०	गज	चार	बिल्वफल, पाश (या नागपाश), नकुल (या वज्र), अंकुश	
	(ख) दि०	सिंह (या मेष)	दो	वज्र (या शूल), दण्ड। गदा, पाश (**अपराजितपृच्छा**)	
८.	(i) विजय–श्वे०	हंस	दो	चक्र (या खड्ग), मुद्गर	त्रिनेत्र
	(ii) श्याम–दि०	कपोत	चार	फल, अक्षमाला, परशु, वरदमुद्रा	त्रिनेत्र
९.	अजित (क) श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, अक्षसूत्र (या अभयमुद्रा), नकुल, शूल (या अतुल रत्नराशि)	
	(ख) दि०	कूर्म	चार	फल, अक्षसूत्र, शक्ति, वरदमुद्रा	
१०.	ब्रह्म (क) श्वे०	पद्म	आठ या	मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा या वरदमुद्रा (दक्षिण); नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र (वाम);	त्रिनेत्र, चतुर्मुख
			दस	मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा, नकुल, गदा अंकुश, अक्षसूत्र, पाश, पद्म (**आचारदिनकर**)	
	(ख) दि०	सरोज	आठ	बाण, खड्ग, वरदमुद्रा, धनुष, दण्ड, खेटक, परशु, वज्र	चतुर्मुख
११.	ईश्वर (क) श्वे०	वृषभ	चार	मातुलिंग, गदा, नकुल, अक्षसूत्र	त्रिनेत्र
	(ख) दि०	वृषभ	चार	फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल, दण्ड (या वरदमुद्रा)	त्रिनेत्र
१२.	कुमार (क) श्वे०	हंस	चार	बीजपूरक, बाण (या वीणा), नकुल, धनुष	
	(ख) दि०	हंस (या मयूर)	चार या छह	वरदमुद्रा, गदा, धनुष, फल (**प्रतिष्ठासारोद्धार**); बाण, गदा, वरदमुद्रा, धनुष, नकुल, मातुलिंग (**प्रतिष्ठातिलकम्**)	त्रिमुख या षण्मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१३.	(i) षण्मुख–श्वे०	मयूर	बारह	फल, चक्र, बाण (या शक्ति), खड्ग, पाश, अक्षमाला, नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश, अभयमुद्रा	
	(ii) चतुर्मुख–दि०	मयूर	बारह	ऊपर के आठ हाथों में परशु और शेष चार में खड्ग अक्षसूत्र, खेटक, दण्डमुद्रा	
१४.	पाताल–(क) श्वे०	मकर	छह	पद्म, खड्ग, पाश, नकुल, फलक, अक्षसूत्र	त्रिमुख, त्रिनेत्र
	(ख) दि०	मकर	छह	अंकुश, शूल, पद्म, कषा, हल, फल; वज्र, अंकुश, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख, शीर्षभाग में त्रिसर्पफण
१५.	किन्नर–(क) श्वे०	कूर्म	छह	बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा, नकुल, पद्म, अक्षमाला	त्रिमुख
	(ख) दि०	मीन	छह	मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, अंकुश; पाश, अंकुश, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख
१६.	गरुड - (क) श्वे०	वराह (या गज)	चार	बीजपूरक, पद्म, नकुल (या पाश), अक्षसूत्र	वराह
	(ख) दि०	वराह (या शुक)	चार चार	वज्र, चक्र, पद्म, फल : पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१७.	गंधर्व– (क) श्वे०	हंस (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, पाश, मातुलिंग, अंकुश	
	(ख) दि०	पक्षी (या शुक)	चार	सर्प, पाश, बाण, धनुष; पद्म, अभयमुद्रा, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

संख्या	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१८.	(i) यक्षेन्द्र—श्वे०	शंख (या वृषभ या शेष)	बारह	मातुलिंग, बाण (या कपाल), खड्ग, मुद्गर, पाश (या शूल), अभयमुद्रा, नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र	षण्मुख, त्रिनेत्र
	(ii) खेन्द्र या यक्षेश–दि०	शंख या खर	बारह या छह	बाण, पद्म, फल, माला, अक्षमाला, लीलामुद्रा, धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा। वज्र, चक्र, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (**अपराजितपृच्छा**)	षण्मुख, त्रिनेत्र
१९.	कुबेर या यक्षेश—				
	(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, परशु, शूल, अभयमुद्रा, बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, गरुडवदन (**निर्वाणकलिका**)
	(ख) दि०	गज (या सिंह)	आठ या चार	फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (**अपराजितपृच्छा**)	चतुर्मुख
२०.	वरुण— (क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति, नकुलक, पद्म, (या अक्षमाला), धनुष, परशु।	जटामुकुट, त्रिनेत्र, चतुर्मुख, द्वादशाक्ष (**आचारदिनकर**)
	(ख) दि०	वृषभ	चार या छह	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग, वज्र (**अपराजितपृच्छा**)	जटामुकुट, त्रिनेत्र, अष्टानन
२१.	भृकुटि (क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा, नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, त्रिनेत्र (द्वादशाक्ष **आचारदिनकर**)
	(ख) दि०	वृषभ	आठ	खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र, वरदमुद्रा	चतुर्मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं०	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
२२.	गोमेध (क) श्वे०	नर	छह	मातुलिंग, परशु, चक्र, नकुल, शूल, शक्ति	त्रिमुख, समीप ही अंबिका के निरूपण का निर्देश (आचारदिनकर)
	(ख) दि०	पुष्प (या नर)	छह	मुद्गर (या द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र, वरदमुद्रा। प्रतिष्ठातिलकम् द्रुघण के स्थान पर घन के प्रदर्शन का निर्देश है।	त्रिमुख
२३.	(i) पार्श्व– श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, उरग (या गदा), नकुल, उरग	गजमुख, सर्पफणों के छत्र से युक्त
	(ii) धरण–दि०	कूर्म	चार या छह	नागपाश, सर्प, सर्प, वरदमुद्रा। धनुष, बाण, भृण्डि, मुद्गर, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	सर्पफणों के छत्र से युक्त
२४.	मातंग–(क) श्वे०	गज	दो	नकुल, बीजपूरक	
	(ख) दि०	गज	दो	वरदमुद्रा, मातुलिंग	मस्तक पर धर्मचक्र

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

(ङ) यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(ii) २४–यक्षी

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा सं०	आयुध
१.	चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा)			
	(क) श्वे०	गरुड	आठ या बारह	(i) वरमुद्रा, बाण, चक्र, पाश (दक्षिण); धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश (वाम) (ii) आठ हाथों में चक्र, शेष चार में से दो में वज्र और दो में मातुलिंग, अभयमुद्रा
	(ख) दि०	गरुड	चार या बारह	(i) दो में चक्र और अन्य दो में मातुलिंग, वरदमुद्रा (ii) आठ हाथों में चक्र और शेष चार में से दो में वज्र और दो में मातुलिंग और वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा)
२.	(i) अजिता या अजितबला–श्वे०	लोहासन (या गाय)	चार	वरदमुद्रा, पाश, अंकुश, फल
	(ii) रोहिणी–दि०	लोहासन	चार	वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख, चक्र
३.	(i) दुरितारी–श्वे०	मेष (या मयूर या महिष)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, फल (या सर्प), अभयमुद्रा
	(ii) प्रज्ञप्ति–दि०	पक्षी	छह	अर्द्धेन्दु, परशु, फल, वरदमुद्रा, खड्ग, इढ़ी (या पिंडी)
४.	(i) कालिका (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, सर्प, अंकुश
	(ii) वज्रश्रृंखला–दि०	हंस	चार	वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला, फल
५.	(i) महाकाली–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), मातुलिंग, अंकुश
	(ii) पुरुषदत्ता (या नरदत्ता)–दि०	गज	चार	वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, फल
६.	(i) अच्युता (या श्यामा या मानसी)–श्वे०	नर	चार	वरदमुद्रा, वीणा (या पाश या बाण), धनुष (या मातुलिंग), अभयमुद्रा (या अंकुश)
	(ii) मनोवेगा–दि०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग, मातुलिंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या	यक्षी	वाहन	भुजा संख्या	आयुध
७.	(i) शान्ता–श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, (मुक्तामाला), शूल (या त्रिशूल), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश, अंकुश, (मन्त्राधिराजकल्प)
	(ii) काली–दि०	वृषभ	चार	घण्टा, त्रिशूल (या शूल) फल, वरदमुद्रा
८.	(i) भृकुटि (या ज्वाला)–श्वे०	वराह (या वराल या मराल या हंस)	चार	खड्ग, मुद्गर, फलक (या मातुलिंग), परशु
	(ii) ज्वालामालिनी–दि०	महिष	आठ	चक्र, धनुष, पाश (या नागपाश), चर्म (या फलक), त्रिशूल या (या शूल), बाण, मत्स्य, खड्ग
९.	(i) सुतारा (या चण्डालिका)–श्वे०	वृषभ	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, कलश, अंकुश
	(ii) महाकाली–दि०	कूर्म	चार	वज्र, मद्गर (या गदा), फल (या अभयमुद्रा), वरदमुद्रा
१०.	(i) अशोका (या गोमेधिका)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), फल, अंकुश
	(ii) मानवी–दि०	शूकर (नाग)	चार	फल, वरदमुद्रा, झष, पाश
११.	(i) मानवी (या श्रीवत्सा)-श्वे०	सिंह	चार	वरदमुद्रा, मुद्गर (या पाश), कलश (या वज्र या नकुल), अंकुश, (या अक्षसूत्र)
	(ii) गौरी–दि०	मृग	चार	मुद्गर (या पाश), अब्ज, कलश (या अंकुश), वरदमुद्रा
१२.	(i) चण्डा (या प्रचण्डा या अजिता)–श्वे०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, पुष्प (या पाश), गदा
	(ii) गान्धारी–दि०	पद्म (या मकर)	चार	मुसल, पद्म, वरदमुद्रा, पद्म ।
			या दो	पद्म, फल (अपराजितपृच्छा)

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

संख्या	यक्षी	वाहन	भुजा संख्या	आयुध
१३.	(i) विदिता–श्वे०	पद्म	चार	बाण, पाश, धनुष, सर्प
	(ii) वैरोट्या (यावैरोटी)-दि०	सर्प या व्योमयान	चार या छह	(i) सर्प, सर्प, धनुष, बाण; (ii) दो में वरदमुद्रा, शेष में खड्ग, खेटक, कार्मुक, शर (**अपराजितपृच्छा**)
१४.	(i) अंकुशा–श्वे०	पद्म	चार	खड्ग, पाश, खेटक, अंकुश ।
			या दो	फलक, अंकुश (**पद्मानन्दमहाकाव्य**)
	(ii) अनन्तमती–दि०	हंस	चार	धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा
१५.	(i) कन्दर्पा (या पन्नगा)-श्वे०	मत्स्य	चार	उत्पल, अंकुश, पद्म, अभयमुद्रा
	(ii) मानसी–दि०	व्याघ्र	छह	दो में पद्म और शेष में धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश, बाण, त्रिशूल, पाश,चक्र, डमरू, फल, वरदमुद्रा (**अपराजितपृच्छा**)
१६.	(i) निर्वाणी–श्वे०	पद्म	चार	पुस्तक, उत्पल, कमण्डलु, पद्म (या वरदमुद्रा)
	(ii) महामानसी–दि०	मयूर (या गरुड)	चार	फल, सर्प, (या इढि या खड्ग ?), चक्र , वरदमुद्रा बाण, धनुष, वज्र, चक्र (**अपराजितपृच्छा**)
१७.	(i) बला–श्वे०	मयूर	चार	बीजपूरक, शूल (या त्रिशूल), भुषुण्डि (या पद्म), पद्म
	(ii) जया–दि	शूकर	चार	शंख, खड्ग, चक्र, वरदमुद्रा
			या छह	वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (**अपराजितपृच्छा**)
१८.	(i) धारणी (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	मातुलिंग, उत्पल, पाश (या पद्म), अक्षसूत्र
	(ii) तारावती(या विजया)–दि०	हंस या सिंह	चार	सर्प, वज्र, मृग, (या चक्र), वरदमुद्रा (या फल)
१९.	(i) वैरोट्या–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, मातुलिंग, शक्ति
	(ii) अपराजिता–दि०	शरभ	चार	फल, खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा
२०.	(i) नरदत्ता–श्वे०	भद्रासन (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या त्रिशूल)
	(ii) बहुरूपिणी–दि०	कालानाग	चार या दो	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा । खड्ग, खेटक (**अपराजितपृच्छा**)

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

संख्या	यक्षी	वाहन	भुजा संख्या	आयुध	
२१.	(i) गान्धारी (या मालिनी)–श्वे०	हंस	चार या आठ	वरदमुद्रा, खड्ग, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या फलक)। अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक, मातुलिंग, (**देवतामूर्तिप्रकरण**)	
	(ii) चामुण्डा (या कुसुममालिनी	मकर (या मर्कट)	चार या आठ	दण्ड, खेटक, अक्षमाला, खड्ग शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरू, अक्षमाला, (**अपराजितपृच्छा**)	
२२.	अंबिका (या कुष्माण्डी या आम्रादेवी)–(क) श्वे०	सिंह	चार	मातुलिंग (या आम्रलुम्बि), पाश, पुत्र, अंकुश	एक पुत्र समीप ही निरूपित होगा।
	(ख) दि०	सिंह	दो	अम्रलुम्बि, पुत्र। फल, वरदमुद्रा (**अपराजितपृच्छा**)	दूसरा पुत्र आम्रवृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप होगा।
२३.	पद्मावती–(क) श्वे०	कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)	चार	पद्म, पाश, फल, अंकुश	शीर्षभाग में त्रिसर्पफणछत्र
	(ख) दि०	पद्म (या कुक्कुट-सर्प या कुक्कुट)	चार छह	(i) अंकुश, अक्षसूत्र (या पाश), पद्म, वरदमुद्रा (ii) पाश, खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र, गदा, मुसल (iii) शंख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र, पद्म, उत्पल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घंटा, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुंत, भिंड, माला, फल, गदा पत्र, पल्लव, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में तीन सर्पफणों का छत्र
२४.	(i) सिद्धायिका–श्वे०	सिंह या गज	चार या छह	पुस्तक, अभयमुद्रा, मातुलिंग (या पाश), बाण (या वीणा या पद्म)। पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा, फल (**मन्त्राधिराजकल्प**)	
	(ii) सिद्धायिनी–दि०	भद्रासन (या सिंह)	दो	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), पुस्तक	

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

[च] महाविद्या-मूर्तिविज्ञान-तालिका

संख्या	महाविद्या		वाहन	भुजा सं०	आयुध
१.	रोहिणी	(क) श्वे०	गाय	चार	शर, चाप; शंख, अक्षमाला
		(ख) दि०	पद्म	चार	शख (या शूल), पद्म, फल, कलश (या वरदमुद्रा)
२.	प्रज्ञप्ति	(क) श्वे०	मयूर	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, मातुलिंग, शक्ति (**निर्वाणकलिका**); त्रिशूल, दण्ड, अभयमुद्रा, फल (**मन्त्राधिराजकल्प**)
		(ख) दि०	अश्व	चार	चक्र, खड्ग, शंख, वरदमुद्रा
३.	वज्रशृंखला	(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, दो हाथों में शृंखला, पद्म (या गदा)
		(ख) दि०	पद्म (या गज)	चार	शृंखला, शंख, पद्म, फल
४.	वज्रांकुशा	(क) श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, वज्र, फल, अंकुश (**निर्वाणकलिका**); खड्ग, वज्र, खेटक, शूल (**आचारदिनकर**); फल, अक्षमाला, अंकुश, त्रिशूल (**मन्त्राधिराजकल्प**)
		(ख) दि०	पुष्पयान (या गज)	चार	अंकुश, पद्म, फल, वज्र
५.	अप्रतिचक्रा या चक्रेश्वरी जांबूनदा-दि०	श्वे०	गरुड	चार	चारों हाथों में चक्र प्रदर्शित होगा
			मयूर	चार	खड्ग, शूल, पद्म, फल
६.	नरदत्ता (या पुरुषदत्ता)	(क) श्वे०	महिष (या पद्म)	चार	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), खड्ग, खेटक, फल
		(ख) दि०	चक्रवाक (कलहंस)	चार	वज्र, पद्म, शंख, फल
७.	काली या कालिका	(क) श्वे०	पद्म	चार	अक्षमाला, गदा, वज्र, अभयमुद्रा (**निर्वाणकलिका**); त्रिशूल, अक्षमाला, वरदमुद्रा, गदा (**मन्त्राधिराजकल्प**)
		(ख) दि०	मृग	चार	मुसल, खड्ग, पद्म, फल
८.	महाकाली	(क) श्वे०	मानव	चार	वज्र (या पद्म), फल (या अभयमुद्रा), घण्टा, अक्षमाला
		(ख) दि०	शरभ (या अष्टापदपशु)	चार	शर, कार्मुक, असि, फल

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

संख्या	महाविद्या		वाहन	भुजा संख्या	आयुध
९.	गौरी	(क) श्वे०	गोधा (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, मुसल (या दण्ड), अक्षमाला, पद्म
		(ख) दि०	गोधा	हाथों की संख्या का अनुल्लेख	भुजाओं में केवल पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।
१०.	गांधारी	(क) श्वे०	पद्म	चार	वज्र (या त्रिशूल), मुसल (या दण्ड), अभयमुद्रा, व वरदमुद्रा
		(ख) दि०	कूर्म	चार	हाथों में केवल चक्र और खड्ग का उल्लेख है।
११.	(i) सर्वास्त्रमहाज्वाला या ज्वाला	श्वे०	शूकर (या कलहंस या बिल्ली)	चार	दो हाथों में ज्वाला या चारों हाथों में सर्प
	(ii) ज्वालामालिनी	दि०	महिष	आठ	धनुष, खड्ग, बाण (या चक्र) फलक आदि। देवी ज्वाला से युक्त है।
१२.	मानवी	(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, अक्षमाला, वृक्ष (विटप)
		(ख) दि०	शूकर	चार	मत्स्य, त्रिशूल, खड्ग, एकभुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।
१३.	(i) वैरोट्या	श्वे०	सर्प (या गरुड या सिंह)	चार	सर्प, खड्ग, खेटक, सर्प (या वरदमुद्रा)
	(ii) वैरोटी	दि०	सिंह	चार	करों में केवल सर्प के प्रदर्शन का उल्लेख है।
१४.	(i) अच्छुप्ता	श्वे०	अश्व	चार	शर, चाप, खड्ग, खेटक
	(ii) अच्युता	दि०	अश्व	चार	ग्रन्थों में केवल खड्ग और वज्र धारण करने के उल्लेख हैं।
१५.	मानसी	(क) श्वे०	हंस (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, वज्र, अक्षमाला, वज्र (या त्रिशूल)
		(ख) दि०	सर्प	हाथों की संख्या का अनुल्लेख है।	दो हाथों के नमस्कार मुद्रा में होने का उल्लेख है।
१६.	महामानसी	(क) श्वे०	सिंह (या मकर)	चार	खड्ग, खेटक, जलपात्र, रत्न (या वरद-या-अभयमुद्रा)
		(ख) दि०	सिंह	चार	देवी के हाथ प्रणाम-मुद्रा में होंगे (**प्रतिष्ठासारसंग्रह**); वरदमुद्रा, अक्षमाला, अंकुश, पुष्पहार (**प्रतिष्ठासारोद्धार** एवं **प्रतिष्ठातिलकम्**)

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

(छ) पारिभाषिक शब्दावली

अभयमुद्रा : संरक्षण या अभयदान की सूचक एक हस्तमुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुली हथेली दर्शक की ओर प्रदर्शित होती है।

अष्ट-महाप्रातिहार्य : अशोक वृक्ष, दिव्य-ध्वनि, सुरपुष्पवृष्टि, त्रिछत्र, सिंहासन, चामर-धर, प्रभामण्डल एवं देवदुन्दुभि।

अष्टमांगलिक चिह्न : स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण एवं मत्स्य (या मत्स्ययुग्म)। श्वेताम्बर और दिगम्बर परंपरा की सूचियों में कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है।

आयागपट : जिनों (अर्हतों) के पूजन के निमित्त स्थापित वर्गाकार प्रस्तर पट्ट, जिसे लेखों में आयागपट या पूजाशिला पट कहा गया है। इन पर जिनों की मानव मूर्तियों और प्रतीकों का साथ-साथ अंकन हुआ है।

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी : जैन कालचक्र का विभाजन। प्रत्येक युग में २४ जिनों की कल्पना की गई है। उत्सर्पिणी धर्म एवं संस्कृति के विकास का और अवसर्पिणी अवसान का युग है। वर्तमान युग अवसर्पिणी युग है।

उपसर्ग : पूर्व-जन्मों की वैरी एवं दुष्ट आत्माओं तथा देवताओं द्वारा जिनों की तपस्या में उपस्थित विघ्न।

कायोत्सर्ग-मुद्रा या खड्गासन : जिनों के निरूपण से सम्बन्धित मुद्रा जिसमें समभंग में खड़े जिन की दोनों भुजाएँ लंबवत् घुटनों तक प्रसारित होती हैं। दोनों चरण एक दूसरे से और हाथ शरीर से सटे होने के स्थान पर थोड़ा अलग होते हैं।

जिन : शाब्दिक अर्थ विजेता, अर्थात् जिसने कर्म और वासना पर विजय प्राप्त कर लिया हो। जिन को ही तीर्थंकर भी कहा गया। जैन देवकुल के प्रमुख आराध्य देव।

जिन-चौमुखी या प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका : वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगल-कारी है। इसमें एक ही शिलाखण्ड में चारों ओर चार जिन प्रतिमाएँ ध्यानमुद्रा या कायोत्सर्ग में निरूपित होती हैं।

जिन-चौबीसी या चतुर्विंशति-जिन-पट्ट : २४ जिनों की मूर्तियों से युक्त पट्ट; या मूलनायक के परिकर में लांछन-युक्त या लांछन-विहीन अन्य २३ जिनों की लघु मूर्तियों से युक्त जिन-चौबीसी।

जीवन्तस्वामी महावीर : वस्त्राभूषणों से सज्जित महावीर की तपस्यारत कायोत्सर्ग मूर्ति। महावीर के जीवनकाल में निर्मित्त होने के कारण जीवंतस्वामी या जीवितस्वामी संज्ञा। दिगम्बर परम्परा में इसका अनुल्लेख है। अन्य जिनों के जीवंतस्वामी स्वरूप की भी कल्पना की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर : कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के सम्मिलित चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के कारण जिनों को तीर्थंकर कहा गया।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियों में तीन जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी युगल एवं अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। कुछ में बाहुबली और सरस्वती भी आमूर्तित हैं। जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है।

देवताओं के चतुर्वर्ग : भवनवासी (एक स्थल पर निवास करने वाले), व्यंतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय-नक्षत्र से सम्बन्धित) एवं वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देवता)।

द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियों में दो जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी युगल और अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है।

ध्यानमुद्रा या पर्यंकासन या पद्मासन या सिद्धासन : जिनों के दोनों पैर मोड़कर (पद्मासन) बैठने की मुद्रा जिसमें खुली हुई हथेलियाँ गोद में (बायीं के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।

नन्दीश्वर द्वीप : जैन लोकविद्या का आठवाँ और अन्तिम महाद्वीप, जो देवताओं का आनन्द स्थल है। यहाँ ५२ शाश्वत् जिनालय हैं।

पंचकल्याणक : प्रत्येक जिन के जीवन की पाँच प्रमुख घटनाएँ —च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य (ज्ञान) और निर्वाण (मोक्ष)।

पंचमपरमेष्ठि : अर्हत् (या जिन), सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। प्रथम दो मुक्त आत्माएँ हैं। अर्हत् शरीरधारी हैं पर सिद्ध निराकार हैं।

परिकर जिन-मूर्ति के साथ की अन्य पार्श्ववर्ती या सहायक आकृतियाँ।

बिम्ब : प्रतिमा या मूर्ति।

मांगलिक स्वप्न : संख्या १४ या १६। श्वेताम्बर सूची—गज, वृषभ, सिंह, श्रीदेवी (या महालक्ष्मी या पद्मा), पुष्पहार, चन्द्रमा, सूर्य, सिंहध्वज-दण्ड, पूर्णकुंभ, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। दिगंबर सूची में सिंहध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्रभवन का उल्लेख है तथा मत्स्य-युगल और सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नों की संख्या १६ बताई गई है।

मूलनायक : मुख्य स्थान पर स्थापित प्रधान जिन-मूर्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ललितमुद्रा या ललितासन या अर्धपर्यंकासन : जैन मूर्तियों में सर्वाधिक प्रयुक्त विश्राम का एक आसन। जिसमें एक पैर को मोड़कर पीठिका पर रखा होता है और दूसरा पीठिका से नीचे लटकता है।

लांछन : जिनों से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षण जिनके आधार पर जिनों की पहचान सम्भव होती है।

वरदमुद्रा : वर प्रदान करने की सूचक हस्त-मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुली हथेली बाहर की ओर प्रदर्शित होती है और उंगलियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं।

शलाकापुरुष : ऐसी महान् आत्माएँ जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है। जैन परम्परा में इनकी संख्या ६३ है। २४ जिनों के अतिरिक्त इसमें १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं।

शासनदेवता या यक्ष-यक्षी : जिन प्रतिमाओं के साथ संयुक्त रूप से अंकित देवों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण। जैन परम्परा में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई, जो सम्बन्धित जिन के चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव हैं।

समवसरण : देवनिर्मित सभा जहाँ केवल-ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक जिन अपना प्रथम उपदेश देते हैं और देवता, मनुष्य एवं पशु जगत् के सदस्य आपसी कटुता भूलकर उसका श्रवण करते हैं। तीन प्राचीरों तथा प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वारों वाले इस भवन में सबसे ऊपर पूर्वाभिमुख जिन की ध्यानस्थ मूर्ति बनी होती है।

सहस्रकूट जिनालय : पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सहस्र या अनेक लघु जिन आकृतियाँ बनी होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-सूची

(क) मूल ग्रन्थ-सूची

अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत), सं० पोपटभाई अंबा शंकर मांकड, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, खं० ११५, बड़ौदा, १९५०।

आदिपुराण (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथ सं० ८, वाराणसी, १९६३।

उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथ १४ दिल्ली, १९५४।

कल्पसूत्र (भद्रबाहुकृत), सं० देवेन्द्रमुनि शास्त्री, शिवाना, १९६८।

तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभ कृत), सं० आदिनाथ उपाध्ये एवं हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रंथमाला १, शोलापुर. १९४३।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्र कृत), अनु० हेलेन एम० जानसन, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, ६ खण्ड, बड़ौदा १९३१, १९३७, १९४९, १९५४, १९६२।

देवतामूर्तिप्रकरण (सूत्रधार मण्डन कृत), सं० उपेंद्रमोहन सांख्यतीर्थ, संस्कृत सिरीज १२, कलकत्ता, १९३६।

निर्वाणकलिका (पादलिप्तसूरि कृत), सं० मोहनलाल भगवानदास, मुनि श्री मोहनलाल जी जैन ग्रंथमाला ५, बम्बई, १९२६।

पद्मपुराण (रविषेण कृत), भाग १, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमाला, संस्कृत ग्रंथांक २०, वाराणसी १९५८।

प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचन्द्र कृत), शोलापुर।

प्रतिष्ठासारसंग्रह (वसुनन्दि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर, अहमदाबाद।

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर कृत), सं० मनोहर लाल शास्त्री, बम्बई, १९१७।

बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत), सं० ए० झा० वाराणसी, १९५९।

महापुराण (पुष्पदंत कृत), सं० पी० एल० वैद्य, मानिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला ४२, बम्बई, १९४१।

मानसार खं० ३, अनु० प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहाबाद।

रूपमण्डन (सूत्रधारमण्डन कृत), सं० बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, विक्रम सं २०२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंशपुराण (जिनसेन कृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथांक २७, वाराणसी, १९६२ ।

(ख) सहायक ग्रन्थ एवं लेख सूची

अग्रवाल, वी० एस० (१) "सम ब्राह्मैनिकल डीटीज इन जैन रेलिजस आर्ट", **जैन एन्टिक्वेरी**, खं० ३, अंक ४, मार्च, १९३८, पृ० ८३–९२ ।

(२) **इण्डियन आर्ट**, भाग १, वाराणसी, १९६५ ।

अवस्थी, रामाश्रय, **खजुराहो की देव प्रतिमाएँ**, आगरा, १९६७ ।

आनन्द, मुल्कराज, (सं०) "खजुराहो" (स्पेशल नंबर) **मार्ग**, ख० १०, अ० ३, १९ ७ ।

कँवरलाल, **इम्मार्टल खजुराहो**, दिल्ली, १९६५ ।

कनिंघम, ए०, **आर्किअलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट**, वर्ष १८६२–६५, खं १–२, वाराणसी, १९७२ (पुनर्मुद्रित); वर्ष १८७१–७२, खं० ३, वाराणसी, १९६६ (पुनर्मुद्रित) ।

काले, दामोदर जयकृष्ण, **खर्जूरवाहक अर्थात् वर्तमान खजुराहो, प्रयाग** ।

कीलहार्न, एफ०, "इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम खजुराहो", **एपिग्राफिया इण्डिका, खं० १**, १८८२, कलकत्ता ।

कुमारस्वामी, ए०के०, **हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ऐण्ड इण्डोनेशियन आर्ट**, लन्दन, १९२७ ।

कृष्णदेव, (१) "दि टेम्पल्स आफ खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया" **एन्शियण्ट इण्डिया**, अंक १५, १९५९, पृ० ४३–६५; खजुराहो, **जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर**, खण्ड २ (संपादक ए० घोष) नयी दिल्ली, १९७५, पृ० २७८–९५ ।

(२) "मालादेवी टेम्पल ऐट ग्यारसपुर, **महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम**, बम्बई, १९६८, पृ० २६०–६६ ।

(३) **टेम्पल्स आफ नार्थ इण्डिया**, नयी दिल्ली, १९६९ ।

(४) **खजुराहो**, नयी दिल्ली, १९७५ ।

गांगुली, ओ० सी०, गोस्वामी, ए० तथा तरफदार, अमिय, **दि आर्ट आफ चन्देलज**, कलकत्ता, १९५७ ।

गुप्ते, आर० एस० तथा महाजन, बी० डी०, **अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स**, बम्बई, १९६२ ।

घोष, अमलानंद (संपादक), **जैन कला एवं स्थापत्य** (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९७५ ।

चंदा, आर० पी०(१) "जैन रिमेन्स ऐट राजगिर", **आर्किअलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट**, १९२५–२६, पृ० १२१–२७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) "दि श्वेतांबर ऐण्ड दिगंबर इमेजेज आफ दि जैनज", **आर्किअलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट**, १९२५–२६, पृ० १७६–८२।

(३) **मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम**, लन्दन, १९३६।

चौधरी, गुलाबचंद्र, **पालिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज** (सरका ६५० ए० डी० टू० १३०० ए० डी०), अमृतसर, १९६३।

जयन्तविजय मुनिश्री, **होली आबू** (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४।

जानसन, एच०एम०, "श्वेतांबर जैन आइकानोग्राफी", **इण्डियन एण्टिक्वेरी**, खं० ५६, १९२७, पृ० २३–२६।

जायसवाल, के०पी०, (१) "जैन इमेज आफ मौर्य पिरियड", **जर्नल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी**, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०–३२।

(२) "ओल्डेस्ट जैन इमेजेज डिस्कवर्ड", **जैन एण्टिक्वेरी**, खं० ३, अं० १, जून १९३७, पृ० १७–१८।

जेनास, ई० तथा आबोयर, जे०, **खजुराहो**, हेग, १९६०।

जैन, छोटेलाल, **जैन बिबलिआग्राफी**, कलकत्ता, १९४५।

जैन, जे० सी०, **लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स**, बम्बई, १९४७।

जैन, ज्योतिप्रसाद, (१) 'देवगढ़ और उसका कला वैभव', **जैन एण्टिक्वेरी** खं० २१, अं० १, जून १९५५, पृ० ११-२२।

(२) **दि जैन सोर्सेज आफ हिस्ट्री आफ ऐन्शण्ट इण्डिया** (१०० बी० सी०-ए० डी० ९००), दिल्ली, १९६४।

(३) **प्रमुख ऐतिहासिक जैनपुरुष और महिलाएँ**, दिल्ली, १९७५।

जैन, नीरज, (१) 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ६, फरवरी १९६३, पृ० २७७–७८।

(२) 'पतियानदाई मंदिर की मूर्ति और चौबीस जिन शासनदेवियाँ', **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ३, अगस्त १९६३, पृ० ९९–१०३।

(३) 'ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय की जैन मूर्तियाँ' **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ५, दिसम्बर १९६३, पृ० २१४–१६।

(४) 'तुलसी संग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व, **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ६, फरवरी १९६४, पृ० २७९–८०।

(५) 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० २, जून १९६५, पृ० ६५–६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) 'अतिशय क्षेत्र अहार', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १७७–७९ ।

(७) 'अहार का शांतिनाथ संग्रहालय', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अंक ५, दिसम्बर १९६५, पृ० २२१–२२ ।

(८) **खजुराहो के जैन मंदिर**, सतना, १९६७ ।

जैन, नीरज तथा जैन दशरथ, **जैन मान्युमेण्ट्स ऐट खजुराहो**, सतना १९६८ ।

जैन, बलभद्र, **भारत के दिगंबर जैन तीर्थ** (तृतीय भाग, मध्य प्रदेश), बम्बई १९७६, पृ० १३१–५० ।

जैन, बालचंद्र, (१) 'महाकौशल का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १७, अंक ३, अगस्त १९६४, पृ० १३१–३३ ।

(२) 'जैन प्रतिमालक्षण', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ३, अगस्त १९६६, पृ० २०४–१३ ।

(३) 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ४, अक्तूबर, १९६६, पृ० २४४–४५ ।

(४) जैन प्रतिमाविज्ञान, जबलपुर, १९७४ ।

जैन, भागचन्द्र, **देवगढ़ की जैन कला**, नयी दिल्ली, १९७४ ।

जैन, शशिकान्त, 'सम कामन एलिमेण्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स–१–यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **जैन एण्टिक्वेरी**, खं० १८, अं० २, दिसम्बर १९५२, पृ० ३२–३५; ख० १९, अं० १, जून १९५३, पृ० २१–२३ ।

जैन, हीरालाल, (१) जैन शिलालेख-संग्रह (सं०), भाग १, माणिकचन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थ-माला २८, बम्बई, १९२८ ।

(२) **भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२ ।

जैनी, जे० एल०, 'सम नोट्स आन दि दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', **इण्डियन एण्टिक्वेरी**, खं० ३२, दिसम्बर १९०४, पृ० ३३०–३२ ।

जोशी, एन० पी०, **मथुरा स्कल्पचर्स**, मथुरा, १९६६ ।

झा, शक्तिधर, 'हिन्दू डीटीज इन दि जैन पुराणज', **डा० शात्कारी मुकर्जी फेलिसिटेशन वाल्यूम** (सं० बी० पी० सिन्हा आदि), चौखम्बा संस्कृत स्टडीज खण्ड ६९, वाराणसी, १९६९, पृ० ४५८–६५ ।

ठाकुर, एस०आर०, **केटलाग आफ स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम ग्वालियर**, लश्कर ।

डे, सुधीन, 'चौमुख—ए सिम्बालिक जैन आर्ट', **जैन जर्नल**, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० २७–३० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम**, बंबई, १९६८, पृ० २९०–३४७।

तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, (१) 'भारत कला भवन का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष २४, अं० २, जून १९७१, पृ० ५१–५२, ५८।

(२) 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन आफ ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', **जैन जर्नल**, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० ४१–४३।

(३) 'खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर की रथिकाओं में जैन देवियाँ', **अनेकान्त**, वर्ष २४, अं० ४, अक्तूबर १९७१, पृ० १८३–८४।

(४) 'खजुराहो के आदिनाथ मंदिर के प्रवेशद्वार की मूर्तियाँ', **अनेकान्त**, वर्ष २४, अं० ५, दिसम्बर १९७१, पृ० २१८–२१।

(५) 'खजुराहो के जैन मंदिरों के डोर-लिंटल्स पर उत्कीर्ण जैन देवियाँ', **अनेकान्त**, वर्ष २४, अं० ६, फरवरी १९७२, पृ० २५१–५४।

(६) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तिगत अवतारणा', **अनेकान्त**, वर्ष २५, अं० १, मार्च-अप्रैल १९७२, पृ० ३५–४०।

(७) 'कुम्भारिया के सम्भवनाथ मंदिर की जैन देवियाँ', **अनेकान्त**, वर्ष २५, अं० ३, जुलाई-अगस्त १९७२, पृ० १०१–०३।

(८) 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष २५, अं० ४, सितम्बर-अक्तूबर १९७२, पृ० १४५–४७।

(९) 'रिप्रेजेन्टेशन आफ सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स आफ खजुराहो, **जर्नल गुजरात रिसर्च सोसाइटी**, ख० ३४, अं० ४, अक्तूबर १९७२, पृ० ३०७–१२।

(१०) 'ए ब्रीफ सर्वे आफ दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुम्भारिया, नार्थ गुजरात', **संबोधि**, ख० २, अं० १, अप्रैल १९७३, पृ० ७–१४।

(११) 'ए नोट आन ऐन इमेज आफ राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो, **जैन जर्नल**, ख० ८, अं० १, जुलाई १९७३, पृ० ३०–३२।

(१२) 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', **ईस्ट ऐण्ड वेस्ट** (रोम), खं० २३, अं० ३–४, सितम्बर–दिसम्बर १९७३, पृ० ३४७–५३।

(१३) 'दि आइकानोग्राफी ऑफ दि इमेजेज ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', **जर्नल गुजरात रिसर्च सोसाइटी**, ख० ३५, अं० ४, अक्तूबर १९७३, पृ० ३–९।

(१४) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमानिरूपण', **अनेकान्त**, वर्ष २७, अंक २, अगस्त १९७४, पृ० ३४–४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१५) 'ए यूनीक इमेज आफ ऋषभनाथ ऐट आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा**, खं० २४, अं० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४७–४९।

(१६) 'इमेजेज ऑव अम्बिका आन दि जैन टेम्पल्स ऐट खजुराहो', **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट** बड़ौदा, खं० २४, अं० १–२, सितम्बर–दिसम्बर १९७४, पृ० २४३–४६।

(१७) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमानिरूपण', **संबोधि**, खं० ३, अं० २–३, दिसम्बर १९७४, पृ० २७–४४।

(१८) 'दि जिन इमेजेज ऑफ खजुराहो विद् स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ', **जैन जर्नल**, खं० १०, अंक० १, जुलाई १९७५, पृ० २२–२५।

(१९) 'जैन यक्ष गोमुख का प्रतिमानिरूपण', **श्रमण**, वर्ष २७, अं० ९, जुलाई १९७६, पृ० २९–३६।

(२०) 'दि आइकानोग्राफी ऑफ यक्षी सिद्धायिका', **जर्नल एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता)**, खं० १५, अं० १–४, १९७३ (मई १९७७), पृ० ९७–१०३।

(२१) 'जिन इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', **महावीर ऐण्ड हिज टीचिंग्स**, (सं० ए० एन० उपाध्ये आदि), भगवान् महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव समिति, बम्बई १९७७, पृ० ४०९–२८।

(२२) 'ए यूनीक डेर–लिटल फ्राम खजुराहो', **जैन जर्नल**, खं० १३, अं० २, अक्तूबर १९७८, पृ० ७५–७७।

(२३) 'दि इमेजेज ऑफ दि जैन तीर्थंकर नेमिनाथ ऐट खजुराहो', **जैन जर्नल**, खं० १३, अं० ४, अप्रैल १९७९, पृ० १५५–५८।

(२४) 'आइकानोग्राफिक नोट्स आन दि जिन इमेजेज ऑफ खजुराहो विद स्पेशल रेफरेन्स टू महावीर इमेजेज', **'प्रोसिडिंग्स इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस** ३९वाँ अधिवेशन (हैदराबाद, १९७८) प्रथम भाग, पृ० २५०-५९।

(२५) **जैन प्रतिमाविज्ञान**, वाराणसी, १९८१।

(२६) **एलिमेण्ट्स ऑफ जैन आइकानोग्राफी**, वाराणसी, १९८३।

त्रिपाठी, एल० के० (१) **एवोल्यूशन ऑफ टेम्पल आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया**, पी–एच०डी० अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८।

(२) 'दि एराटिक स्कल्पचर्स ऑफ खजुराहो ऐण्ड देयर प्राबेबल एक्सप्लानेशन', **भारती**, अं० ३, १९५९–६०, पृ० ८२–१०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षित, एस० के०, **ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगाँव), विन्ध्यप्रदेश,** नवगाँव, १९५६ ।

दीक्षित, आर० के० **दि चन्देलज ऑफ दि जेजाकभुक्ति ऐण्ड देयर टाइम्स,** पी०एच०डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय ।

देसाई, पी० बी०, (१) **जैनिजम इन साउथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स,** जीवराज जैन ग्रन्थमाला ६, शोलापुर, १९६३ ।

(२) 'यक्षी इमेजेज इन साउथ इण्डियन जैनिजम', **डा० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम** (सं० जी० टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३४४–४८ ।

दोशी, बेचरदास, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास,** भाग १, वाराणसी, १९६६ ।

नाहटा, अगरचन्द, (१) 'तालघर में प्राप्त १६० जिन प्रतिमाएँ', **अनेकान्त,** वर्ष १९, अं० १–२, १९६६ (अप्रैल–जून), पृ० ८१–८३ ।

(२) 'भारतीय वास्तुशास्त्र में जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य', **अनेकान्त,** वर्ष २०, अं० ५, दिसम्बर १९६७, पृ० २०७–१५ ।

नाहटा, भंवरलाल, 'तालागुडी की जैन प्रतिमा', **जैन जगत,** वर्ष १३, अं० ९–११, दिसम्बर १९५९–फरवरी १९६०, पृ० ६०–६१ ।

नाहर, पी० सी०, **जैन इन्स्क्रिप्शन्स,** भाग १, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला ८, कलकत्ता, १९१८ ।

पाटिल, डी० आर०, **दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार,** हिस्टारिकल रिसर्च सिरीज ४, पटना, १९६३ ।

प्रसाद, त्रिवेणी, 'जैन प्रतिमाविधान', **जैन एण्टिक्वेरी,** खं० ४, अं० १, जून १९३७, पृ० १६–२३ ।

प्रेमी, नाथूराम, **जैन साहित्य और इतिहास,** बम्बई, १९५६ ।

बनर्जी, जे० एन० **दि डीवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी,** कलकत्ता, १९५६ ।

बर्जेस, जे० 'दिगम्बर जैन आइकानोग्राफी', **इण्डियन एण्टिक्वेरी,** खं० ३२, १९०३, पृ० ४५९–६४ ।

ब्राउन, पर्सी, **इण्डियन आर्किटेक्चर** (बुद्धिस्ट ऐण्ड हिन्दू पिरियड्स), बम्बई, १९७१ (पुनर्मुद्रित) ।

न, क्लाज, (१) 'दि फिगर ऑफ दि टू लोअर रिलिफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल ऐट खजुराहो', **आचार्य श्री विजय वल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ** (सं० मोती चन्द्र आदि), बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) 'जैन तीर्थंज इन मध्य देश : दुदही', **जैन युग**, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३ ।

(३) जैन तीर्थंज इन मध्यदेश : चाँदपुर', **जैन युग**, वर्ष २, अप्रैल, १९५९, पृ० ६७–७० ।

(४) **दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, लिडेन**, १९६९ ।

बोस, एन० एस०, **हिस्ट्री आफ चन्देलज**, कलकत्ता, १९५६ ।

भट्टाचार्य, ए० के०, (१) "आइकानोग्राफी आफ सम माइनर डीटीज इन जैनिजम", **इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली**, खं० २९, अं० ४, दिसम्बर १९५३, पृ० ३३२–३९ ।

(२) "जैन आइकानोग्राफी", **आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ** (सं० शतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १९१–२०० ।

(३) "एन इण्ट्रोडक्शन टू दि जैन गॉडेस पद्मावती", **मुनि जिन विजय अभिनन्दन ग्रन्थ–भारतीय पुरातत्त्व** (सं० आर० एस० डाण्डेकर आदि), जयपुर, १९७१, पृ० २१९–२९ ।

भट्टाचार्य, बी०, "जैन आइकानोग्राफी", **जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ** (सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई), बम्बई १९३६, पृ० ११४–२१ ।

भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, दिल्ली, १९७४, (पुनर्मुद्रित) ।

मण्डारकर, डी० आर०, "जैन आइकानोग्राफी", **आर्कियलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट**, १९०५–०६, कलकत्ता, १९०८, पृ० १४१–४९ ।

मानव, महेन्द्र कुमार (सं०), **कलातीर्थ खुजराहो**, छतरपुर ।

मित्रा, देबला, "शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स", **जर्नल एशियाटिक सोसायटी**, खं० १, अं० २, १९५९, पृ० १२७–३३ ।

मित्रा, शिशिर कुमार, **दि अर्ली रूलर्स आफ खजुराहो**, कलकत्ता, १९५८ ।

रामचन्द्रन, टी० एन०, **तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बुलेटिन मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम, न्यू सिरिज, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४ ।

रोलैण्ड, बेन्जामिन, **दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया**, लन्दन, १९५३ ।

लालवानी, गणेश, (सं०) **जैन जर्नल** (महावीर जयंती स्पेशल नंबर), खं० ३, अं० ४, अप्रैल १९६९ ।

वाजपेयी, के० डी०, मध्य प्रदेश की प्राचीन जैन कला, **अनेकान्त**, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० ९८–९९; वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५–१६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्या प्रकाश, **खजुराहो** (ए स्टडी इन दि कल्चरल कण्डीशन्स आफ चन्देल सोसाइटी), दिल्ली ।

विण्टरनित्ज, एम, **ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर**, खं २, (बुद्धिस्ट ऐण्ड जैन लिट्रेचर।', कलकत्ता, १९३३ ।

शर्मा, बी० एन०, **जैन प्रतिमाएँ**, दिल्ली, १९७९ ।

शास्त्री, अजय मित्र, 'त्रिपुरी का जैन, पुरातत्व', **जैन मिलन**, वर्ष, १२, अं० २, दिसम्बर १९७०, पृ० ६९–७२ ।

शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० ५४–६९ ।

शाह, सी० जे०, **जैनिज्म इन नार्थ इण्डिया**, लन्दन, १९३२ ।

शाह, यू० पी०, (१) 'आइकानोग्राफी ऑफ दि जैन गॉडेस अंबिका', **जर्नल यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे**, खं० ९, १९४०–४१, पृ० १४७–६९ ।

(२) 'आइकानोग्राफी ऑफ दि जैन गॉडेस सरस्वती', **जर्नल यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे**, खं० १० (न्यू सिरिज), सितम्बर १९४१, पृ० १९५–२१८ ।

(३) 'आइकानोग्राफी ऑफ दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', **जर्नल इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट**, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७ ।

(४) 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट** (बड़ौदा), खं० ३, अं० १, सितम्बर १९५३, पृ० ५४–७१ ।

(५) **स्टडीज इन जैन आर्ट**, बनारस, १९५५ ।

(६) 'पैरेण्ट्स ऑफ दि तीर्थंकरज', **बुलेटिन प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, वेस्टर्न इण्डिया**, अं० ५, १९५५–५७, पृ० २४–३२ ।

(७) **अकोटा ब्रोन्जेज**, बंबई, १९५९ ।

(८) 'इण्ट्रोडक्शन ऑफ शासनदेवताज इन जैन वरशिप', **प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ओरियण्टल कान्फरेन्स**, २०वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पूना, १९६१, पृ० १४१–५२ ।

(९) "जैन आइकानोग्राफी–ए ब्रीफ सर्वे", **मुनिजिन विजय अभिनन्दन ग्रन्थ-भारतीय पुरातत्व**, (सं० आर० एस० डाण्डेकर आदि), जयपुर, १९७१, पृ० १८४–२१८ ।

(१०) "आइकानोग्राफी ऑफ चक्रेश्वरी", **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट**, (बड़ौदा), खं० २०, अं० ३, मार्च १९७१, पृ० २८०–३११ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) "बिगिनिंग्स ऑफ जैन आइकानोग्राफी", **संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका** (लखनऊ), अं० ९, जून १९७२, पृ० १–१४।

(१२) "यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर", **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट** (बड़ौदा), खं० २२, अं० १–२, सितम्बर–दिसम्बर १९७२, पृ० ७०–७८।

(१३) "सम माइनर जैन डिटीज-मातृकाज ऐण्ड दिक्पालज", **जर्नल एम० एस० यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा**, खं० ३०, अं० १, १९८१, पृ० ७५–१०९।

(१४) 'माइनर जैन डिटीज', **जर्नल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट** (बड़ौदा), खं० ३१, अं० ३, मार्च १९८२, पृ० २७४–९०; खं० ३१, अं० ४, जून १९८२, पृ० ३७१–७८।

संकलिया, एच० डी०, (१) 'जैन आइकानोग्राफी', **न्यू एण्टिक्वेरी**, खं० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०।

(२) 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **बुलेटिन डेकन कालेज रिसर्च इन्स्टिट्यूट** (पूना), खं० १, अं० २–४, १९४०, पृ० १५७–६८।

(३) 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ़', **जर्नल इण्डियन सोसाइटी आव ओरियण्टल आर्ट**, खं० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४।

सरकार, डी० सी०, **सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स**, खं० १, कलकत्ता, १९६५।

सिक्दार, जे० सी०, **स्टडीज इन दि भगवतीसूत्र**, मुजफ्फरपुर, १९६४।

स्मिथ, वी० ए०, **दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज आव मथुरा**, वाराणसी, १९६९ (पुनर्मुद्रित)।

हस्तीमल, **जैन धर्म का मौलिक इतिहास**, खं १, जयपुर, १९७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-सूची

चित्र संख्या

१. खजुराहो के जैन मन्दिर ।
२. पार्श्वनाथ मन्दिर (दक्षिण-पूर्व), खजुराहो, ल० ९५०–७० ई० ।
३. पार्श्वनाथ प्रतिमा एवं प्रवेशद्वार, गर्भगृह, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
४. यम, शिव, लक्ष्मी-नारायण एवं अम्बिका, दक्षिणी भित्ति, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
५. राम-सीता-हनुमान, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
६. काँटा निकलवाती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (गर्भगृह), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
७. अंजन लगाती हुई अप्सरा, दक्षिणी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
८. नूपुर बाँधती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
९. महावर रचाती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
१०. मन्दिर-लेख (सम्वत् १०११), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
११. घण्टई मन्दिर, खजुराहो, ल० १० वीं शती ई० ।
१२. प्रवेशद्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियां-मांगलिक स्वप्न, नवग्रह एवं जिन), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १० वीं शती ई० ।
१३. प्रवेशद्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियाँ-मांगलिक स्वप्न, नवग्रह, गजलक्ष्मी, चक्रेश्वरी एवं सरस्वती), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १० वीं शती ई० ।
१४. प्रवेशद्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियाँ-मांगलिक स्वप्न, जैन मुनि, लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं नवग्रह), मन्दिर ७, खजुराहो, ल० १० वी शती ई० ।
१५, आदिनाथ मन्दिर (पश्चिम-उत्तर), खजुराहो ।
१६. अम्बिका, लक्ष्मी एवं अन्य देव आकृतियाँ, पूर्वी शिखर, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
१७. प्रवेशद्वार (गर्भगृह, आदिनाथ मन्दिर), खजुराहो ।
१८. प्रवेशद्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियाँ-अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती एवं मांगलिक स्वप्न), आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
१९. देव, अप्सरा तथा गन्धर्व मूर्ति पट्टिकाएँ, उत्तरी भित्ति. आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
२०. नर्तकी एवं दर्पणा, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो ।
२१. ऋषभनाथ, पश्चिमी देवालय, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १० वीं शती ई० ।
२२. ऋषभनाथ (अम्बिका और चक्रेश्वरी सहित), जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६५१), ल० १० वीं शती ई० ।
२३. ऋषभनाथ, पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६८२), ल० १०वीं शती ई० ।
२४. ऋषभनाथ (गोमुख-चक्रेश्वरी एवं नवग्रहों सहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६६७), ल० १० वीं शती ई० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. ऋषभनाथ (नवग्रहों सहित), मन्दिर १/५, खजुराहो, ल० ११ वीं शती ई०।
२६. सम्भवनाथ (यक्ष-यक्षी तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ सहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १७१५), ल० १० वीं शती ई०।
२७. शान्तिनाथ (१२ फीट ऊँची), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, १०२८ ई०।
२८. महावीर (यक्ष-यक्षी एवं शान्तिदेवी सहित), मन्दिर ७, खजुराहो, ११वीं शती ई०।
२९. द्वितीर्थी जिनमूर्ति (लांछन रहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६३५), ११ वीं शती ई०।
३०. जैन युगल, शान्तिनाथ मन्दिर (परिसर), खजुराहो, १० वीं शती ई०।
३१. अम्बिका-द्विभुजा (पार्श्वनाथ मन्दिर, दक्षिणी भित्ति), खजुराहो।
३२. अम्बिका (यक्ष-यक्षी सहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो, १० वीं शती ई०।
३३. उत्तरंग (अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती तथा नवग्रह), जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १४६७), ल० १० वीं शती ई०।
३४. उत्तरंग (अम्बिका, चक्रेश्वरी, लक्ष्मी एवं नवग्रह), दिगम्बर जैन धर्मशाला (शान्तिनाथ मन्दिर के समीप), खजुराहो, ११ वीं शती ई०।
३५. जैन महाविद्याएँ (पुरुषदत्ता एवं अप्रतिचक्रा), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११ वीं शती ई०।
३६. जैन महाविद्याएँ (गौरी), पश्चिमी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११ वीं शती ई०।
३७. जैन महाविद्याएँ (वज्रशृंखला या वज्रांकुशा और काली), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११ वीं शती ई०।
३८. जैन महाविद्याएँ (जांबूनदा ?), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११ वीं शती ई०।
३९. क्षेत्रपाल (चन्दकाम), शान्तिनाथ मन्दिर, प्रवेशद्वार के समीप (के. १,३,) खजुराहो, ल० ११ वीं शती ई०।
४०. साहू शान्तिप्रसाद जैन कला संग्रहालय भवन, खजुराहो।
४१. ऋषभनाथ (गोमुख-चक्रेश्वरी सहित), पार्श्वों में पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ, साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६)—आगे से सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं–१२ वीं शती ई०।
४२. ऋषभनाथ, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई०।
४३. ऋषभनाथ की चतुर्विंशति मूर्ति, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई०।
४४. ऋषभनाथ, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई०।
४५. द्वितीर्थी तीर्थङ्कर मूर्ति, सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक ३१), ल० ११ वीं शती ई०।
४६. जैन युगल (तीर्थङ्कर के माता-पिता ?), सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक ४९), ल० ११ वीं शती ई०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. अम्बिका यक्षी, सा० शा० जै० क० सं०, ल० १० वीं शती० ई० ।
४८. लक्ष्मी, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
४९. दिक्पाल कुबेर, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
५०. बाहुबली मूर्ति (अधाभाग अवशिष्ट), सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं–१२ वीं शती ई० ।
५१. उपासक मूर्ति (तीर्थङ्कर मूर्ति का अवशिष्ट भाग), सा० शा० जै० क० सं०, ल० १२ वीं शती ई० ।
५२. खण्डित मस्तक (पाहिल), सा० शा० जै० क० सं०, ल० १२ वीं शती ई० ।
५३. भट्टारक नयनन्दी (जैन आचार्यों की तत्त्व चर्चा), सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक २३३), ल० १२ वीं शती ई० ।
५४. क्षेत्रपाल, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
५५. तीर्थङ्कर-माता के सोलह मांगलिक स्वप्न, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
५६. आचार्य की वन्दना हेतु यात्रा, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
५७. तीर्थङ्कर का अभिषेक दृश्य, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।
५८. साधुओं द्वारा ऋषभनाथ की वन्दना, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११ वीं शती ई० ।

(**चित्र संख्या** : ३–५, १०–१३, १५–२०, २३, २४, २६, २७, २९, ३१–३३, ३५–३९ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी; **चित्र संख्या** ३० आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली एवं अन्य सभी चित्र दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खजुराहो प्रबन्ध समिति, खजुराहो के सौजन्य से ।)

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

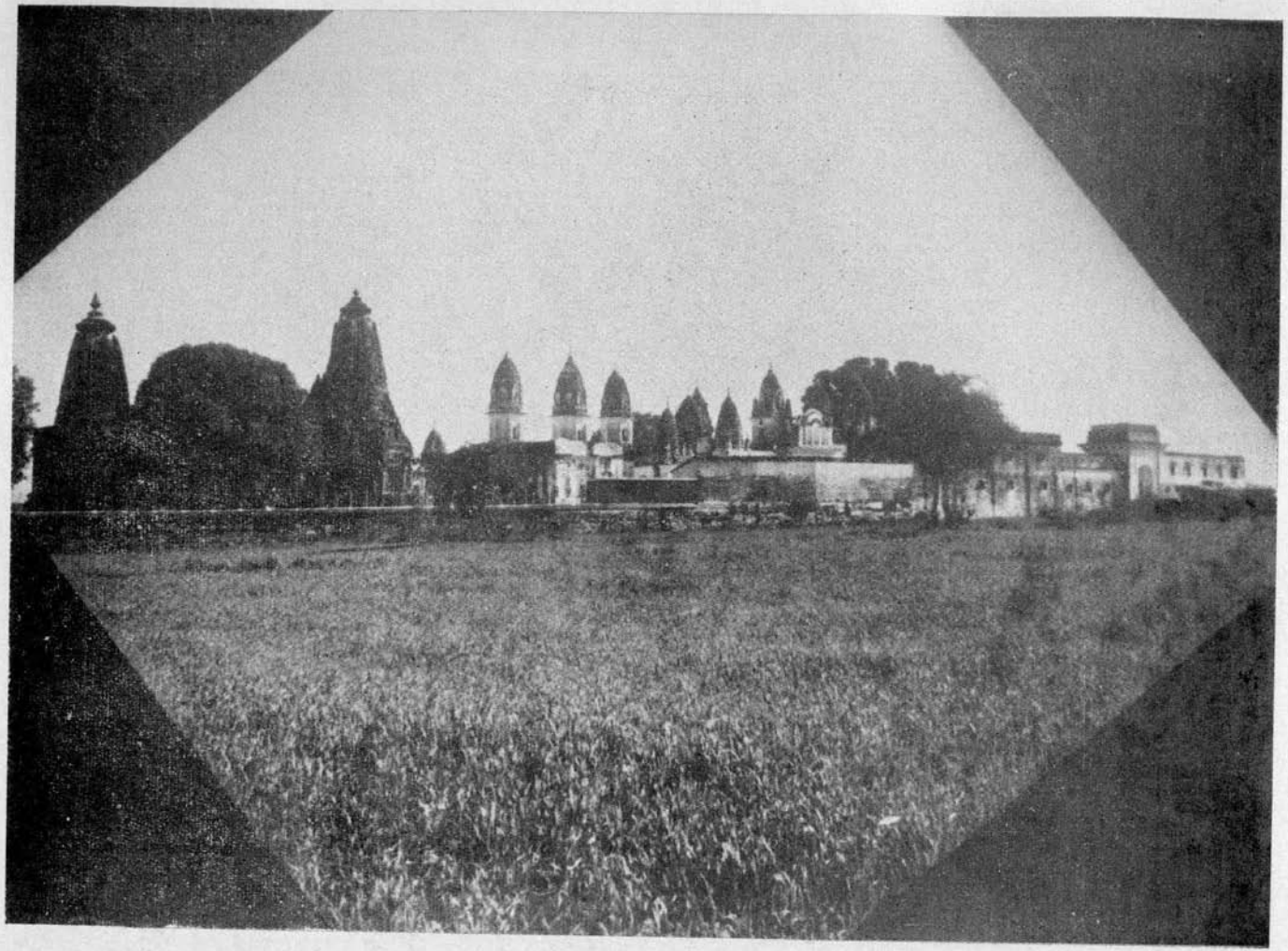

चित्र १ : खजुराहो के जैन मन्दिर

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

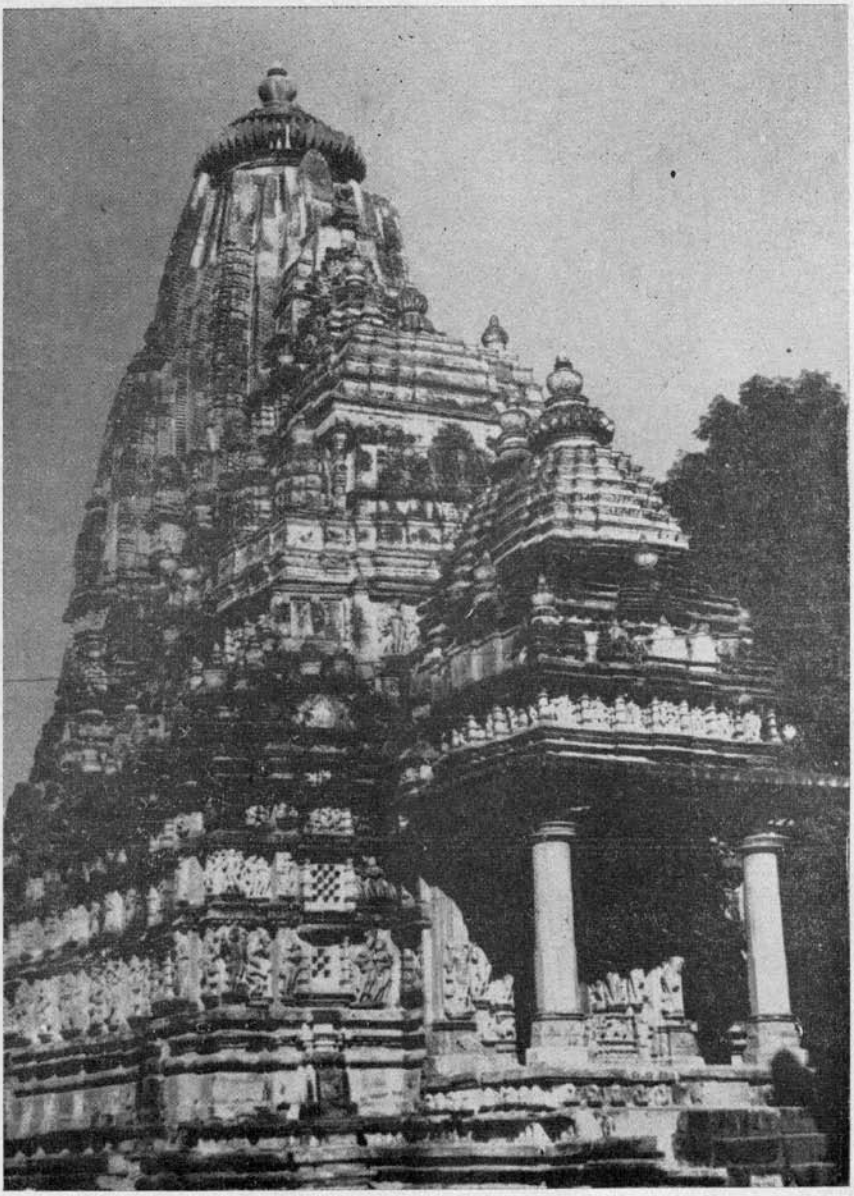

चित्र २ : पार्श्वनाथ मन्दिर (दक्षिण-पूर्व), खजुराहो, ल० ९५०-७० ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

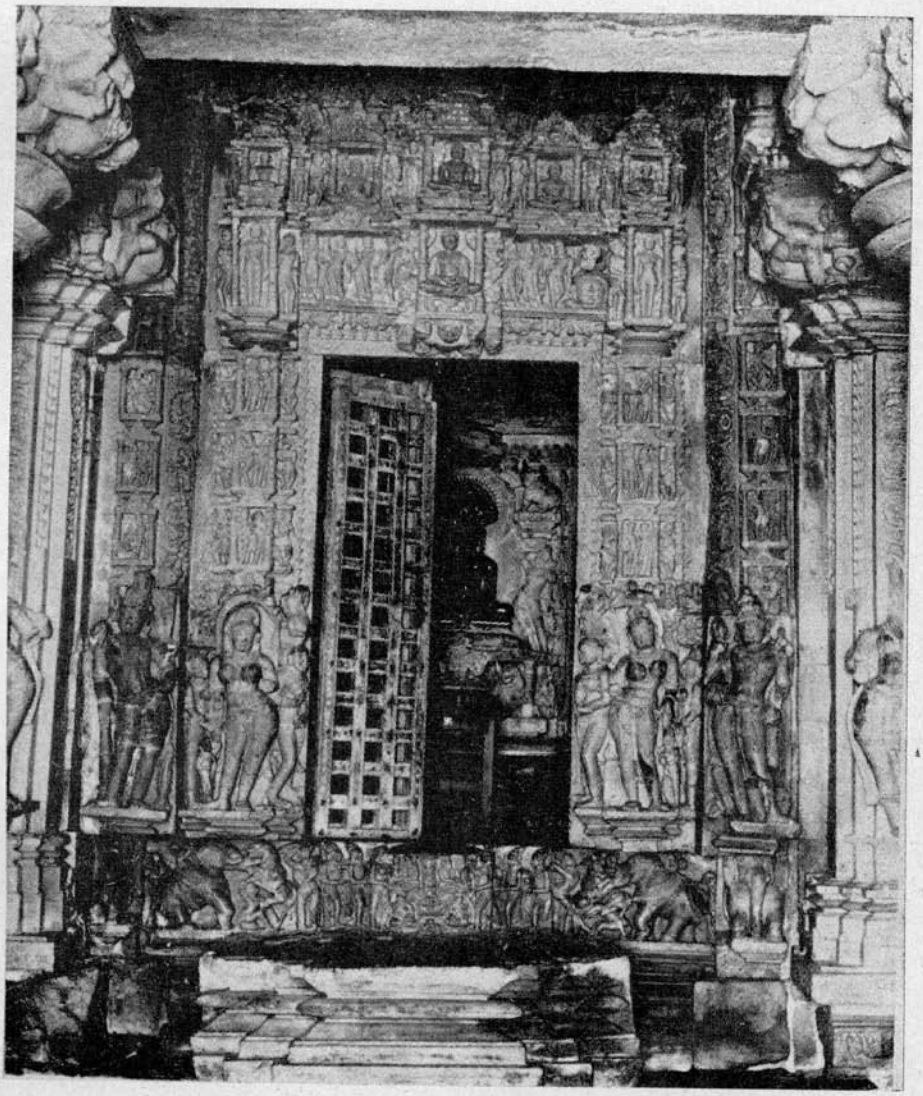

चित्र ३ : पार्श्वनाथ प्रतिमा एवं प्रवेश-द्वार, गर्भगृह, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

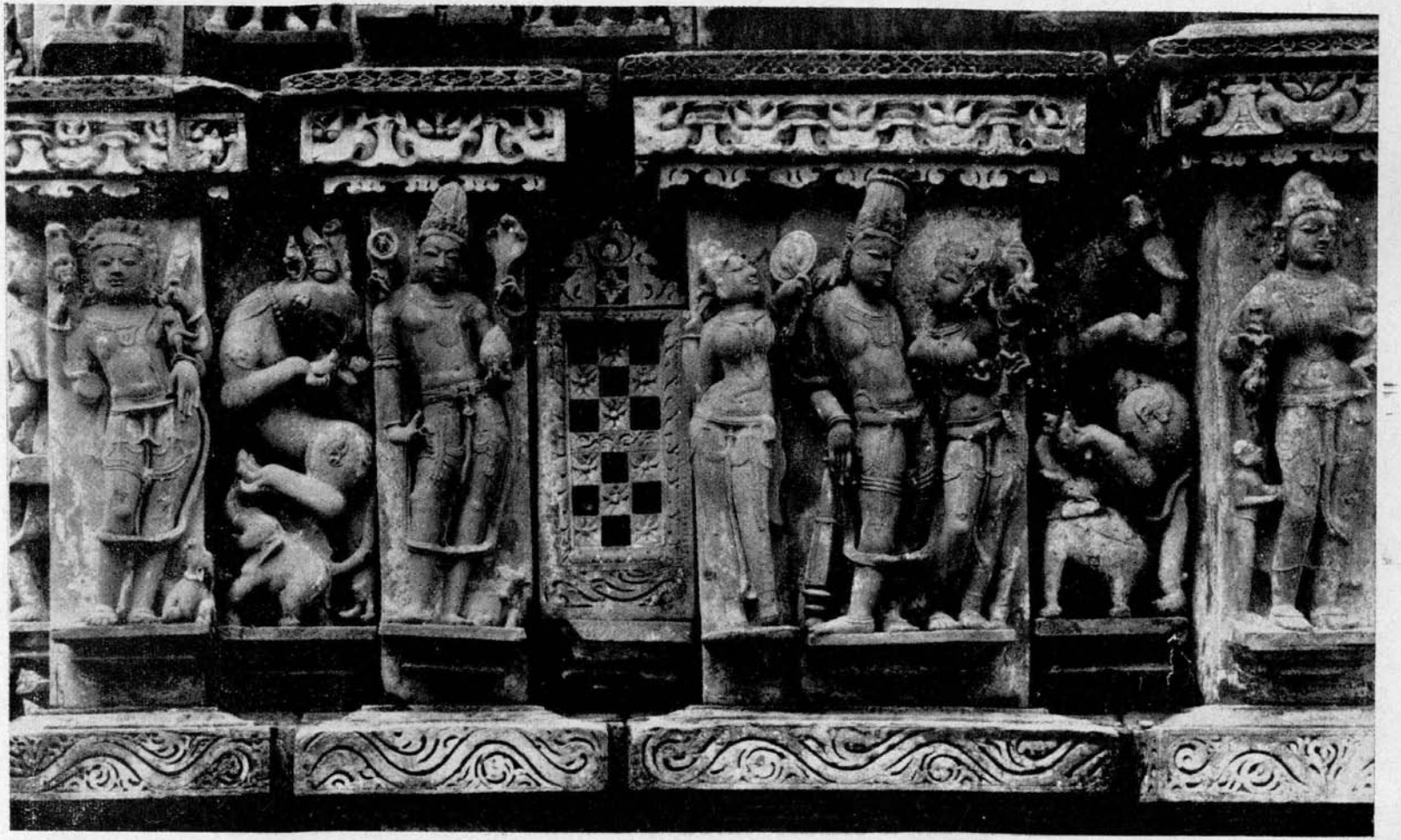

चित्र ४ : यम, शिव, लक्ष्मी-नारायण एवं अंबिका, दक्षिणी भित्ति, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

चित्र १. राम-सीता-हनुमान, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ६ : कांटा निकलवाती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (गर्भगृह), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

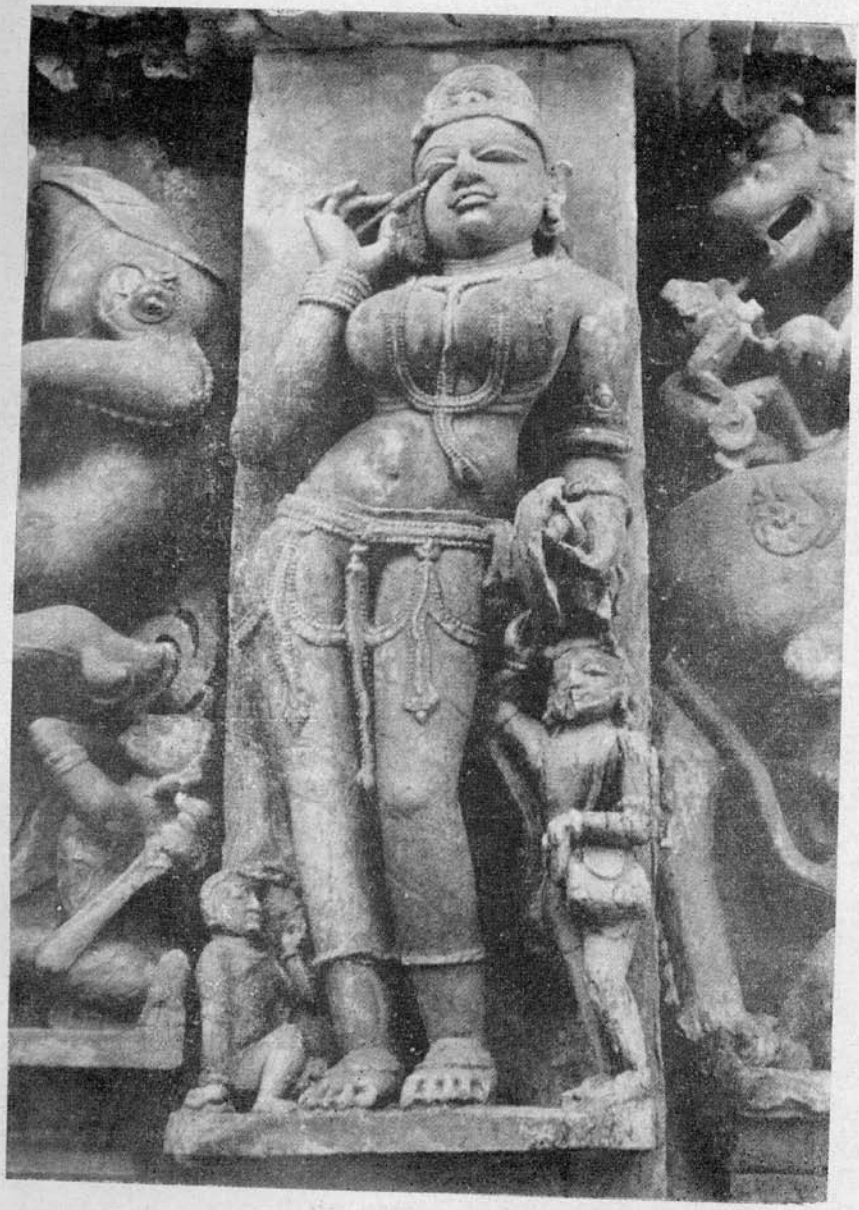

चित्र ७ : अंजन लगाती हुई अप्सरा, दक्षिणी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ८ : नूपुर बांधती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ९ : महावर रचाती हुई अप्सरा, उत्तरी भित्ति (मण्डप), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

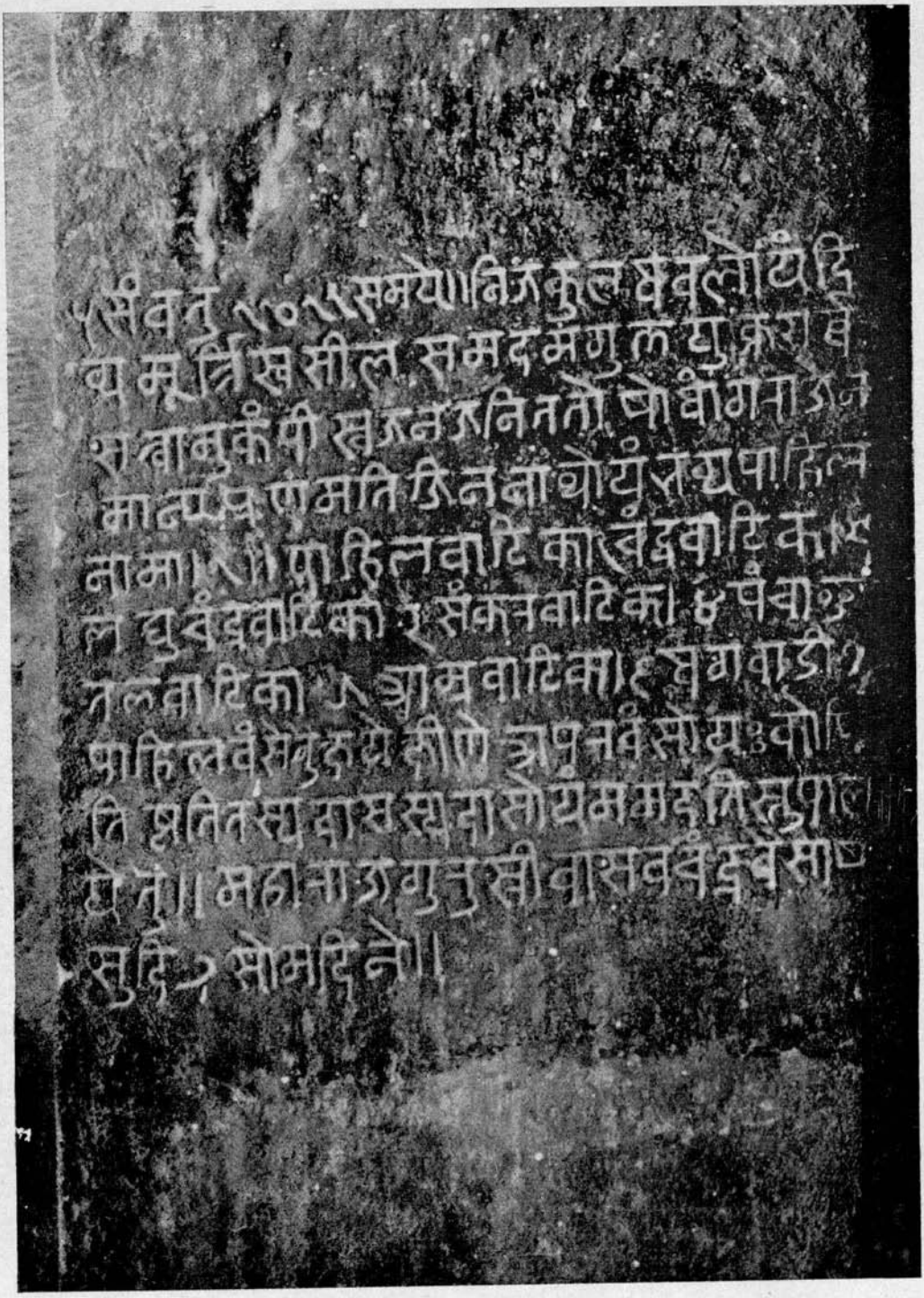

चित्र १० : मन्दिर-लेख (संवत् १०११), पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ११ : घण्टई मन्दिर, खजुराहो ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

चित्र १२ : प्रवेश-द्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियां—मांगलिक स्वप्न, नवग्रह एवं जिन), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र १३ : प्रवेश-द्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियां—मांगलिक स्वप्न, नवग्रह, गजलक्ष्मी, चक्रेश्वरी एवं सरस्वती), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

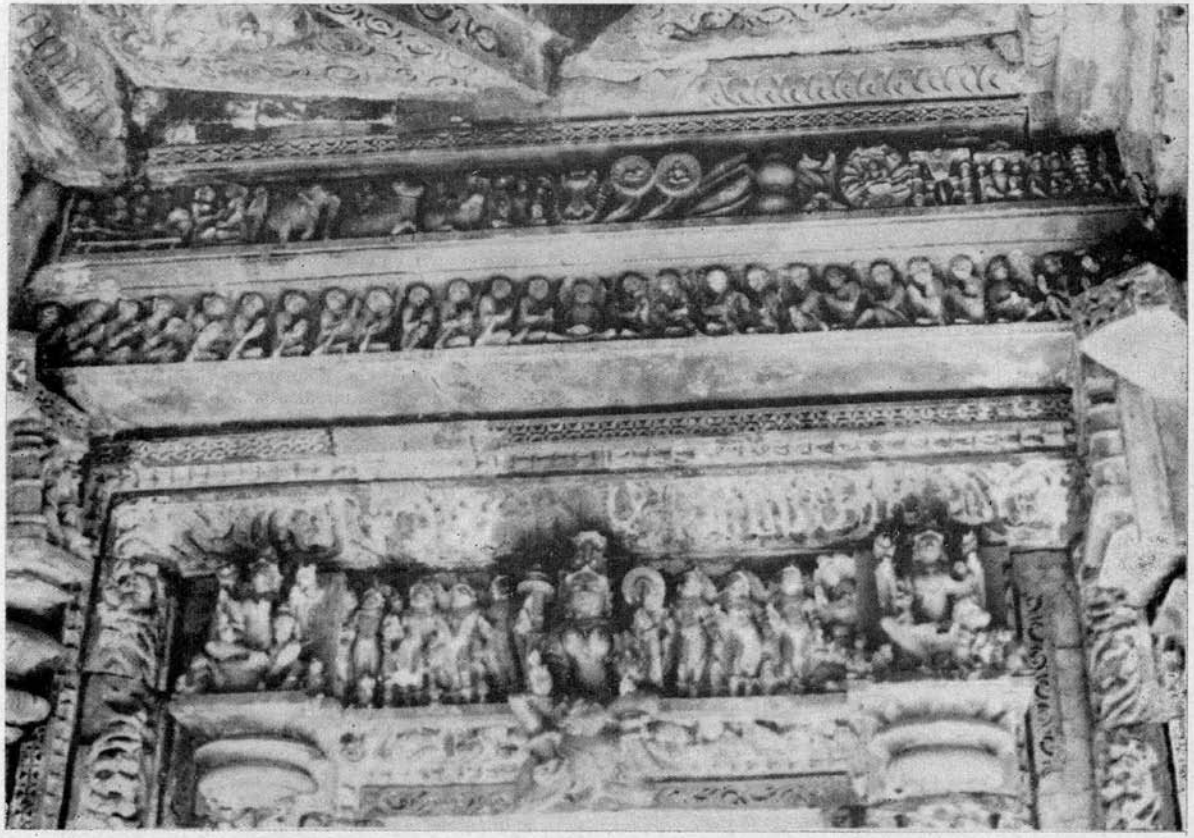

चित्र १४ : प्रवेश-द्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियां—मांगलिक स्वप्न, जैनमुनि, लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अंबिका एवं नवग्रह), मन्दिर ७, खजुराहो, ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

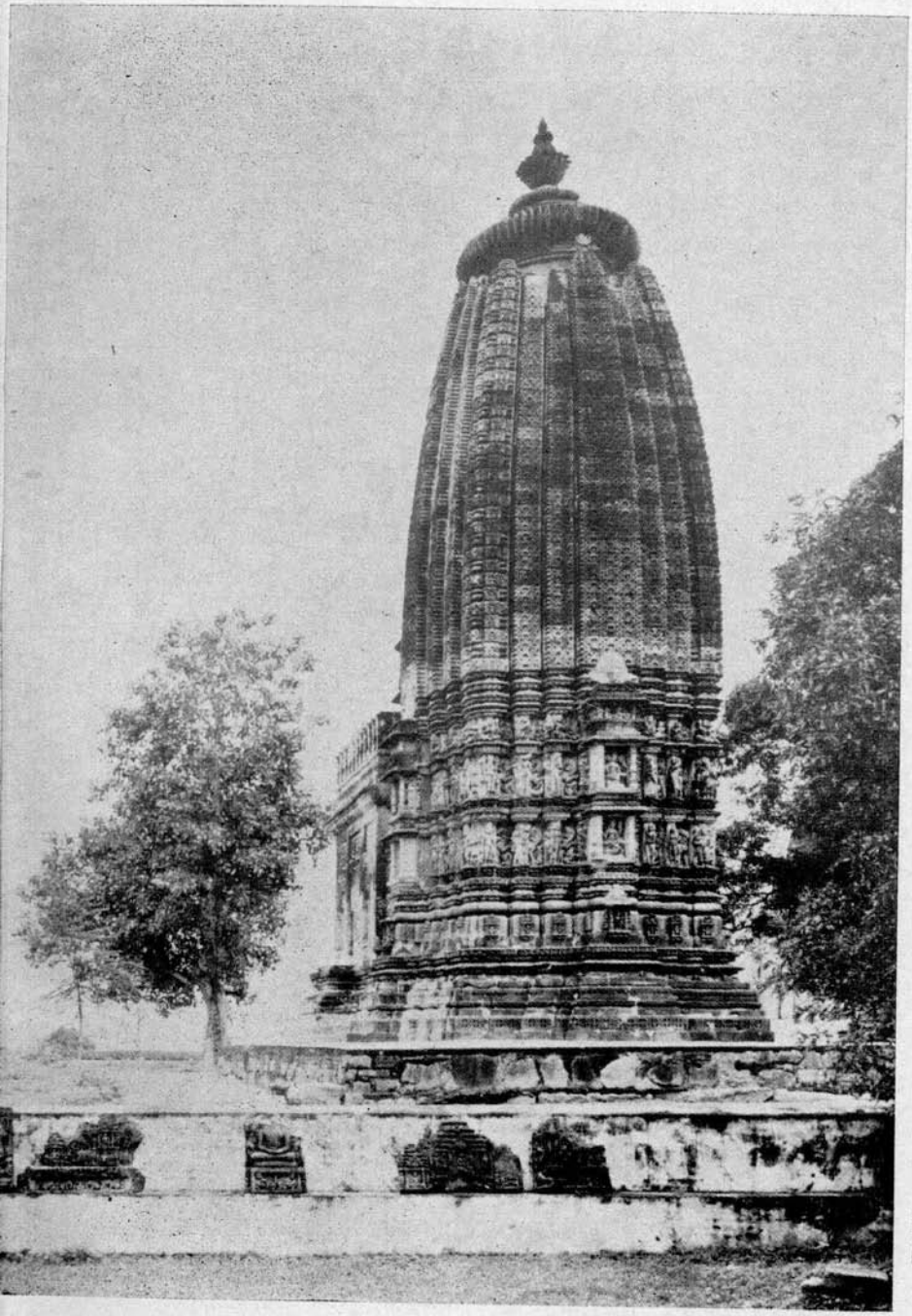

चित्र १५ : आदिनाथ मन्दिर (पश्चिम-उत्तर), खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

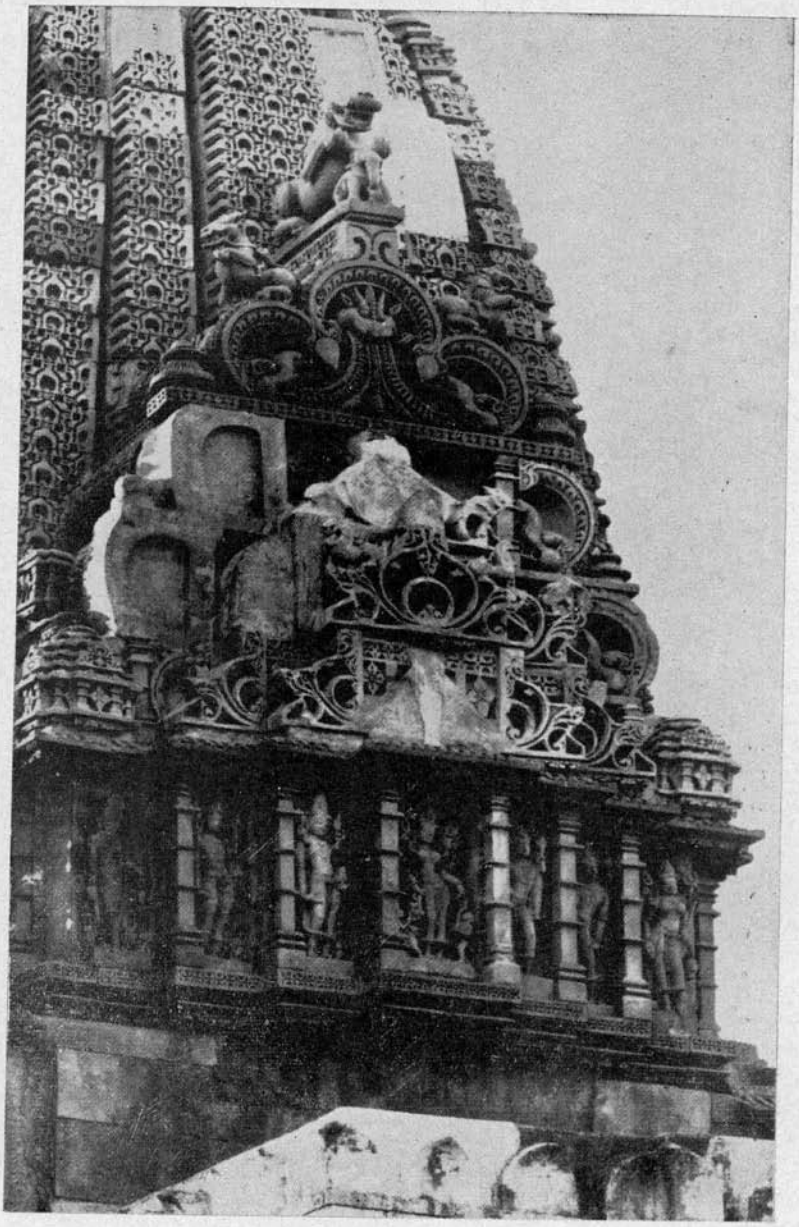

चित्र १६ : अंबिका, लक्ष्मी एवं अन्य देव आकृतियाँ, पूर्वी शिखर, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

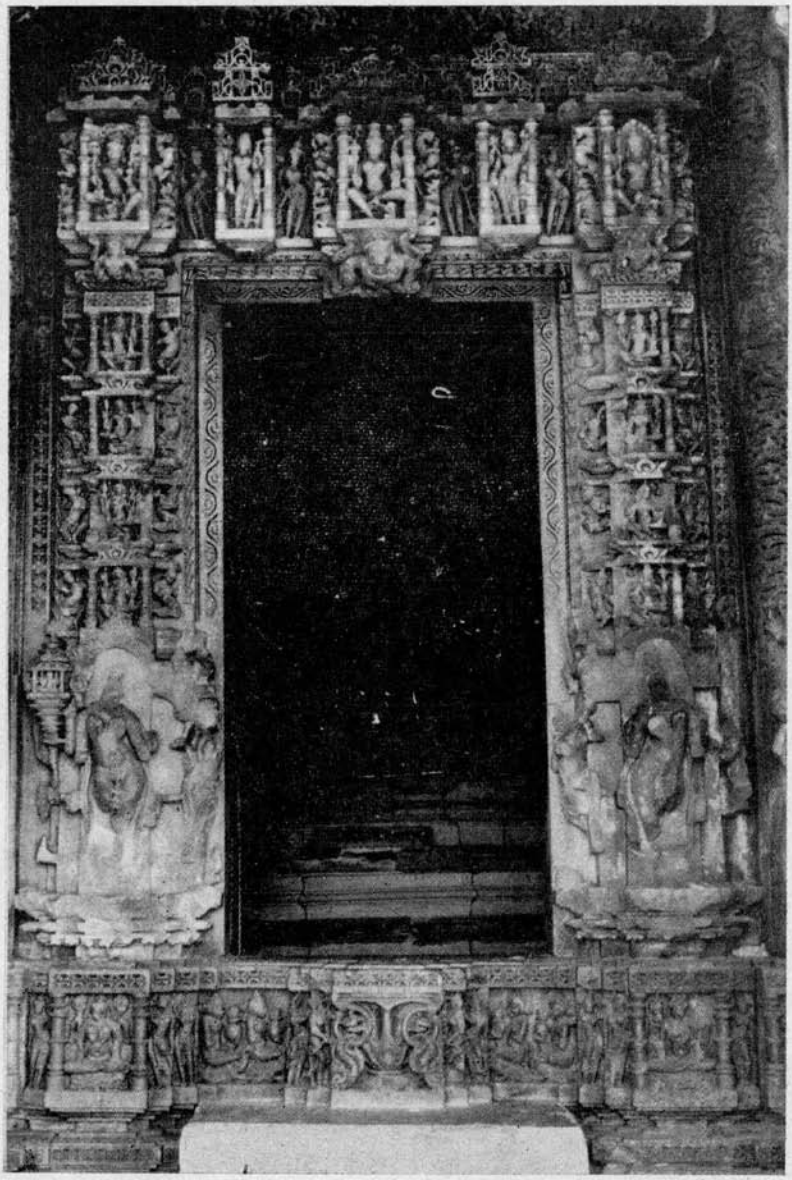

चित्र १७ : प्रवेश-द्वार (गर्भगृह), आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

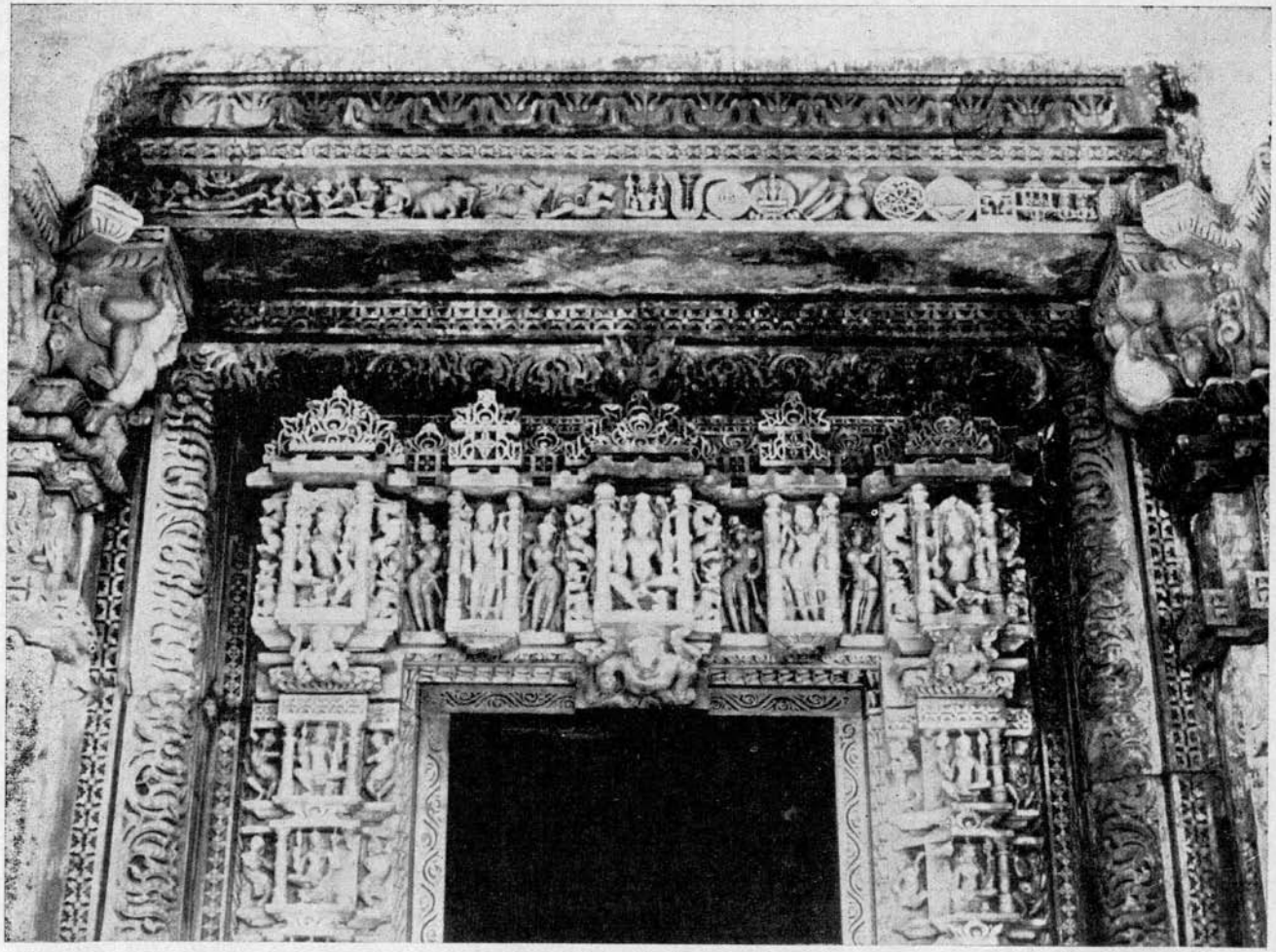

चित्र १८ : प्रवेश-द्वार (उत्तरंग एवं बड़ेरियाँ-अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती एवं मांगलिक स्वप्न), आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

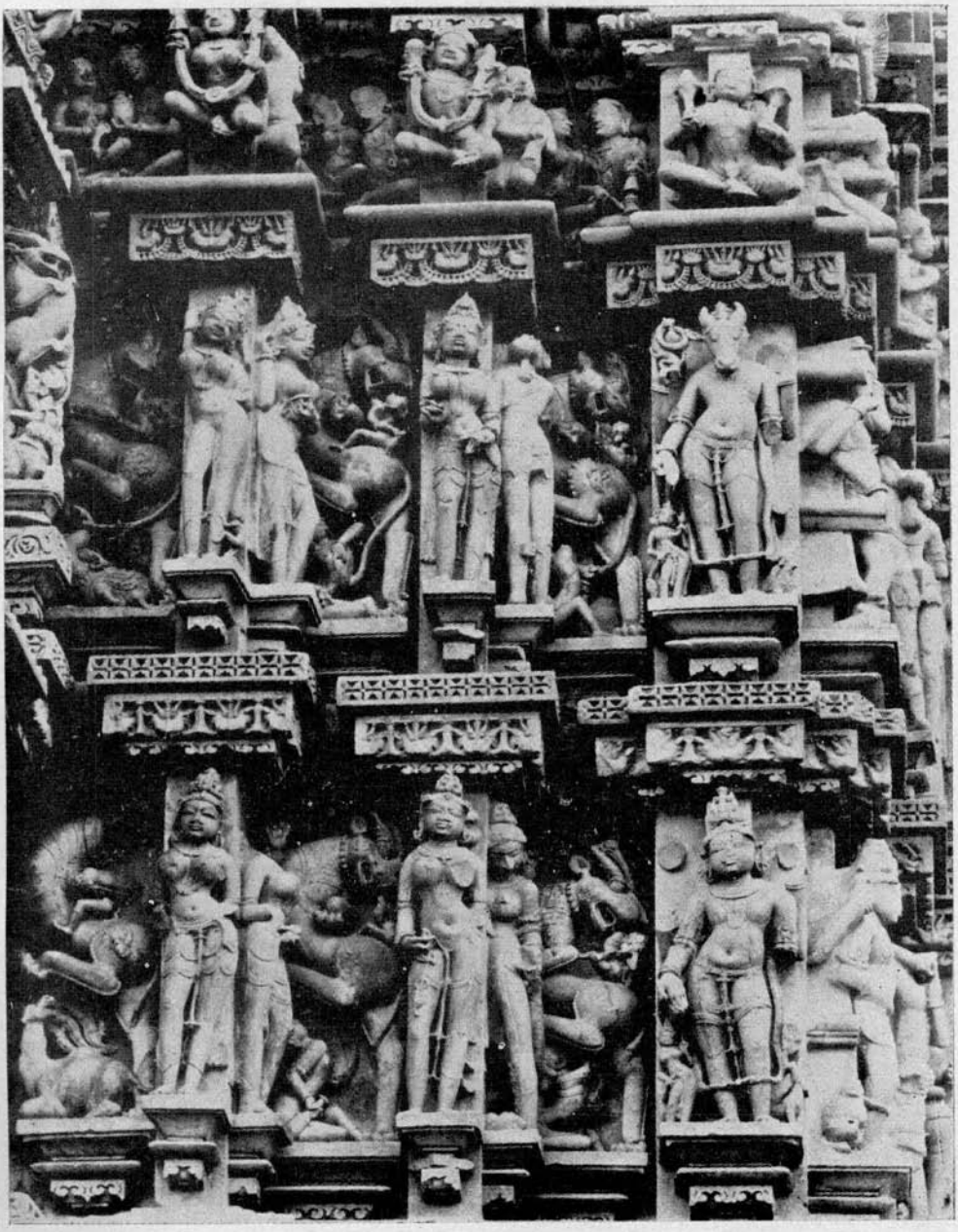

चित्र १९ : देव, अप्सरा तथा गन्धर्व मूर्ति पट्टिकायें, उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

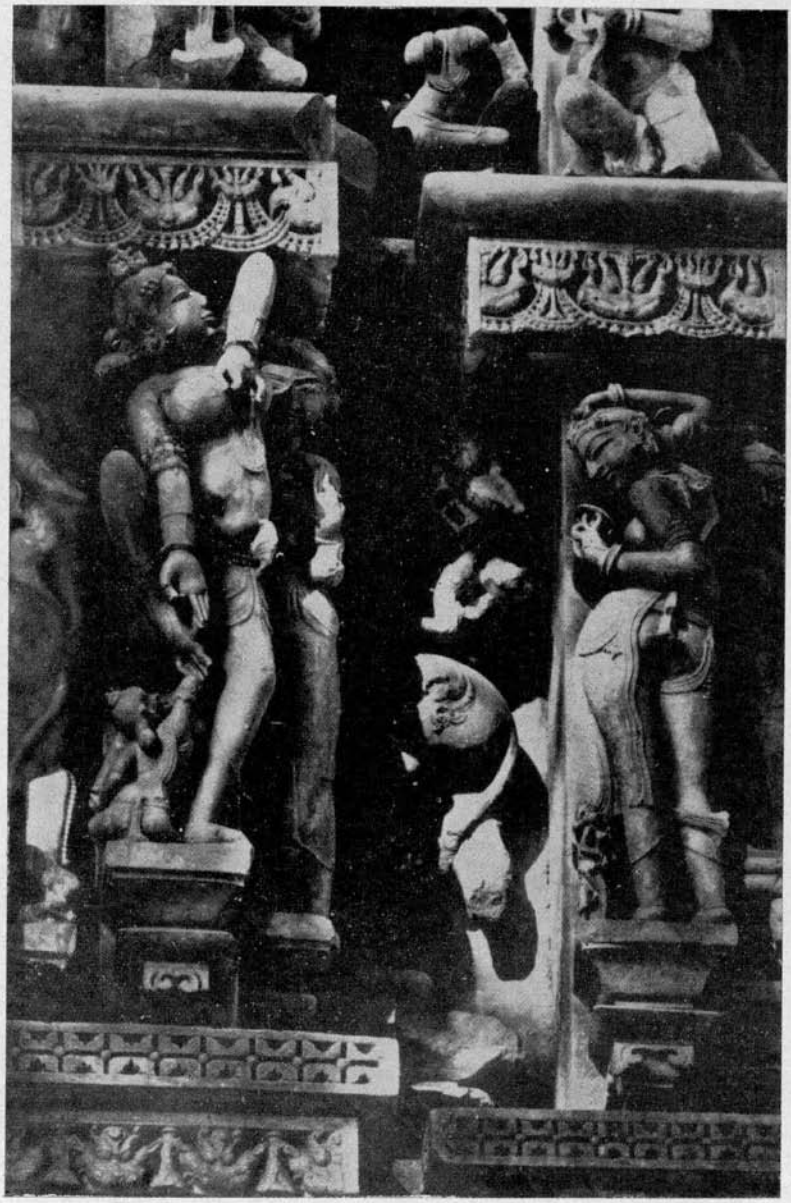

चित्र २० : नर्तकी एवं दर्पणा, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

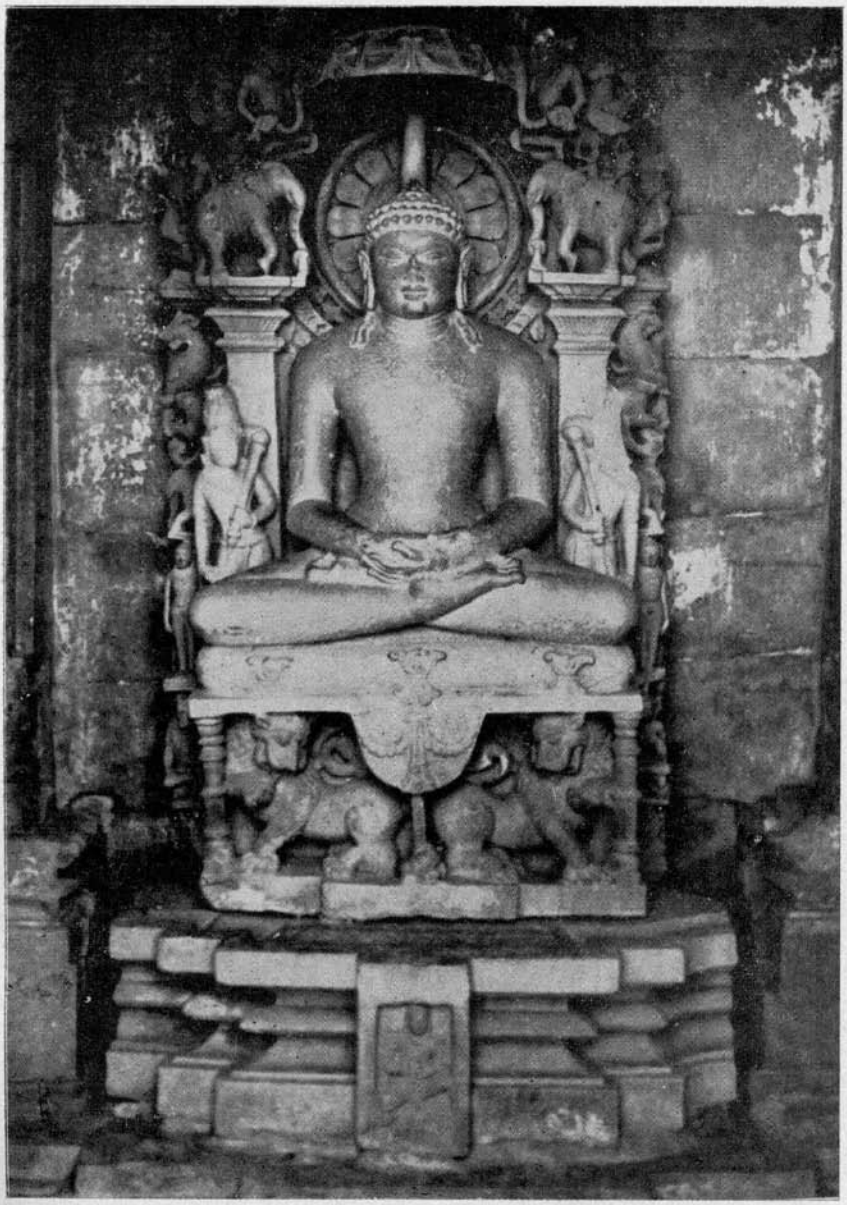

चित्र २१ : ऋषभनाथ, पश्चिमी देवालय, पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो, ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र २२ : ऋषभनाथ (अंबिका और चक्रेश्वरी सहित), जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६५१), ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

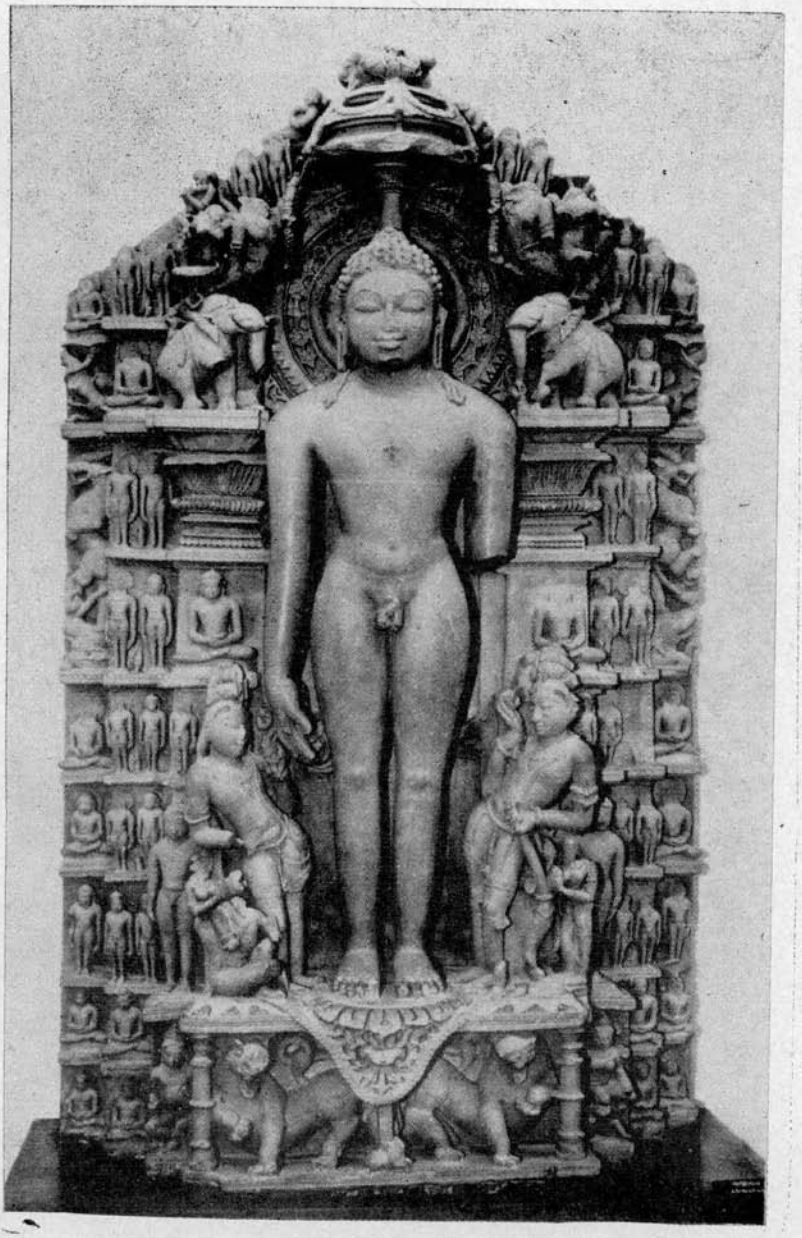

चित्र २३ : ऋषभनाथ, पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६८२),
ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र २४ : ऋषभनाथ (गोमुख-चक्रेश्वरी एवं नवग्रहों सहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६६७), ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र २५ : ऋषभनाथ (नवग्रहों सहित), मन्दिर १/५, खजुराहो, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

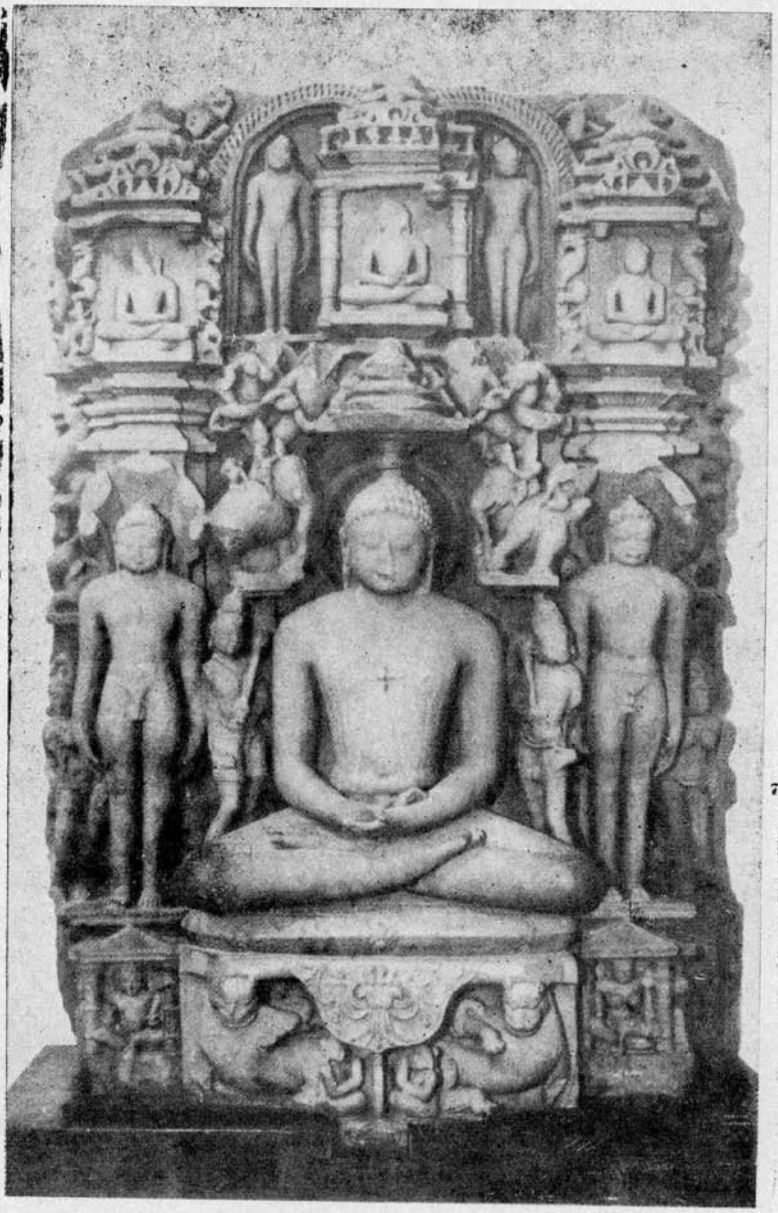

चित्र २६ : सम्भवनाथ (यक्ष-यक्षी तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ सहित),
पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १७१५), ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

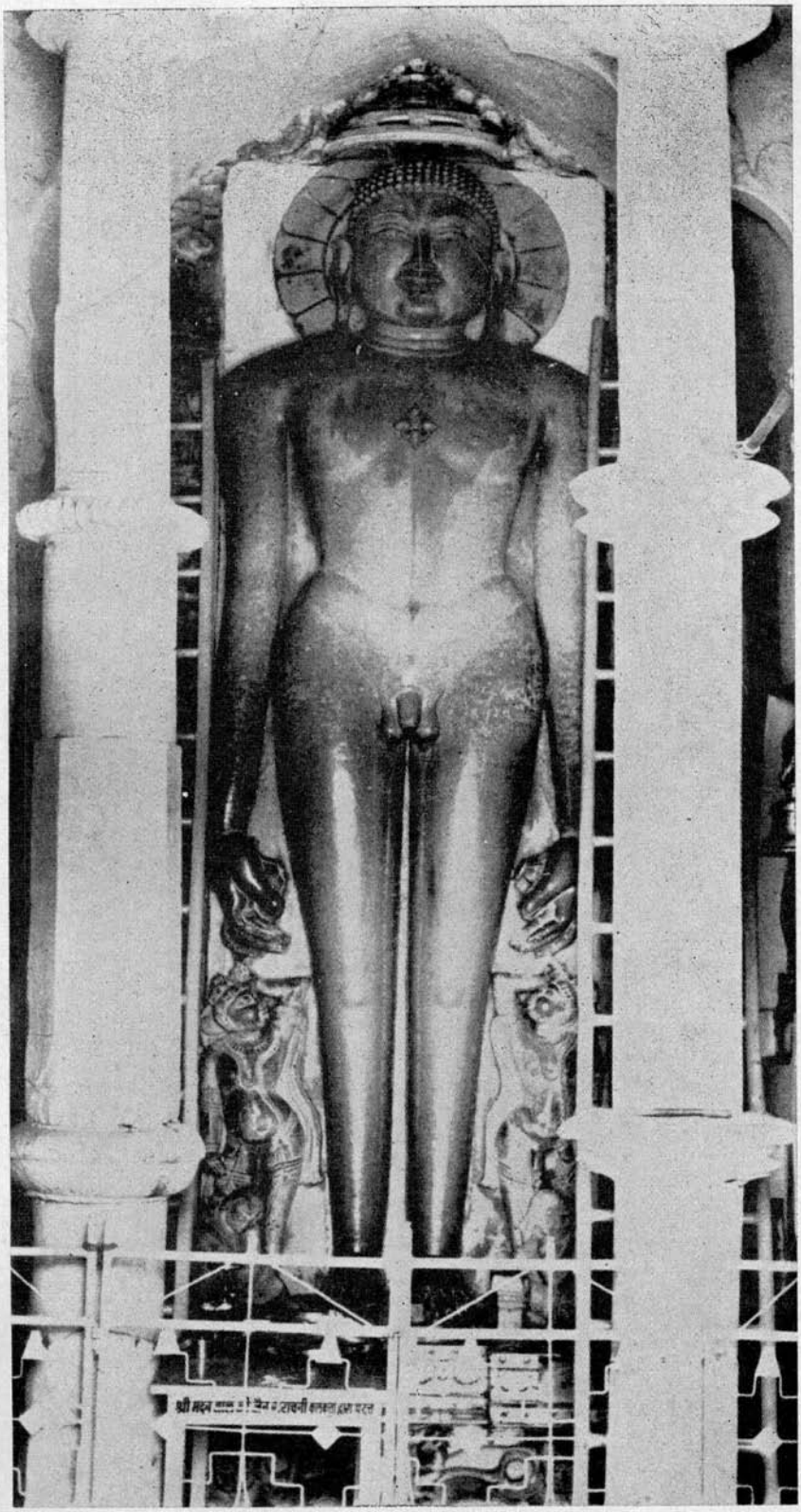

चित्र २७. शान्तिनाथ (१२ फीट ऊँची), शान्तिनाथ मन्दिर, खजुराहो, १०२८ ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

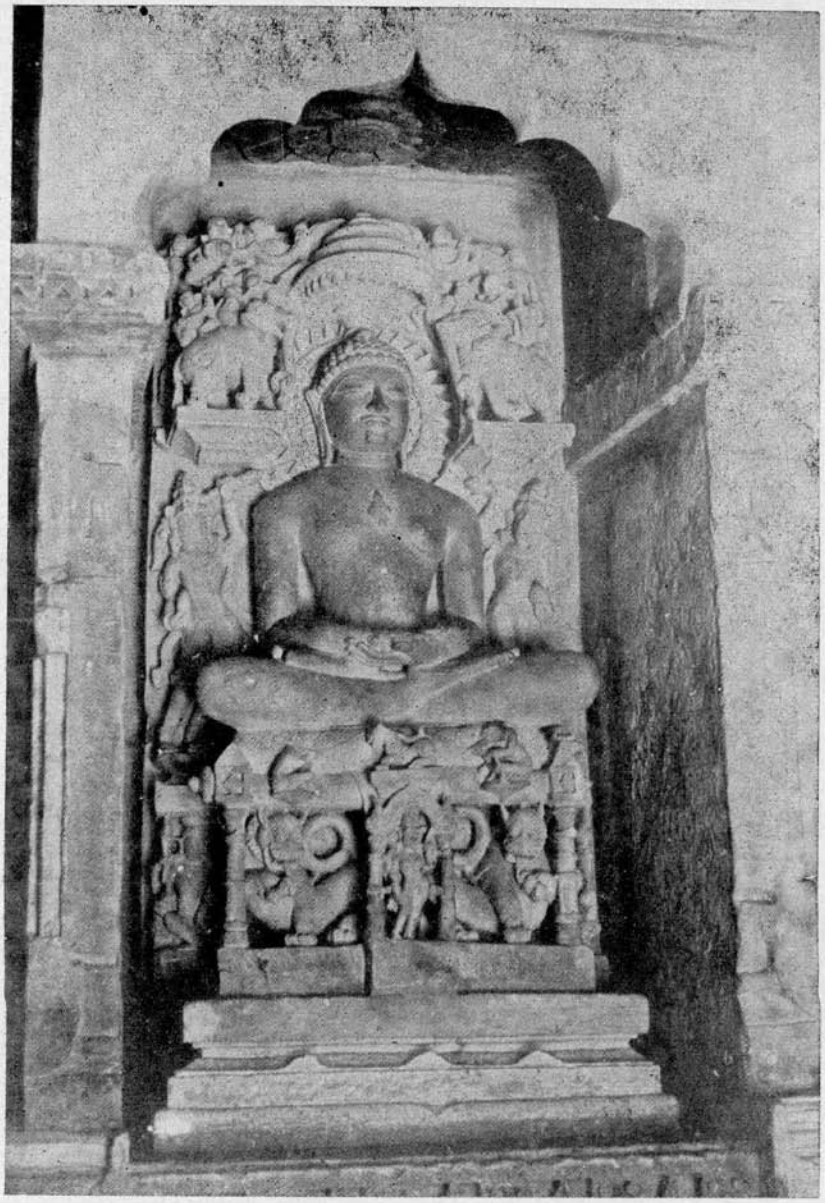

चित्र २८ : महावीर (यक्ष-यक्षी एवं शान्तिदेवी सहित), मन्दिर ७, खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

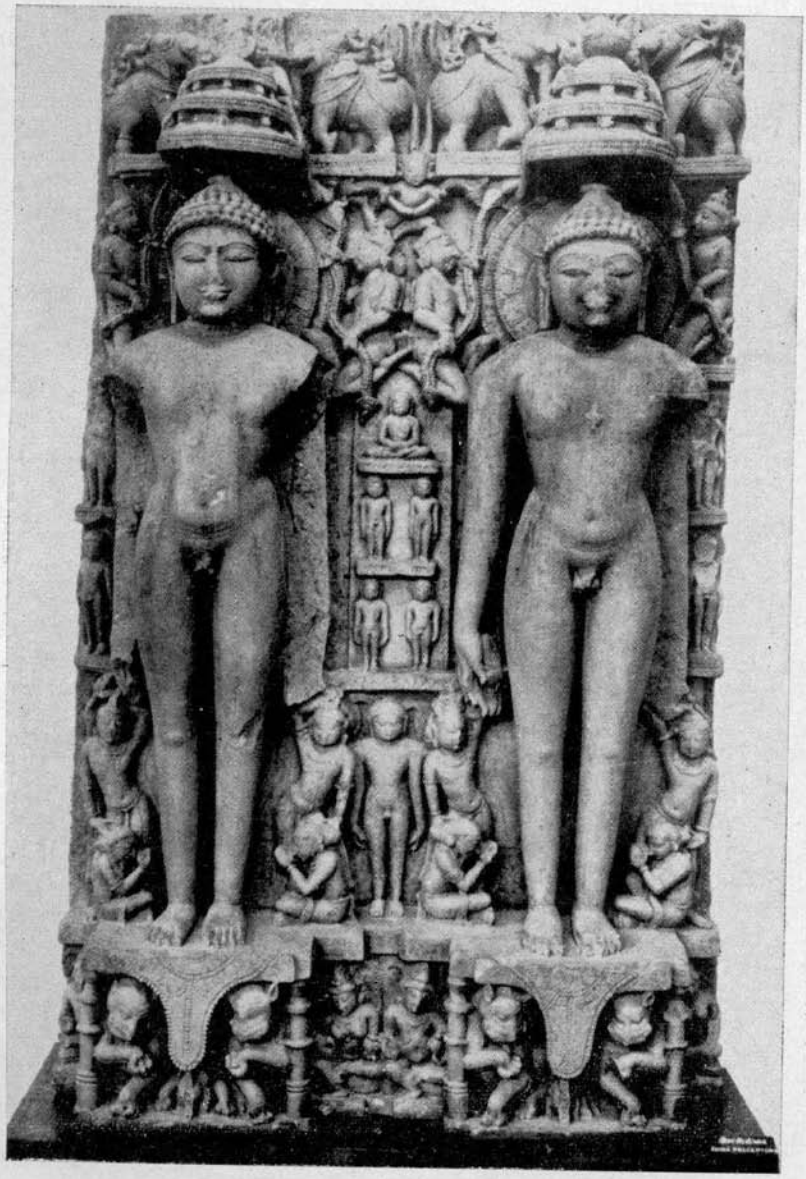

चित्र २९ : द्वितीर्थी जिन मूर्ति (लांछन रहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो, (क्रमांक १६३५), ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ३० : जैन युगल, शान्तिनाथ मन्दिर (परिसर), खजुराहो, १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ३१ : अंबिका (द्विभुजा), पार्श्वनाथ मन्दिर (दक्षिणी भित्ति), खजुराहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ३२ : अंबिका (यक्ष-यक्षी सहित), पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो, १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

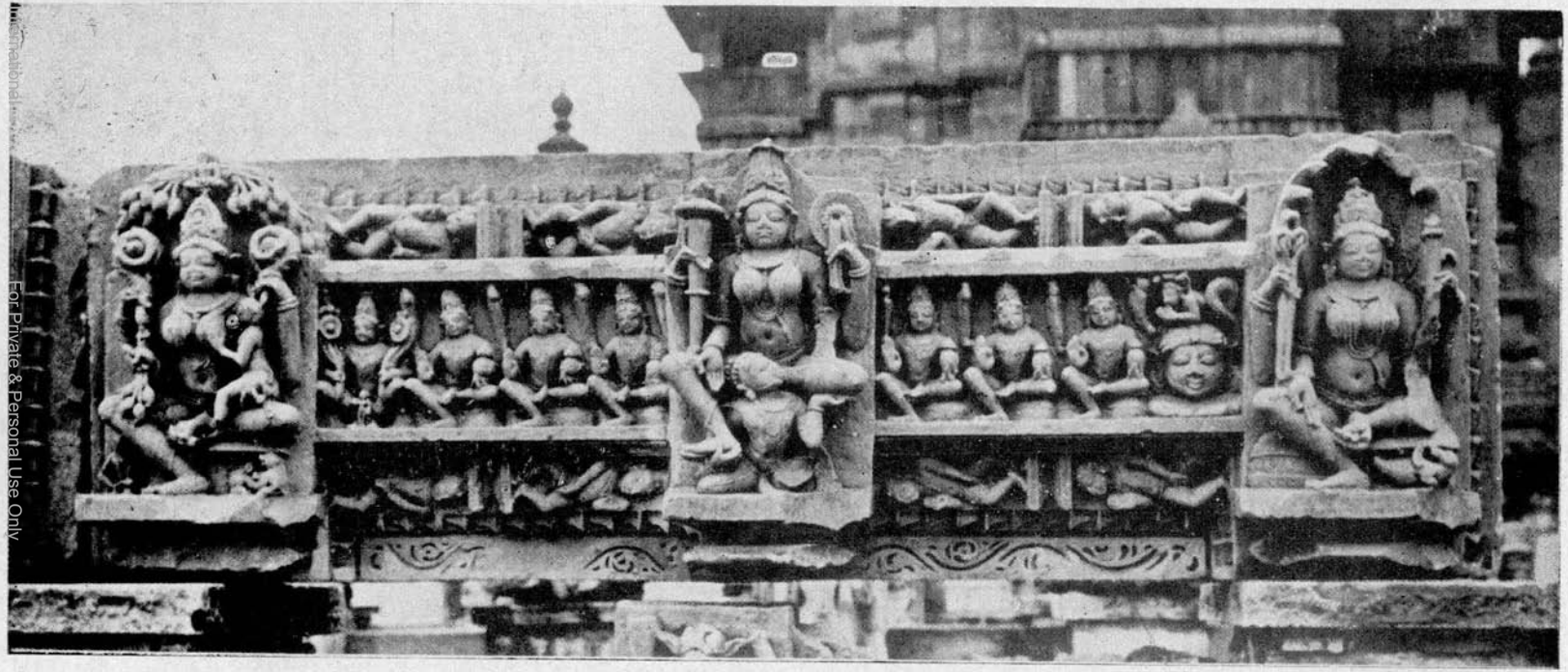

चित्र ३३ : उत्तरंग (अंबिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती तथा नवग्रह), जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १४६७), ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

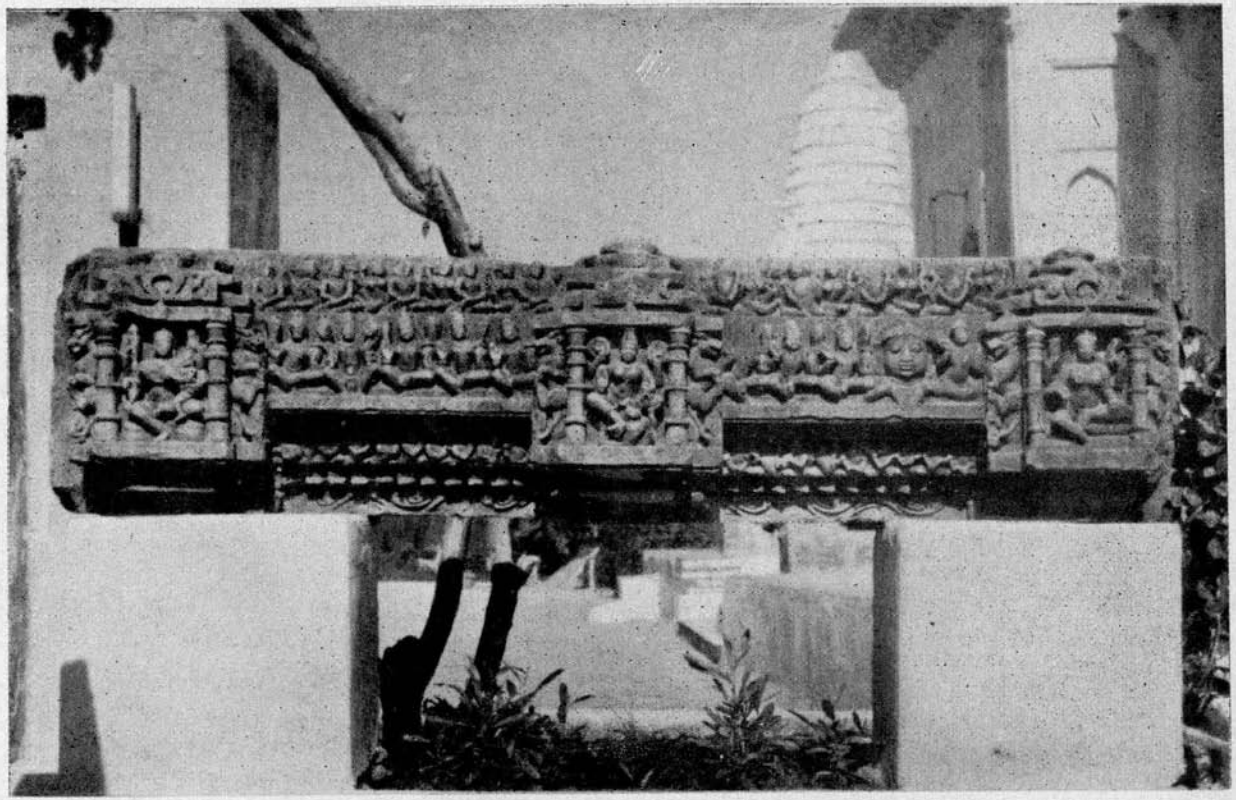

चित्र ३४ : उत्तरंग (अंबिका, चक्रेश्वरी, लक्ष्मी एवं नवग्रह), दिगम्बर जैन धर्मशाला (शान्तिनाथ मन्दिर के समीप), खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

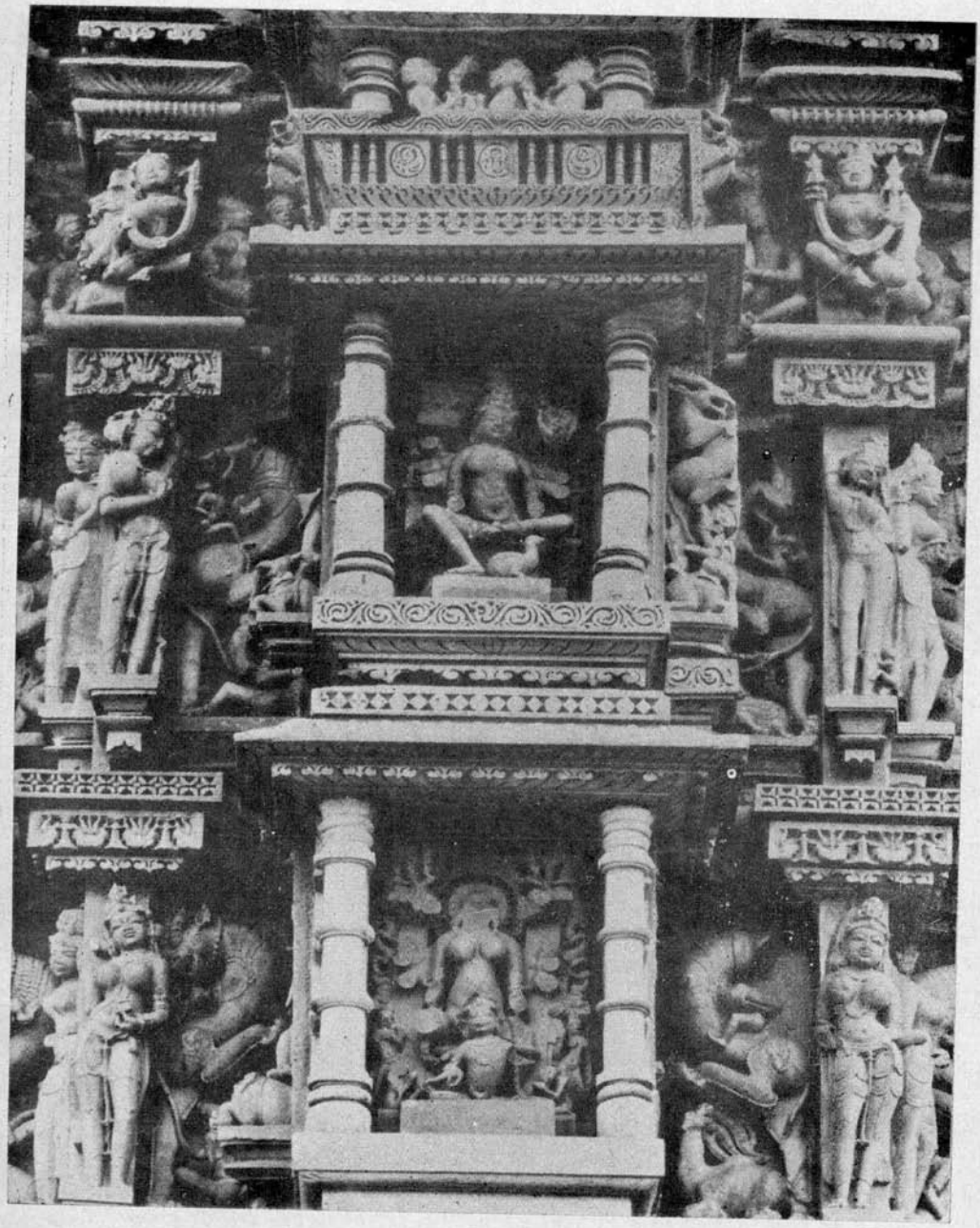

चित्र ३५ : जैन महाविद्यायें (पुरुषदत्ता एवं अप्रितचक्रा), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

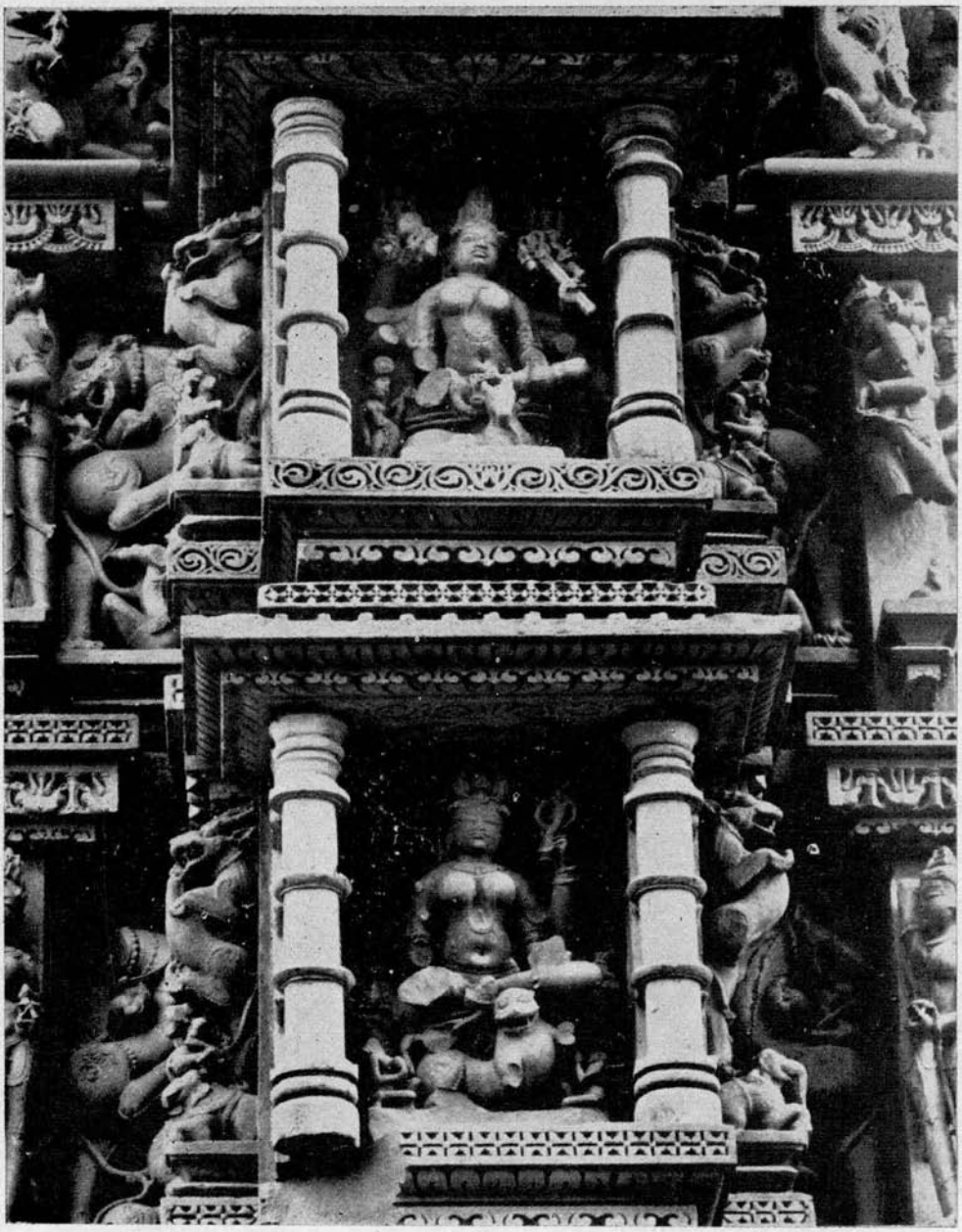

चित्र ३६ : जैन महाविद्यायें (गौरी), पश्चिमी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

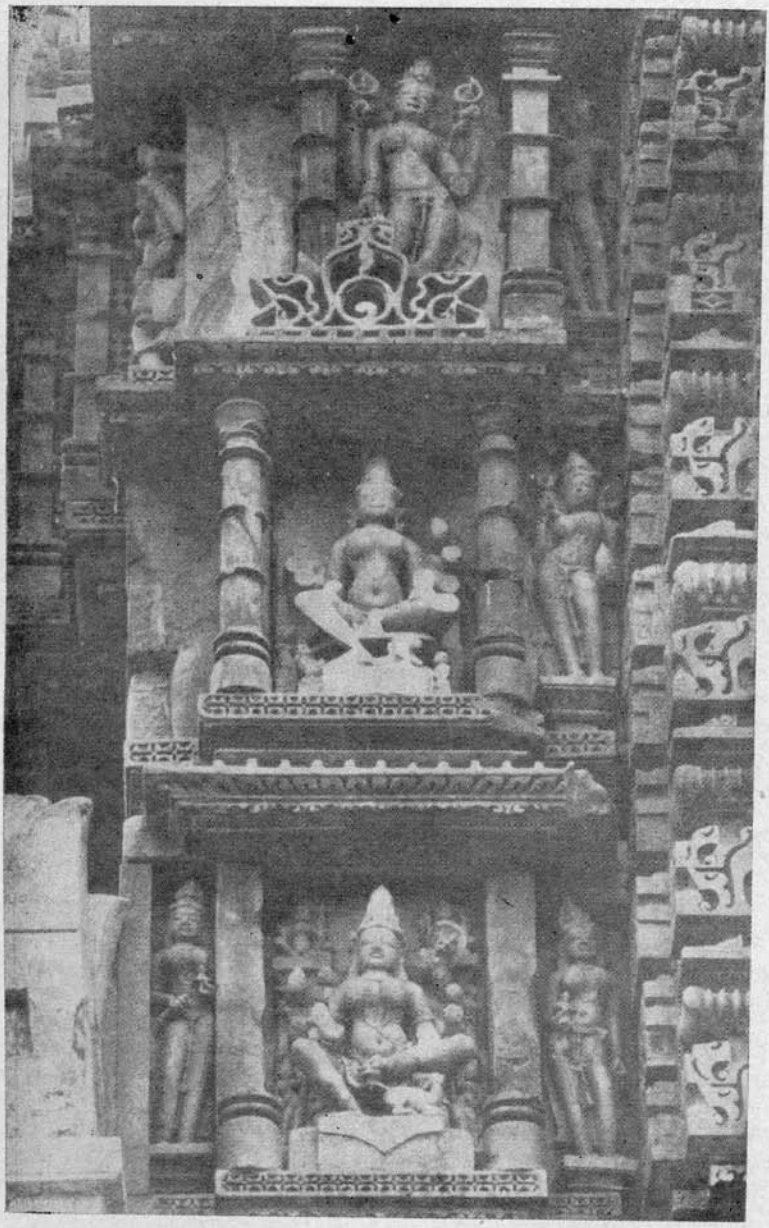

चित्र ३७ : जैन महाविद्यायें (वज्रशृंखला या वज्रांकुशा और काली), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

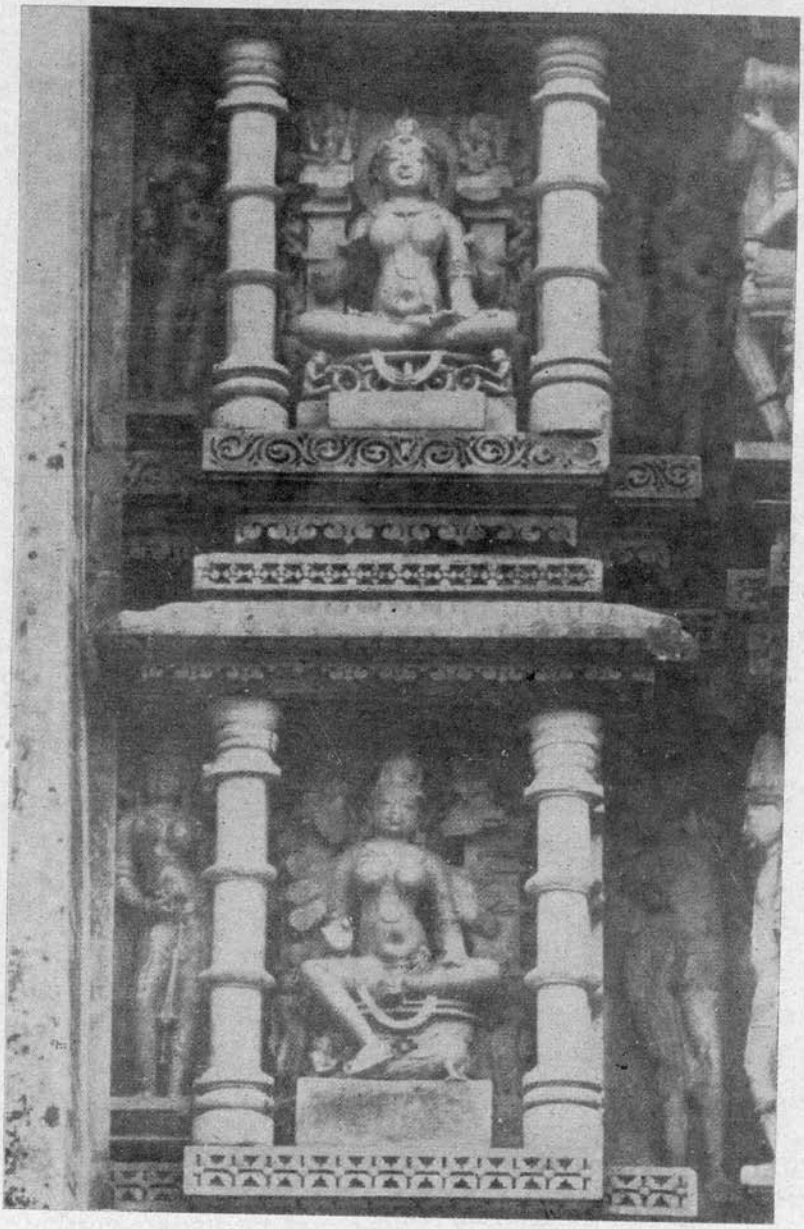

चित्र ३८ : जैन महाविद्यायें (जांबूनदा ?), उत्तरी भित्ति, आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो, ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ३९ : क्षेत्रपाल (चन्दकाम), शान्तिनाथ मन्दिर (प्रवेशद्वार के समीप-के १/३), खजुराहो, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

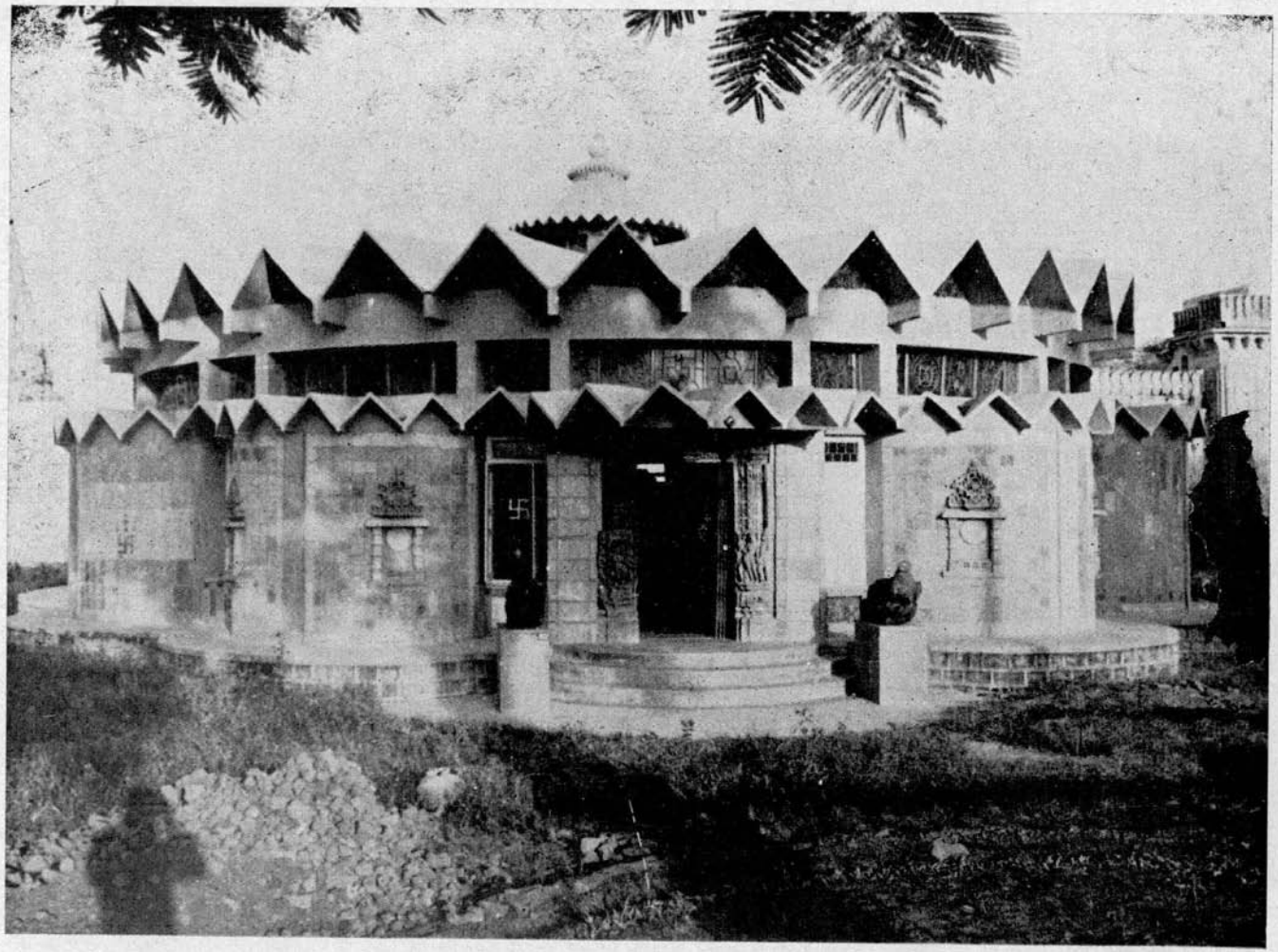

चित्र ४० : साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय भवन, खजुराहो

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

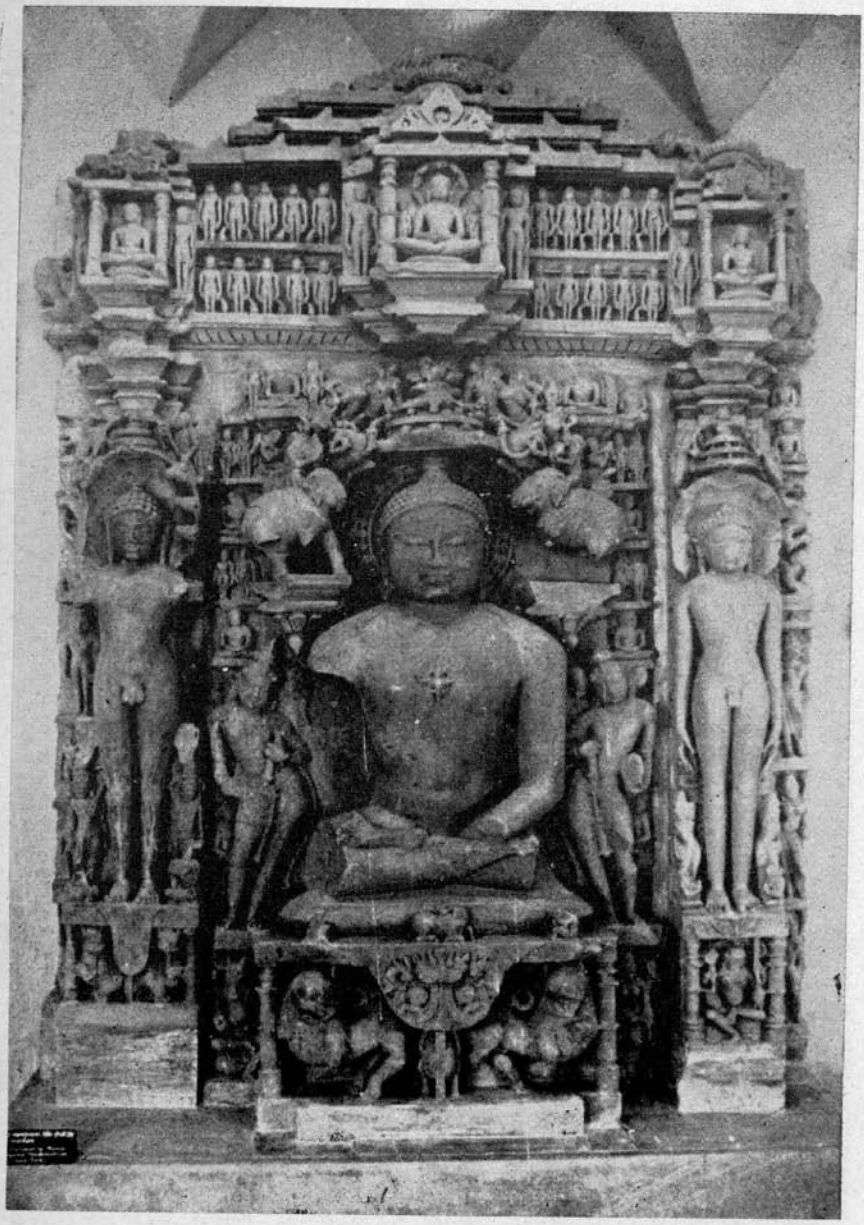

चित्र ४१ : ऋषभनाथ (गोमुख-चक्रेश्वरी सहित), पार्श्वों में पार्श्वनाथ एव सुपार्श्वनाथ,
साहू शान्ति प्रसाद जैन कला संग्रहालय (क्रमांक १६)–आगे से
सा० शा० जै० क० सं, ल० १०वीं-११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ४२ : ऋषभनाथ, सा० शा० जै० क० सं०, ल० १०वीं-११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ४३ : ऋषभनाथ की चतुर्विंशति मूर्ति, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

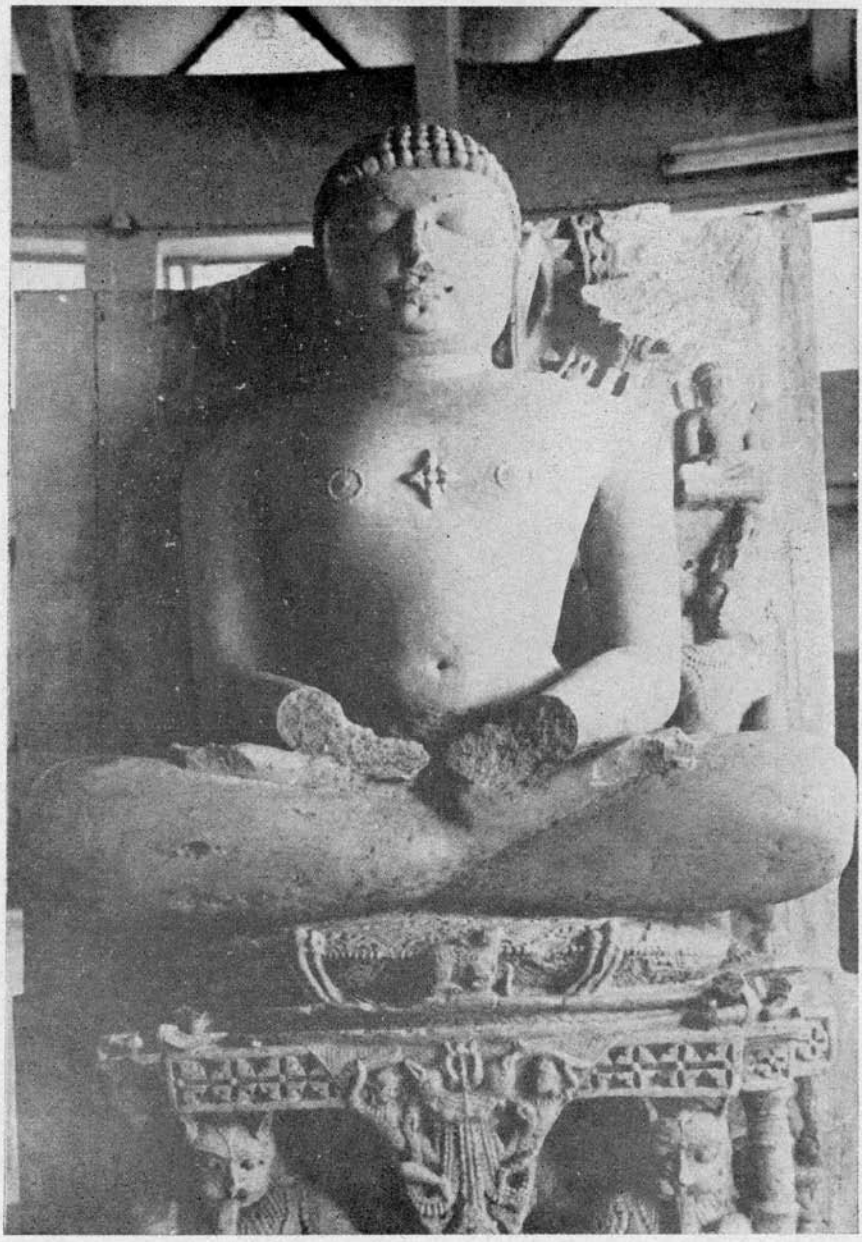

चित्र ४४ : ऋषभनाथ, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

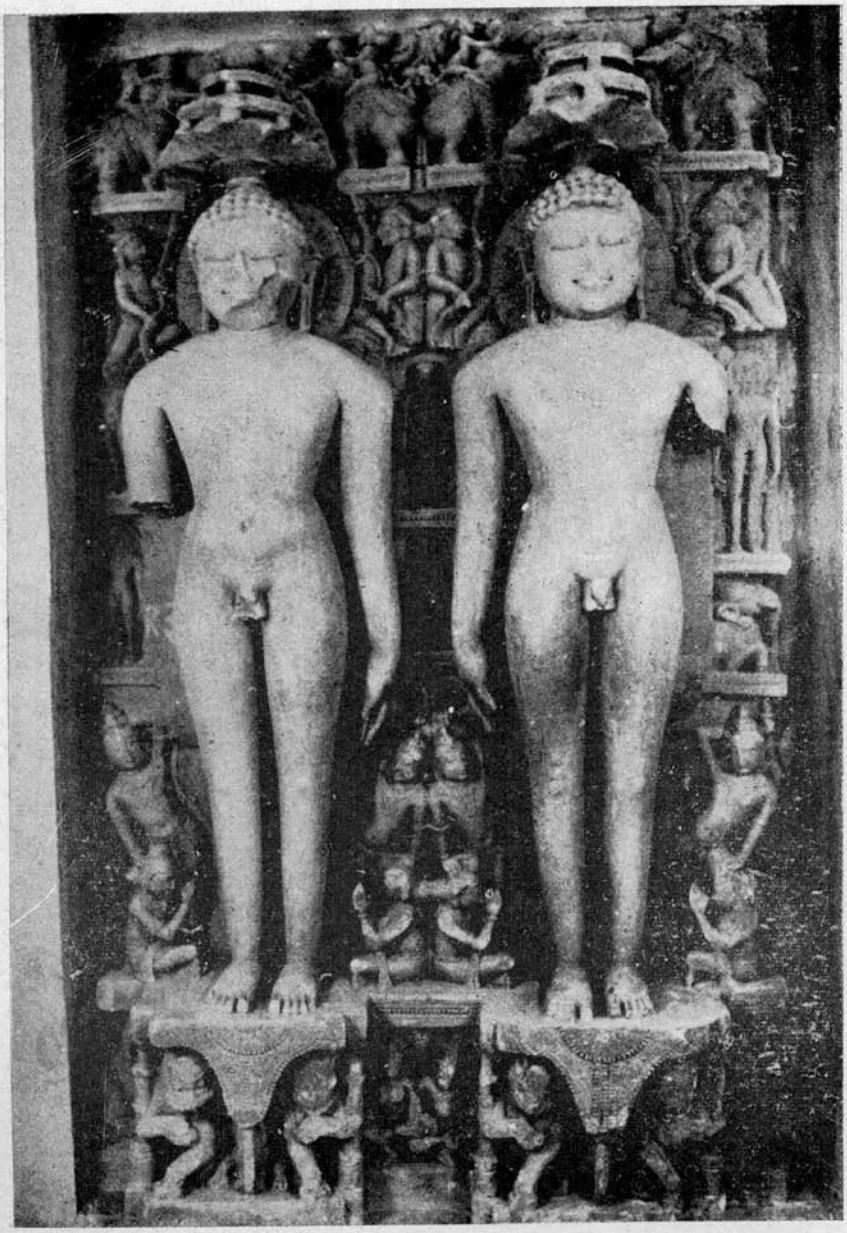

चित्र ४५ : द्वितीर्थी तीर्थङ्कर मूर्ति, सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक ३१),
ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

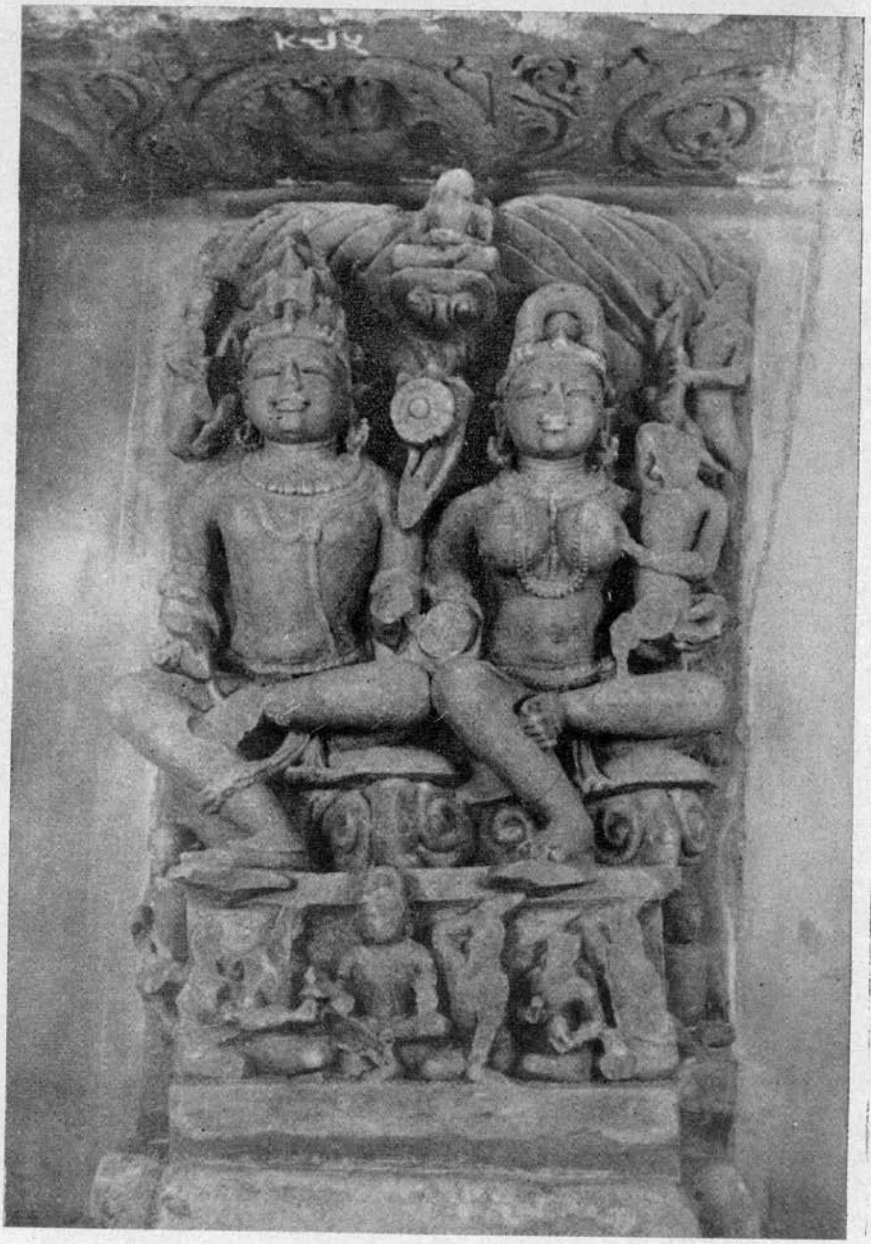

चित्र ४६ : जैन युगल (तीर्थङ्कर के माता-पिता ?), सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक ४९), ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

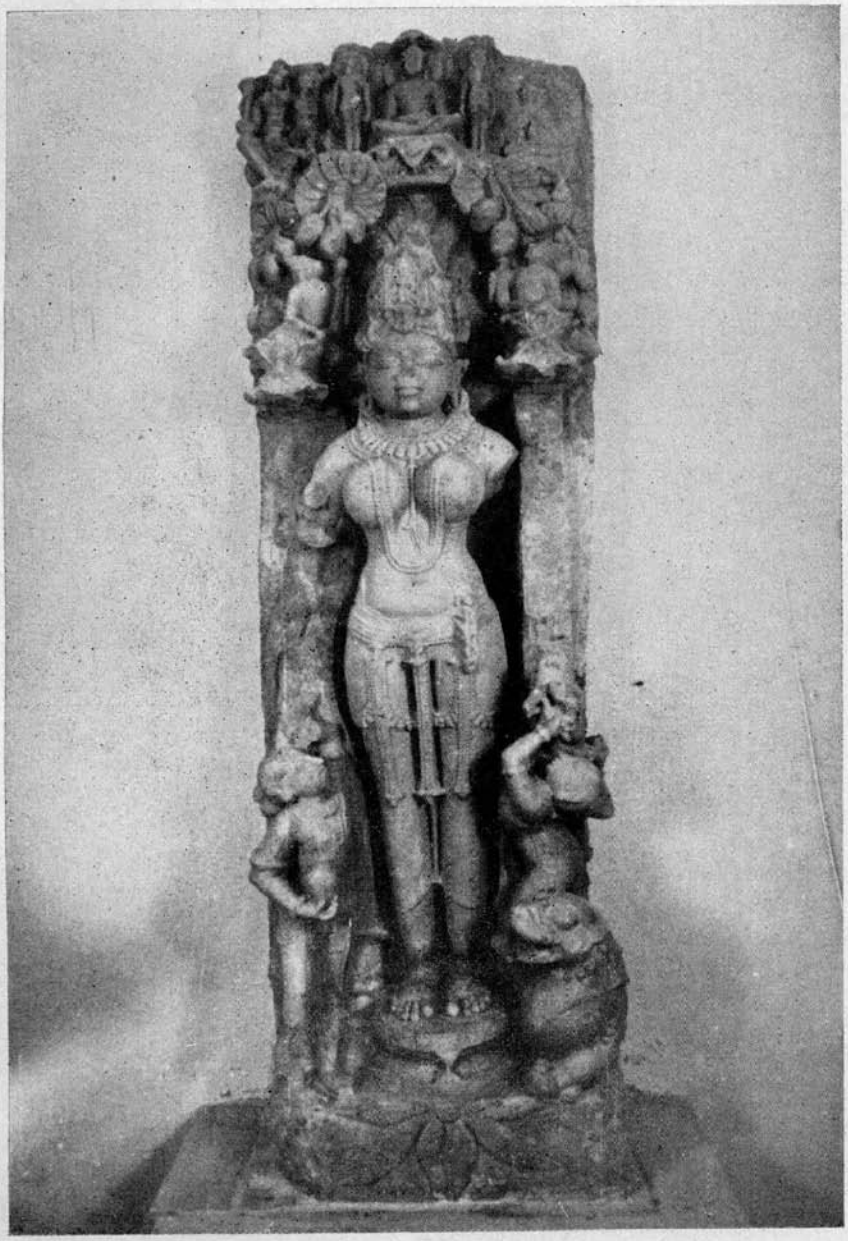

चित्र ४७ : अम्बिका यक्षी, सा० शा० जै० क० सं०, ल० १०वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ४८ : लक्ष्मी, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ४९ : दिक्पाल कुबेर, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

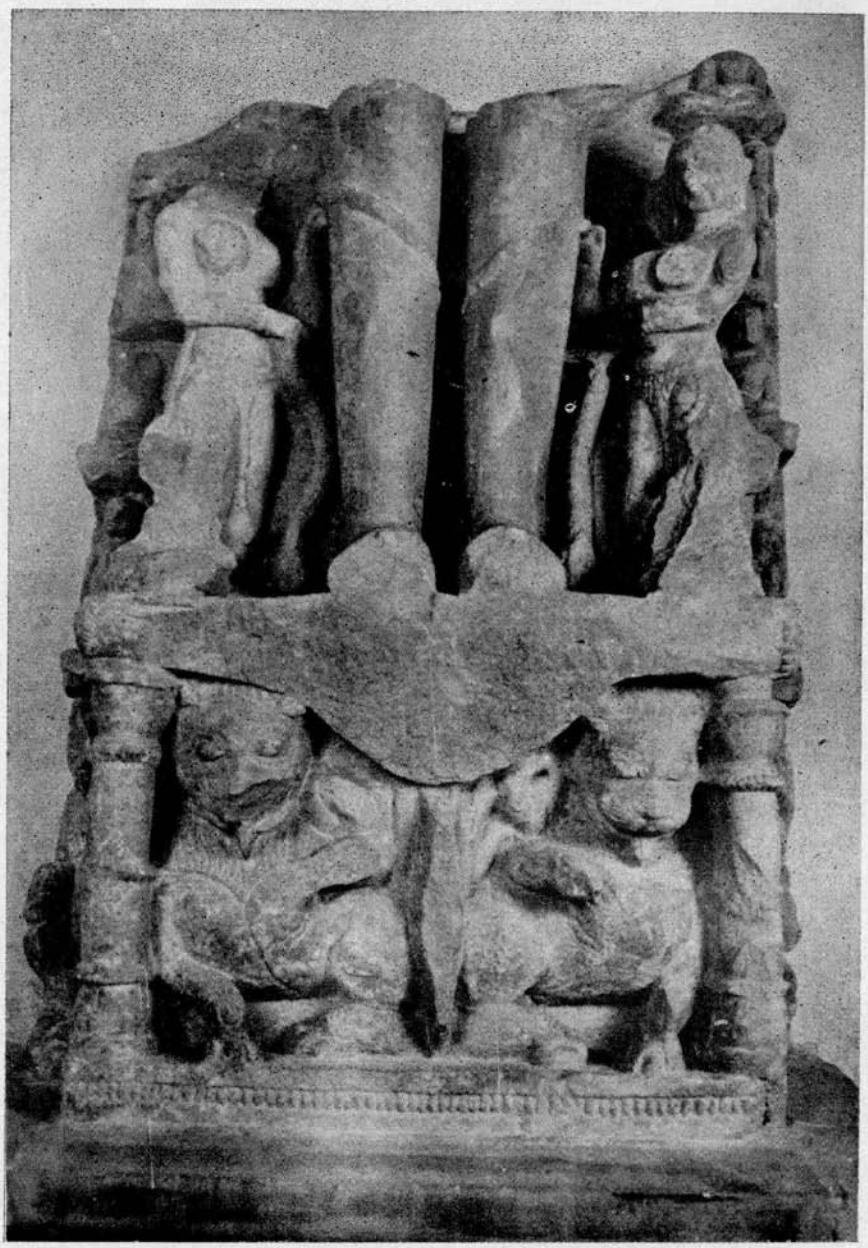

चित्र ५० : वाहुवली मूर्ति (अधोभाग अवशिष्ट), सा० शा० जै० क० सं०,
ल० ११-१२वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ५१ : उपासक मूर्ति (तीर्थङ्कर मूर्ति का अवशिष्ट भाग), सा० शा० जै० क० सं०, ल० १२वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ५२ : खण्डित मस्तक (पाहिल), सा० शा० जै० क० सं०, ल० १२वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ५३ : भट्टारक नयनन्दी (जैन आचार्यों की तत्त्व चर्चा), सा० शा० जै० क० सं० (क्रमांक २३३), ल० १२वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र ५४ : क्षेत्रपाल, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

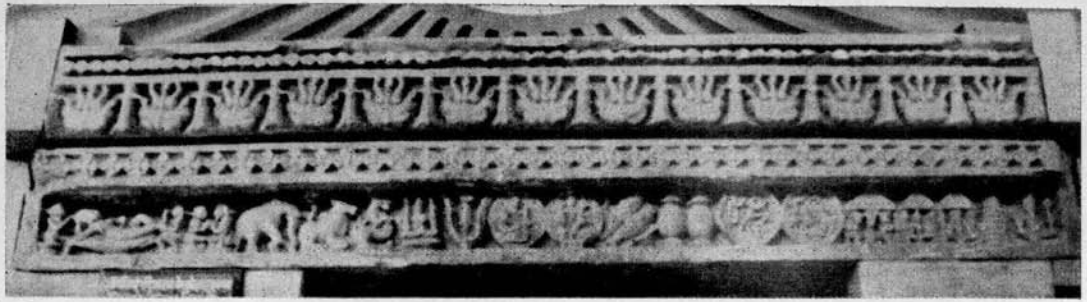

चित्र ५५ : तीर्थङ्कर-माता के सोलह मांगलिक स्वप्न, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

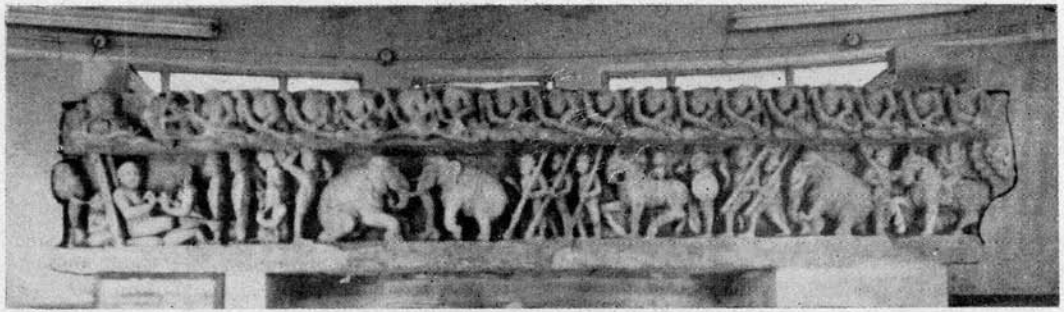

चित्र ५६ : आचार्य की वन्दना हेतु यात्रा, सा० शा० जै० कु० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

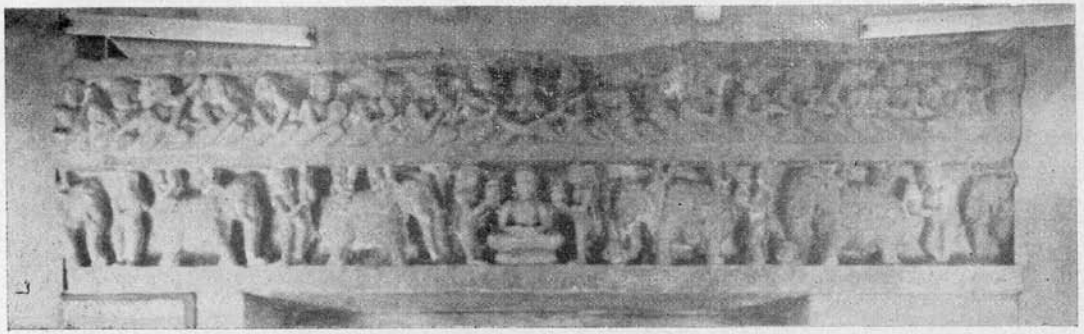

चित्र ५७ : तीर्थङ्कर का अभिषेक दृश्य, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

चित्र ५८ : साधुओं द्वारा ऋषभनाथ की वन्दना, सा० शा० जै० क० सं०, ल० ११वीं शती ई०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

लेखक–परिचय

डा० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला-इतिहास विभाग में रीडर हैं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ही प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विषय में स्नातकोत्तर और डाक्टर आफ फिलॉसफी की उपाधियां प्राप्त की हैं। आप पिछले १५ वर्षों से जैन कला और प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन में लगे हैं। इस क्षेत्र में आपका योगदान अत्यंत प्रशंसनीय है। इस विषय पर अब तक आपके तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं: जैन प्रतिमाविज्ञान (वाराणसी, १९८१), एलिमेण्ट्स ऑव जैन आइकनोग्राफी (वाराणसी, १९८३), अम्बिका इन जैन आर्ट ऐण्ड लिट्रेचर (दिल्ली, १९८७)।

डा० तिवारी के जैन प्रतिमाविज्ञान विषयक तथा भारतीय कला के अन्य पक्षों से सम्बन्धित ८० से अधिक शोध-पत्र भारत और विदेश की शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नयी दिल्ली और भारतीय अनुसन्धान परिषद, नयी दिल्ली द्वारा प्राप्त आर्थिक अनुदानों के अन्तर्गत कुछ स्वतंत्र रिसर्च प्रॉजेक्ट्स पर कार्य कर रहे हैं: आइकनोग्राफी ऑव गोम्मटेश्वर बाहुबली, जैन महाविद्याज़, महाभारत सीन्स इन इण्डियन आर्ट, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर ऐण्ड आइकनोग्राफी (यू० जी० सी० टेक्स्ट राइटिंग प्रॉजेक्ट)। आपने फरवरी '८७ में खजुराहो में 'खजुराहो की कला' पर एक विशाल यू० जी० सी० सेमिनार के आयोजन का भी यश प्राप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org